

Mānikachandra Digambara Jaina Granthamālā

THE AÑJANĀPAVANAMJAYA

AND

SUBHADRĀNĀTIKĀ

OF

HASTIMALLA

Edited for the First Time with Variant Readings
and an Exhaustive Introduction dealing
with Hastimalla's Life and Writings

BY

Prof. M. V. PATWARDHAN, M. A.

D. E. Society, Poona

PUBLISHED BY

The Secretary, Mānikachandra D Jaina Granthamālā
Hirabag, Bombay 4

1950

Price Rupees Three

Table of Contents

प्रकाशकका निवेदन	v
Editor's Preface	vii
Introduction · Hastimalla and his Plays	1-62
Preliminary Remarks	1
Critical Apparatus	1
Hastimalla · The Author	5
Date of Hastimalla	12
The Four Dramas. Their Summaries	14-29
Añjanāpavanamjaya	14
Subhadrā Nātikā	20
Mañhilikalyāna	23
Vikrāntakaurava	25
Sources of Their Plots	29
Metres used by Hastimalla	37
Linguistic and Ideological Peculiarities	39
Hastimalla. A Poet and Dramatist	52
Subhāsitas in Hastimalla's Plays "	54
Addendum	62
Añjanāpavanamjaya : Text with Variants	१-११९
Subhadrā : Text with Variants	१-९१
Index of Stanzas in the Four Plays	९२-१०८

माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैनग्रन्थमाला, पुष्प ४३

उभयभाषाकविचक्रवर्तिश्रीहस्तिमल्लविरचिते

अञ्जनापवनंजयनाटकं

सुभद्रानाटिका च

पुण्यपत्तननिवासिना पटवर्धनकुलोत्पन्नेन वासुदेवतनुजनुष्ठा

माधवेन संशोधिते

षाठान्तरदर्शकटिप्पणीभिरांगलभाषानिबद्धेनोपोद्घातेन चोपेते ।

प्रकाशिका

माणिकचन्द्रदिगम्बरजैनग्रन्थमालासमितिः

हीराबाग, मुम्बापुरी, ४

वीरनिर्वाणसंवत् २४७६

विक्रमाब्द २००६

मूल्यं रूप्यकत्रयम्

प्रकाशक

पं. नाथूराम प्रेमी

मंत्री, माणिकचन्द्र दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला,

हीरावाग, बंगई ४

०३(०१५,२)

१५५५०

३१३२४/०३

पहली आवृत्ति, वि. सं. २००६

मुद्रक

रामचंद्र येसू शेडगे, निर्णय-मागर प्रेस,

२६-२८, कोलभाट स्ट्रीट, बंगई २

PREFACE

The present edition of two (viz. Añjanāpavanamjaya and Subhadrā) of the four available dramas of Haṣitmalla, is being published as No. 43 of the Mānikachandra Digambara Jaina Granthamālā of Bombay. The edition gives for the first time, the text of the two dramas, viz. Añjanāpavanamjaya and Subhadrā, in a printed form. The text is accompanied by foot-notes containing important variant readings from four mss. in the case of Añjanāpavanamjaya and two mss. in the case of Subhadrā (see Introduction pp. 1-5). In the Introduction an attempt has been made to put together all the available information regarding the author Hastimalla. A synopsis of the plots of the four dramas has been given, the sources have been indicated, and certain peculiarities of Hastimalla, as evidenced by the four dramas, have been noticed. In writing the Introduction I have made use of Dr. A. N. Upadhye's paper on Hastimalla published in 'A Volume of studies in Indology' presented to Prof. P. V. Kane in 1941 (Poona), as also of the material presented by Pandit Manoharlal Shastri in the Introductions to the Maithilikalyāna and Vikrāntakaurava (Nos. 2 and 3 of the Mānikachandra Digambara Jaina Grantha Mālā). I have also utilised the

information regarding Hastimalla appearing in M. Krishnamachariar's Classical Sanskrit Literature (Madras, 1937). I wish to record my indebtedness to all these scholars. I must also thank Pandit Nathuram Premi for including the present edition of Añjanāpavanamjaya and Subhadrā in the Mānikachandra Digambara Jaina Grantha Mālā. My obligations to my friend Dr. A. N. Upadhye of Kolhapur are more than I can express. Had it not been for the kind interest that he took from the very beginning, by supplying to me the Ms. material, by making valuable suggestions from time to time and by correcting the proofs, it would have been impossible for me to bring out the present edition. Lastly, I must express my thanks to the Nirnaya Sagar Press, Bombay, for their courtesy and cooperation throughout.

345, Shaniwar }
 Poona 2 }
 February 1950 }

M. V. PATWARDHAN

प्रकाशकका निवेदन

माणिकचन्द्र-ग्रन्थमालाका यह ४३ वाँ ग्रन्थ कोई नौ सालके बाद प्रकाशित हो रहा है। महापुराणका तृतीय खंड सन् १९४२ के प्रारम्भमें प्रकाशित हुआ था, तबसे अब तक प्रकाशनकार्य स्थगित ही रहा। एक तो न्यायकुमुदचन्द्र और महापुराणमें इतना अधिक धन खर्च हो गया था कि कोशमें कुछ बचा नहीं था, बल्कि ऊपरसे कुछ कर्ज भी हो गया था, दूसरे महायुद्धके कारण कागज उपलब्ध न हो सका। ग्रन्थमालाको कागजका 'कोटा'ही नहीं मिला। इसके सिवाय सन् ४२ में अचानक मेरे इकलौते पुत्रका देहान्त हो गया, जिससे मेरी कमर ही टूट गई, और मुझमें इस दिशामें प्रयत्न करनेका कोई उत्साह ही नहीं रहा।

गतवर्ष सुहृद्वर डॉ० आदिनाथ उपाध्यायने मुझे सूचना दी कि हस्तिमल्लके नाटकोका सम्पादन-कार्य प्रो० माधव वासुदेव पटवर्धन को सोप दीजिए, वे इस कार्यको बहुत उत्तमतासे कर देंगे। मैंने इसे तत्काल स्वीकार कर लिया और आज उन्हींके द्वारा यह नाटकद्वय सम्पादित होकर प्रकाशित हो रहा है। प्रो० पटवर्धनका संस्कृत और प्राकृत भाषाओपर असाधारण अधिकार है। विश्वविद्यालयकी परीक्षाओमें वे हमेशा प्रथम श्रेणीके विद्यार्थी रहे हैं, और उक्त भाषाओमें कई पारितोषिक भी उन्होंने प्राप्त किये हैं। पूनाकी डेक्कन एज्युकेशन सोसायटीके वे आजीवन सदस्य हैं, और लगभग अठारह साल तक सागलीके विलिंग्डन कॉलेजमें संस्कृत और प्राकृतके प्राध्यापक रहे हैं। उनके जैसी तीक्ष्ण बुद्धि, विशाल अध्ययन, दीर्घयोग और साम्यभाव क्वचित् ही एकत्र मिल सकते हैं। ग्रन्थमालाका सौभाग्य है कि वह ऐसे विद्वान् द्वारा सम्पादित कृति प्रकाशित कर रही है।

उनकी अंग्रेजी प्रस्तावना विशेष अध्ययनकी चीज है और विद्यार्थियोंके लिए एक आदर्श निबन्ध है। हमें आशा है कि इस प्रस्तावनासे हस्तिमल्लके नाटकोके अध्ययनमें विशेष सहायता मिलेगी।

इस ग्रन्थमालामें हस्तिमल्लके दो नाटक विक्रान्तकौरव और मैथिली-कल्याण पहले प्रकाशित हो चुके हैं, अब्जना-पवनंजय और सुभद्रा ये प्रकाशित हो रहे हैं।

हस्तिमल्लके सम्बन्धमें लगभग नौ बरसके पहले मैंने जो लेख लिखा था, अंग्रेजी नहीं जाननेवाले पाठकोके लिए वह ज्योका ल्यो उद्धृत कर दिया जाता है। उक्त लेखकी प्रायः सभी बातें अंग्रेजी प्रस्तावनामें आ गई है।

ग्रन्थमालाके दो और ग्रन्थ प्रेसमें हैं जो यथासभव शीघ्र ही प्रकाशित होंगे। एक तो है, वादिराजसूरिका 'स्याद्वादसिद्धि' नामका अपूर्ण ग्रन्थ जिसका सम्पादन पं० दरबारीलालजी न्यायाचार्यने किया है और दूसरा जैनशिलालेखसंग्रह (द्वितीय भाग) जिसे पं० विजयमूर्तिजी एम० ए० शास्त्राचार्यने तैयार किया है।

हीराबाग, बम्बई. }
५-४-५०

विनीत
नाथूराम प्रेमी
मंत्री

CORRECTIONS

		Incorrect	Correct
Introd	p. 7, line 10	achivement	achievement
"	p 11, line 14	is hero	is the hero
"	p 11, line 31	subjetot matter	subject-matter
"	p. 14, line 20	Vidyādharma	the Vidyādharma
"	p 22, line 30	Vidyāharas	Vidyādharas
"	p. 23, line 2	the marriage	marriage
"	p. 24, line 23	Vinitā,	Vinitā
"	p. 33, line 26	तदुपाकृत°	तदुपाकृत°
"	p. 35, line 1	IV	IV)
"	p. 39, line 17	heads	heads
"	p 39, line 24	(a)	a)
"	p 40, line 10		drop II)
"	p 40, line 32	गच्छावः	गच्छाव.
"	p. 45, line 14	Muni-suvrata	Munisuvrata
"	p. 45, line 26	जैन शासन	जिनशासन
"	p 48, line 16	Svayambhu	Svayambhū
AP	p. 5, line 11	पालिका	पालीका
"	p 6, line 1	मतीयदि	मतीयदि
"	p 7, line 19	गम्भीअदि	गम्भीअदि
"	p. 13, line 1	सकलराजकुमाराः	सकल राजकुमाराः
"	p 15, line 7	विलंबिअदि	विलंबीअदि
"	p. 18, line 1	ट्टियदि	ट्टीयदि
"	p 19, line 10	गण्हस्सि	गण्हस्ससि
"	p 19, line 23	वअपि	वअ पि
"	p 28, line 15	गण्हूषासव	गण्हूषासव
"	p 30, line 7	अदिक्खिअदि	अहिक्खिअदि
"	p 35, line 13	आपातालतलात्	आ पातालतलात्
"	p. 42, line 2	याति	वाति
"	p 42, line 13	वलवदु°	वलवदु°
"	p. 43, line 7	करिअदु	करीअदु
"	p 47, line 21	करिअदु	करीअदु
"	p 48, line 15	दक्खिस्सि	दक्खिस्ससि
"	p 50, line 10	रक्षामः	रक्षिष्यामः
"	p 53, line 7	प्रत्याकुलम्	पर्याकुलम्
"	p 53, line 15	सतप्पिअदि	संतप्पीअदि
"	p 54, line 5	पहिअदि	पहीअदि

" p. 59, line 12	शु	शुद्ध
" p. 61, line 10	ये	ए
" p. 65, line 9	दक्खिअदि	दक्खीअदि
" p. 66, foot note 1	विहचित्	विरचित्
" p. 72, line 1	पणमिअदि	पणमीअदि
" p. 72, line 16	विशातम्	विशातम्
" p. 77, line 20	कुत	कुत
" p. 79, line 1	तालः	तालान्
" p. 81, foot note 4	Add. the word "obscure"	
" p. 83, line 15	२३	२३a
" p. 84, line 10	अज्झवससि	अज्झवस्ससि
" p. 84, line 14	मार्गितु	मृगयितुं
" p. 85, line 16	चिरायति	चिरयति
" p. 91, line 1	तदिता	तदितो
" p. 92, line 1	महीरुह महत्तर	महीरुहमहत्तर
" p. 102, line 16	जानन्त्या	जानत्या
" p. 105, line 16	अअ	अहं
" p. 105, line 18	अयं	अहं
" p. 106, line 2 and 7	मिस्सकेसि°	मिस्सकेसी°
" p. 112, line 16	दक्खिअदि	दक्खीअदि
S p. 4, line 18	°नाभिगन्धि वेलावनं	°नाभिगन्धिवेलावनां
" p. 14, line 6	°मणुस°	°मणुस्स°
" p. 17, line 14	दक्खिस्सिसि	दक्खिस्ससि
" p. 20, line 1	पअपती	पअपती
" p. 20, line 2	भुणता	मुणंता
" p. 29, line 6	°णिवडिअ°	°णिव्वडिअ°
" p. 29, line 7	°निपत्तित°	°निष्पत्तित°
" p. 30, line 18	मार्गितः	मृगित
" p. 32, line 2	पडिआसि	पडिआ सि
" p. 38, line 18	गच्छति	गच्छन्ती
" p. 38, line 21	उट्टिअदि	उट्टीअदि
" p. 40, line 19	दक्खिअदि	दक्खीअदि
" p. 42, line 7	अजाकृपाणीय	अजाकृपाणीयं
" p. 48, line 9	पिअसहीए	पिअसहीए
" p. 79, line 3	देय°	देव°
" p. 79, line 6	व्याहत्य	व्याहत्य

INTRODUCTION

HASTIMALLA AND HIS PLAYS

PRELIMINARY REMARKS

Out of the five dramas supposed to have been composed by Hastimalla, only four have been recovered so far viz 1) Maithulikalyāna (MK), 2) Vikāntakauṣaṭṭha (VK), 3) Añjanāpavanamjaya (AP) and 4) Subhadra (S), nothing being known so far about the remaining one viz. Añjarājanātaka. Of the four available plays of Hastimalla, two viz MK and VK were published in the Mānikacandra Dīgambara Jaina Grantha Mālā as Nos 3 and 5 in 1915 and 1916 A. D respectively, both edited by Pandit Manoharlal Shastri. Both are accompanied by brief introductions in Sanskrit, giving details about the author Hastimalla and his works. The text is accompanied by Sanskrit rendering of Prakrit passages in the footnotes, as also, very rarely, by explanations of difficult words. A number of misprints have crept into these printed editions of the two plays rendering the understanding of the text at times very difficult. The remaining two plays viz AP and S are being now edited in the same series.

CRITICAL APPARATUS

The following MS material has been used for the present Edition of Añjanāpavanamjaya

A: Devanāgarī Transcript of Palm-leaf MS in Kannada Script (No. B 250, Oriental Library, Mysore) Transcript prepared by H. P Venkata Rao, Copyist, Government Oriental Library, Mysore 16-12-1937 133 foolscap folios, thick, glazed, ruled, mill-made paper;

written on one side only, lines being breadthwise to the pages Sanskrit chāyā in the case of Prākṛit passages is given first in the body of the text, followed by the Prākṛit original, written in red ink in rectangular brackets

This MS shows certain orthographical and other peculiarities 1) Short and long vowels especially in Prākṛit passages are not often distinguished 2) *t* and *d*, *d* and *dh*, and *l* and *l* are not often distinguished 3) Visarga followed by *s* is uniformly written as *s* 4) Conjunct consonants in Prākṛit passages involving duplication of a surd or sonant aspirate are often written with these consonants doubled and joined together 5) Sandhi rules are not strictly and uniformly observed in the Sanskrit passages and in chāyā 6) There is no numbering for the stanzas 7) Every stanza is preceded by the letter *s'lo* (= *s'loka*) or *vṛ* (= *vṛtta*) or by these complete words. 8) Dandas are irregularly used, particularly in the Prākṛit portions. 9) Scribal errors are quite common

B Devanāgarī Manuscript Size 9"×5". Thick, glazed, hand-made paper 77 folios, written on both sides, with 8 lines on every page, written lengthwise to the page This also appears to be a transcript of some Kannada MS

It has its orthographical and other peculiarities. 1) There is no Sanskrit chāyā for Prākṛit passages. 2) The prose passages and stanzas are written in continuous lines without being distinguished from one another 3) Stage-directions are written without being enclosed in brackets, and as forming part of the Text itself, with a *danda* after every stage-direction 4) Names of characters are written in abbreviated form, e g Sūtra (= Sūtradhāra), Pava. (= Pavanamjaya), Vidū (= Vidūsaka) etc 5) Short and long vowels are not often distinguished 6) Long vowels

INTRODUCTION.

are sometimes written as short vowels with a curling hook on top¹. 7) Conjuncts in Prākṛit involving duplication of a consonant are written with the latter member alone of the conjunct consonant preceded by an anusvāra on the previous syllable, e g

दंख = दक्ख, एथ = एत्थ; मेंतिए = मेत्तिए; वणुदेसा = वणुदेसा.

Sometimes a letter with an anusvāra on it is represented with the consonant in that letter or the vowel itself duplicated, e g

कहिह = कहि; महिहद = महिद; अन्हाण्ण = अन्हाण; एअ = एअं; विदु = विदु; अविह्विअ = अविलविअ.

Sometimes the consonant in the following syllable is duplicated e g झकार = झकार. The MS ends thus

शके १८३८ अन्ननामसवत्सरे मार्गशीर्षशुद्धपक्षे ६ या गुरुवासरे लिखितम्.
This would mean that the MS was copied in 1906 A D

C Devanāgarī MS extending only upto the end of Act III. 33 folios, foolscap, thin, unruled, mill-made paper, written on one side only, lines being written breadthwise to the pages This too appears to be a transcript of some Kannada MS The prose passages and stanzas are properly distinguished and stage directions enclosed in round brackets. Names of characters are written in full There is no chāyā for Prākṛit passages. Orthographical representation of conjuncts in Prākṛit is the same as described under MS B above.

D This is a palm-leaf MS (No 205 from the Matha of Śrī Laksmīsenā Bhattāraka, Kolhapur) It contains three plays of Hastimalla Some of the folios are of a size different from that of others Folios 1-52 Sītānātaka (= Maṭhlikalyānaṃ) then folios 1-30 Subhadrānātikā

1 e. g. असदियम् = असदीयम्; प्रतोलि = प्रतोली etc.; a hook resembling ८ is written on ङ and ञ

and further folios 1-78 *Añjanāpavanamjāyam*. Though the paper label includes the title *Sulocanā*, its leaves are not there in the bundle. The folios of AP measure roughly 14 inches by slightly less than two inches. The portion of the MS. containing *Sītā* is separate and the handwriting also is different. Confining ourselves only to AP, the script is old Kannada. The names of the characters are written in their shortened forms *Vidū.*, *Pratī.* etc. The *dandas* are irregularly put, more so in the Prākṛit portion. Single and double *avagrahas* are sometimes used. The Sanskrit *chāyā* presents few variant readings. Of course Sandhis are not regularly and uniformly observed in the *chāyā*. Generally *l* is written for *l* in the Prākṛit portion, *d* and *dh* are not often distinguished. Consonants conjoined with *ṛ* as the first member of a conjunct group (in *chāyā*) are written double. The Prākṛit conjuncts are indicated with a fat zero before the consonants to be doubled. At times the short and long vowels are not distinguished. The Sanskrit *chāyā* is written on the lower, left-hand and right-hand margins, and at times near the string-holes. The number of scribal slips is pretty large. But they are less frequent in the Sanskrit *chāyā*.

The following MS material has been used for the present Ed. of *Subhadrānāṭikā*:

A. Devanāgarī transcript of Palm-leaf MS. in Kannada script (No. 2 Oriental Library, Mysore). Transcript prepared by H. P. Venkata Rao, Copyist, Government Oriental Library, Mysore, 1-3-1939. 105 foolscap folios. Thin, glazed, mill-made, ruled paper, written on one side only; lines breadthwise to the pages. In the case of Prākṛit passages, the original Prākṛit is given first, followed by the Sanskrit *chāyā*, in round

INTRODUCTION

brackets. Orthographical representation of Prakrit Conjunctions is generally speaking the same as noted under MS. B. of AP above. Scribal errors are quite numerous.

B. Devanāgarī Manuscript, belonging to Śrī Jaina Siddhānta Bhavana, Airah 38 folios. Size 13" × 7". Thick, glazed, hand-made paper, written on both sides, 14-15 lines per page, written lengthwise to the page. Sanskrit chāyā is given at the bottom of each page

HASTIMALLA: THE AUTHOR

The dramatist Hastimalla, whose four plays (viz. Añjanāpavanamājaya, Subhadrā, Mañhulikalyāna and Vikiāntakamāva) form the subject of the present essay, was the son of Govinda, who is mentioned in the prologues of all the four dramas and in the colophons of the various Acts of the same, with the honourific prefix Bhattāra or Bhattāraka or suffix Bhatta or Svāmin, indicative of his great learning, which is also borne out by the complimentary reference in the prelude to the MK¹ From the Praśasti stanzas appearing at the end of the VK (pp 163-164) under the caption 'Gīanthakāriasya Praśastih,' we learn that this Govinda was a non-Jain in the beginning and that he became a convert to Jainism as a result of his hearing the Devāgamasūtra (= Devāgamastotra) of Samantabhadra² It is said that this Govinda belonged to the Vatsagotra³ According to the Praśasti stanzas mentioned above, he belonged to the succession of pupils of the

1 निखिलशास्त्रतीर्थावगाहपवित्रीकृतधिषणस्य, मध्यमलोकधिषणस्य, नि शेषनिपीत-
धर्माभूतरसायनस्य, सरस्वतीविस्मयनीयोपायनस्य (?) भट्टारगोविन्दस्वामिन . ।
p. 2.

2 गोविन्दभट्ट इत्यासीद्दिद्वान् मिथ्यात्ववर्जित . । देवागमनसूत्रस्य श्रुत्या सददर्शना-
न्वितः ॥ अनेकान्तमतं तत्त्वं बहु मेने विदा वरः ॥ Stanzas 10, 11.

3 वि. कौ. J. 40. श्रीवत्सगोत्रजनभूषणगोपभट्टप्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्ति-
युद्धात् । गोपभट्ट = गोविन्दभट्ट.

great monk Gunabhadra (author of Uttarapurāna), who glorified the 63 Śalākāpurusas of Jain mythology, and who was himself a beloved pupil of the great monk Jinasena, author of Ādipurāna. Jinasena's spiritual teacher was Vinasena, well-versed in the scriptures and a great logician. Vinasena himself belonged to the spiritual lineage of the two great worthies Śivakoti and Śivāyana, who were pupils of the great Samantabhadra, author of the commentary called Gandhahastin on the Tattvārthādhigama-sūtra and of Devāgama (Sūtra or Stotra). Thus we see that the spiritual ancestry of Hastimalla goes back to Samantabhadra, Hastimalla's father being a remote disciple of Samantabhadra.

Hastimalla was one of the six sons of Govindabhatta, being the fifth in order among them. The Praśasti at the end of the VK (st 12) says that all of them were residents of South India (*dāksīnātyāh*) and that all of them were poets and scholars¹. Their names are mentioned as follows: Śrī Kumārakavi, Satyavākya, Devaravallabha, Udayabhūsana, Hastimalla and Vaidhamāna. The preludes to AP and MK and the colophons at the end of all the four dramas, also give the same information about Hastimalla and his brothers. It is said that all of them owed their greatness to the favour of Svainayaksī². We do not know anything so far about the writings of the brothers of Hastimalla, except that Satyavākya (according to the prelude to MK p 2) was the author of Śrīmatīkalyāna and other works³.

1 कवीश्वराः (st 13). The prologue to MK speaks of them as सुभाषितरत्नभूषण

2 वि कौ प्रशस्ति, stanza 12.

3 श्रीमतीकल्याणप्रभृतीनां कृतीनां कर्त्रां सत्यवाक्येन. Here a stanza composed by Satyavākya is cited wherein he pays a glowing tribute to Hastimalla's poetic ability.

INTRODUCTION

Regarding the name Hastimalla, we are told that our author got it as the result of a very successful encounter with a mad elephant let loose on him by the Pāndya king at Saranyāpura. It seems that Hastimalla subdued the infuriate elephant by his spiritual power. Stanza 40 of the first Act of VK, which seems to be out of place there and hence looks rather suspicious, says that our author was honoured and glorified in the royal assembly by the Pāndya king, with a hundred stanzas in recognition of his great achievement in the encounter with the elephant¹. One of the stanzas occurring at the end of the Anah Ms, of S mentions this great exploit of Hastimalla and states how he obtained his name on account of the subjugation of the mad elephant let loose upon him at Saranyāpura in order to test his *samyaktva*² (firmness of faith in Jainism). Thus 'Hastimalla' appears to be a nickname of our author³. We do not know what his real name was prior to his encounter with the elephant. This incident is also mentioned by Ayyapāya, in his Jinendrakalyānacampū⁴. Here we are told how in Saranyāpura the Pāndya king had set a mad elephant upon Hastimalla in order to test his *samyaktva* and that as the elephant assailed him he

1 हस्तिमुद्धत् । नानाकलाम्बुनिधिपाण्ड्यमहीश्वरेण श्लोकैः शतैः सदसि सत्कृतवान् बभूव ।

2 सम्यक्त्वस्य परीक्षार्थं मुक्त मत्तमतंगजम् । यः सरण्यापुरे जित्वा हस्तिमहेति कीर्तितः ॥

3 The word Hastimalla occurs in AP III 3. Perhaps the author is referring to his own name and has used the word there intentionally.

4 M Krishnamachariar, Classical Sanskrit Literature p. 641, Dr. Upadhye, Kane Commemoration Volume, p. 528, see also Prem: Jaina Sāhitya aurā Itihāsa pp. 260-271

tamed and subdued it by means of a stanza¹ Not only that, but he also tamed a certain scoundrel (*s'arlv̄ṣa*) who was posing as a Jain monk (*Jinamudrādharin*) and hence got the appellation Madebhamalla or Hastimalla In the *Pratisthātīlaka* of Nemicandīa (or Brahmasūī² Dr. Upadhye, l. c., p. 527) we are told that Hastimalla was a lion in the matter of crushing the elephants in the form of opponents³ This raises the suspicion that perhaps Hastimalla got his queer name, not as the result of taming a mad elephant, but as a consequence of vanquishing eminent disputants in public debates.

Brahmasūī (or Nemicandīa?), the author of *Pratisthātīlaka*, who belonged to the family of Hastimalla, tells us that Hastimalla had a son by name Pārśva Pandita,³ Manoharlal Shastri⁴ says that according to *Rājāvalīkathā*, Hastimalla had several sons of whom Pārśva Pandita was the eldest and that he had a disciple called Lokapālārya. For some reason Pārśva Pandita migrated to the town of Chatratrayapurī⁵ in the Hoysala Territory and lived there with his relatives He had three sons Candīapa, Candīanātha and Vaijāyā Candīanātha and his family stayed at Hemācala, while his other brothers migrated else-

1 सम्यक्त्व सुपरीक्षितु मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे चासिन् पाण्ड्यमहीश्वरेण कपटा-
द्धन्तुं स्वमभ्यागते । शैल्य जिनमुद्रधारिणमपास्यासौ मदध्वंसिना श्लेकेनापि
मदेभमल्ल इति य प्रख्यातवान् सूरिभिः ॥ Stanza quoted by Manohar-
lal Shastri in the Introductions to मै क and वि कौ, p. 3.

2 परवादिहस्तिनां सिंहो हस्तिमल्लस्तदुद्भवः । गृहाश्रमी बभूवार्हच्छासनादिप्रभावकः ॥
Quoted by Manoharlal Shastri, *Indro*. p. 4.

3 Dr. Upadhye, l. c. p. 527.

4 Introduction p. 2.

5 Pt. K. Bhujabali identifies this with Dvārasamudra or present Halebid, once the capital of Hoysalas.

where Brahmasūri was the grandson of Candrapa¹, who himself was the grandson of Hastimalla.

Hastimalla speaks of himself in highly complimentary terms in the Prastāvanās of some of his dramas. He speaks of himself as the self-chosen consort of the muse of Poetry and Learning and as the best of poets², in the Prastāvanā of VK. Stanzas 5 and 6 of VK, Act I, pay tribute to the author's eminence as a poet and dramatist. In the Prastāvanā of MK, he is described as the creator of dramas AP and others³. In that very Prastāvanā he adduces the compliment paid to him by his elder brother Satyavākya, author of Śīmatīkalyāna and other works. Satyavākya calls him *kavitā-sāmrājya-lakṣmī-pati* (MK I. 2). At the end of AP, there occurs a stanza (*iti Hastimalla* etc) wherein the author is called *kavicalcravartīn*. Stanza 1 of the Prastāvanā printed at end of MK (p 96) speaks of Hastimalla as *vijāta-dhīśana-buddhi, sūktī-ratnākara* and *dhīśu prathīta-vimalakīrti*. Stanza 2 says that Hastimalla had acquired the by-name *S'rīsūktīratnākara*. Ayyapārya⁴ speaks of Hastimalla as *aśeśakavīrājācalcravartī*. All these references clearly show in what great esteem Hastimalla was held by his contemporaries and by those who lived after him.

The four dramas of Hastimalla are called by the following names: Añjanāpavanamjaya, Mañthīkalyāna (also called Sītānātaka), Subhādīā and Vikrāntakaulava (or Kauravapauravīya, Colophon Act II, or Sulocanā,

1 Dr. Upadhye, l. c. p. 527.

2 सरस्वतीस्वयंवरवह्मणेन महाकवितह्मजेन etc p. 3.

3 अजनापवनंजयप्रमुखाणा रूपकाणा प्रवर्तकेन p. 2.

4 In his *जिनेन्द्रकल्याणभ्युदय*, quoted by Manoharlal Shastri, *Introd.* p. 1.

Colophon Acts III, IV, V). In the *Prastāvanā* of MK (p 2), we get a reference to AP-pramukha Rūpakas, which shows that AP and other dramas were already composed by the time that MK was being staged. This would show that AP was composed first and MK was composed last. The remaining two plays viz. S and VK were composed between these two. The absence of self-complimentation in the *Prastāvanās* of AP and S, also lends support to the priority of these two plays in relation to the remaining two (VK and MK)

According to Aufiecht (*Catalogus Catal* p. 764), Hastimallasena (i. e. our author Hastimalla) is credited with the authorship of the following works, 1) *Arjuna-rājanātaka* (Oppert II 316), 2) *Udayanarājakāvya* (Oppert II 421), 3) *Bharatarājanātaka* (Oppert II. 327), 4) *Megheśvaranātaka* (Oppert II 326), 5) *Maitihlipaimayanātaka* (Oppert II 327). Besides these, other poems and plays of Hastimalla are reported by Aufiecht as being in existence, though they are not mentioned by name. M. K. Vishnamachariar¹ mentions the following works too as having been written by Hastimalla, in addition to those mentioned above 1) *Ādipurāna*, 2) *Purucarita*, 3) *Subhadrābhāraṇa*, 4) *Añjanāpavanamjaya*, and 5) *Vikrāntakauśava*. One more work 6) *Śrīpurāna* is attributed to Hastimalla. Dr. Upadhye says (l. c. p. 526) that mss. of this work exist in the Jain Mathas of Mudabidri and Varanga in South Kanara. The *Śrīpurāna*, as intimated to Dr. Upadhye by Pt. Premi after personally inspecting its transcripts at Benares (his letter of 6-12-'44), is a Sanskrit work. It is divided into

1 *Classical Sanskrit Literature*, Madras 1937, pp. 641, 1114.

ten Parvans and contains about one thousand verses. One can easily detect that it is heavily indebted to the Ādipurāna of Jinasena. One copy contains at its close the following verse

श्रीपुराणसमाम्नातमाम्नात हस्तिमहिना ।
तरण्ड सर्वशास्त्राब्धेरखण्डं धारयत्वमुम् ॥

It is necessary that the contents of this work should be closely compared with the Kannada Ādipurāna of Hastimalla which is noticed below and was published from Kolhapur (1943), edited by Prof K G Kundangal.

On comparing Aufrecht's list with that of Krishnamachari, it seems that very probably Bharataiājanātaka is the same as Subhadrāharana i e Subhadrānātika (of which Bharata is hero). Similarly Megheśvaranātaka seems to be another name for Vikiāntakaviava (of which Megheśvara is the hero). We do not know anything so far about Aijunaiājanātaka and Udayanarājakāvya. The Ādipurāna is, according to Dr Upadhye, a Kannada work, divided into ten Parvans. It begins with the divisions of time, Kalpa-Vikṣas, Manus etc and gives an account of the previous lives of the first Tirthankara Vrsabha and of his present life in a traditional manner upto the moment of his liberation. Dr Upadhye conjectures that, since the Kannada verse at the commencement of the second Parvan suggests that Purudevacarita¹ might have been another name of the Ādipurāna, Purucarita and Ādipurāna are one and the same work. Dr. Upadhye further concludes that the author of the Kannada Ādipurāna and that of the four Sanskrit plays

1 Purudeva is a synonym of Vrsabhadeva, so Purucarita means Vrsabhācarita, which is the subject matter of Ādipurāna.

are identical, firstly because in the *Ādipurāna* the author is styled in every colophon as *Ubhayabhāsācalravartī*, which possibly refers to his proficiency in Sanskrit and Kannada, secondly because a stanza¹ occurring towards the end of AP associates him with Karnāṭaka, as a protege of some Pāndya King, and thirdly because Devacandra, author of *Rājāvalīkathā*, speaks of Hastimalla as *Ubhayabhāsācalravartī*.² It appears that though the Pāndya king was at first inclined to harass and challenge Hastimalla, he was later on favourably impressed with his inherent greatness and extended his patronage towards him and bestowed his favours upon him.³

Hastimalla was a grhastha and not a monk as is shown by the fact of his having a son or sons and further by the mention of him by Nemicandra (author of *Pratisthātilaka*) as *grhās'ramī*.⁴

DATE OF HASTIMALLA

Since Hastimalla was a remote pupil of Gunabhadra (who finished his *Uttarapurāna* in A D 897), his date must be taken to be later than the end of the 9th century A. D. Ayyapārya, in his *Jnendrakalyānābhyaśaya* speaks of Hastimalla and describes his encounter with a mad elephant, as a result of which Hastimalla

1 Vide foot-note 1 on page 119 of *Añjanāp*.

2 Vide *Maithīlik. and Vikrāntak. Introd. p. 4 last para.*

3 Vide *Vikrāntak. I. 40* and the stanza which is last but one at the end of *Añjanāp.*, quoted in footnote 1 on p. 119.

4 Stanza quoted by Manoharlal Shastri on p 4 of his *Introduction to Maithīlik, and Vikrāntak.* Vide footnote 2, p. 8 above.

got his appellation.¹ Ayyapārya, we are told, wrote his work in Vikramasamvat 1376 i. e. 1319 A. D. So the lower limit of Hastimalla's date may be taken to be 1319 A. D, or the first quarter of the 14th century. From the beginning of the 10th century to the beginning of the 14th century A. D is therefore the range of time within which Hastimalla must have flourished. K. B. Pathak and R. Narasimhacharya have assigned A. D 1290 to Hastimalla, but, as D. Upadhye remarks,² their conclusion is not accompanied by the necessary evidence. M. Kishnamachariar (Classical Sanskrit Literature, p. 641) gives the 9th century as the probable date of Hastimalla, but does not adduce any evidence in support of his view. The date of Hastimalla would be more definitely settled, if we could know something precisely about the Pāndya king, who is supposed to have first harassed Hastimalla and who later on seems to have showered his favours upon him. This Pāndya king is mentioned, in the first of the two additional stanzas occurring at the end of AP as a king of Karnāṭaka and as being a contemporary and friend of Hastimalla.³ The last stanza in the Prāsasti appearing at the end of VK makes a reference to Dvīpamgudīśahī. Who was this ruler of Dvīpamgudī? Was he the same as Pāndyamahīśvara, and if so, does Dvīpamgudī⁴ stand for the capital of that king? Similarly Saranyāpura is mentioned as the name of the place where the encounter with the mad elephant took place. At the end of the Mysore MS. of S, we get 3 additional

1 Vide Stanza quoted in footnote 1, p. 8 above.

2 L. c. p. 528.

3 Vide footnote 1 on page 119 of Añjanāp.

4 There is a place Dīpamgudī in Tanjore District.

stanzas, the first of which speaks of one Candranātha as the lord of Chatrapura, possibly the chief image in the local temple, the second mentions one *Prabhendumunipah S'rījarnayogī*, the last stanza too speaks of *Prabhendusuguruh* and refers to him as *Jannendramudrāmkutah* and as *S'rīmunirāt*. We do not know what, if at all, was Hastimalla's relation with the personalities and places mentioned in these three stanzas.

In conclusion, the only thing we can say about Hastimalla's date is that he lived sometime between the end of the 9th and the end of the 13th century A. D.

THE FOUR DRAMAS THEIR SUMMARIES

1) *Añjanāpavanamjaya*. This drama deals with the Svayamvara of Añjanā the Vidyādharī Princess, her marriage with Pavanamjaya, the Vidyādharī Prince, and the birth of their son, Hanumat.

ACT I PRELIMINARY SCENE Preparations for the Svayamvara of Añjanā are in progress in Mahendiapura.

MAIN SCENE The hero, Pavanamjaya, son of Vidyādharī King, Prahlāda, has already once seen the heroine and has fallen in love with her. Añjanā enters with her friend Vasantamālā and her attendants Madhukarikā and Mālatikā. The subject of their talk is the impending Svayamvara and its result. The girls stage a mock-Svayamvara, the result of which is that Vasantamālā (playing the part of Añjanā) puts the garland round the neck of Añjanā (playing the part of Pavanamjaya). Pavanamjaya, who with his companion Prahasita (the Vidūsaka) has been watching all this from a hidden place, now comes forward and as Añjanā is on the point of going away in her bashfulness, he holds her by the hand. But

she is called away by her mother for bath and so she takes leave of Pavanamjaya and departs with her friends

ACT II PRELIMINARY SCENE The Svayamvara has already taken place, and Añjanā has chosen Pavanamjaya as her consort. The wedding over, the bride and Vasantamālā have come to stay in Ādityapura (capital of King Pahlāda, father of Pavanamjaya) and they are being treated there with great kindness

MAIN SCENE Pavanamjaya and Añjanā visit the Bakulodyāna in the Pīmadavana. There follows a love-scene between them. Pavanamjaya now learns from Vijayaśarman, his father's minister, that king Pahlāda is on the point of marching out on a hostile expedition against Varuna, staying in Pātālapura in the Western Ocean, who is the enemy of Rāvana (King of the Rāksasas in Lankā in the Southern Ocean), and who has imprisoned two of the generals of Rāvana. As Pahlāda must go, at the request of Rāvana, to liberate the two generals, he desires that Pavanamjaya should look after and protect his capital in his absence. But Pavanamjaya finally persuades his father to allow him alone to march against Varuna.

ACT III PRELIMINARY SCENE The war between Varuna and Pavanamjaya has been raging for the last four months. Pavanamjaya has been waging the war rather slowly, in order to avert the sudden and swift collapse of Varuna, which he fears would endanger the lives of the two generals of Rāvana held in captivity by him. Pavanamjaya, having spent the whole day in inspecting his forces, is now resting on the Kumudvatīnī (bank of a lotus-pond)

MAIN SCENE The moon is rising in the east. Pavanamjaya sees a female Cakravāka bird pining on

account of separation from her mate and is at once reminded of his wife Añjanā. He is very deeply moved with love-longing and becomes extremely uneasy. He at last decides to visit the Vijayārdha mountain immediately and meet Añjanā secretly in her palace. He goes in a *vimāna* to Ādityapura and visiting the chamber of Añjanā, passes the night in her company and returns to the battle-field early next morning.

ACT IV From Vasantamālā's soliloquy and subsequent conversation with Yuktimatī (maid-servant of Queen Ketumatī), we learn that four months have elapsed since Pavanamjaya's secret visit to Añjanā. Añjanā has been showing signs of pregnancy. Both of them feel rather worried about the reactions of Queen Ketumatī, the mother of Pavanamjaya, and a lady with very peculiar notions about feminine decorum and virtue—when she would come to know of the delicate condition of Añjanā. They hope and pray, however, that Ketumatī would not be unkind or harsh towards Añjanā.

Labdhabhūti, the chamberlain, visits the suburb of Ādityapura and calling on Krūra, the Vidyādhara, conveys to him the command of Queen Ketumatī, that he is to take away Añjanā back to her parents' home. Krūra accepts the command and shortly thereafter actually carries it out.

ACT V. PRELIMINARY SCENE: Pavanamjaya has at last defeated Varuna in the battle and has delivered Khara and Dūsana, the two generals of Rāvana. Having concluded a pact of friendship with Varuna, Pavanamjaya is returning to the Vijayārdha mountain along with the Vidyādharas.

MAIN SCENE Pavanamjaya and Vidūsaka return to the Vijayārdha mountain and get down from their vimāna on the Rājatasīkhaia. Pavanamjaya learns from Yuktimatī, who has come there to greet and welcome him that Añjanā is pregnant and has gone to Mahendrapura to stay with her parents. Pavanamjaya now decides to go first to Mahendrapura and to return with Añjanā and then only to call on his parents. Riding on the flying elephant Kālamegha, Pavanamjaya and Vidūsaka proceed towards Mahendrapura. On the way they get down and halt on the bank of the Sarovanasasī, situated on Nābhigṇī. They meet a Vanacāra and his wife and from the account given by them they conclude that Añjanā and Vasantamālā had been there on their way to Mahendrapura, accompanied by a terrible-looking man, who wanted to take them to Mahendrapura as commanded by Ketumatī. Añjanā, however, had refused to go back to her parents and preferred to stay in the forest-region. She and her friend had entered into the Mātangamāhni forest. At this Pavanamjaya faints away. Regaining consciousness he mourns for his beloved wife. He rises up in sheer desperation and declares his resolve to plunge into the forest and to follow Añjanā. He sends Vidūsaka to the Vijayārdha mountain to bring Vidyādharas to help in the search for Añjanā. Followed by his elephant Kālamegha he now takes a plunge into the dense forest.

ACT VI PRELIMINARY SCENE From the conversation between Manicūda, king of the Gandharvas, and Ratnacūdā, his wife, we learn that Añjanā, rescued by Manicūda from serious calamity to her life, and at present staying in their region under their parental care, has given birth to a son. She is, however, very miserable due to separation from her husband.

MAIN SCENE Pavanamjaya, who has gone mad on account of the loss of Añjanā, roams about in the Mātangamālinī forest and goes on addressing various objects—animate and inanimate—and requesting them to give some information about Añjanā. (The whole scene is modelled after Kālidāsa's *Vikramorvaśīya*, Act IV). Baffled in his attempt to get any clue about Añjanā and utterly disappointed, he sinks down helplessly under a Candana tree. His voice is choked, his eyes are dimmed with tears and his heart is extremely agitated and uneasy. He leans against the Candana tree and rests himself awhile, wondering if anybody would tell him about his beloved wife. Now Pratisūrya, maternal uncle of Pavanamjaya, who has been requested by king Prahlāda to help him in the search for Pavanamjaya, finds him in a bower of creepers on the bank of the Makarandavāpikā, absorbed in deep meditation, eyes closed and body thrilled with emotion. Pratisūrya concludes that in this condition nothing but Añjanā herself can cheer up Pavanamjaya and bring him back to consciousness. So he returns home and sends Añjanā and Vasantamālā (who have been staying with him) to that locality. On seeing Pavanamjaya inside the bower of sandal creepers, Añjanā rushes towards him and embraces him, who is extremely delighted to see her. Pratisūrya, who has in the meanwhile gone to the Gandharva king Manicūda to convey to him the happy news about the discovery of Pavanamjaya, now comes up to meet Pavanamjaya. Pavanamjaya too is extremely delighted to meet the maternal uncle of his beloved wife.

ACT VII PRELIMINARY SCENE Preparations for the installation of Pavanamjaya as heir-apparent (*Yauvarājyābhīṣeka*) are afoot in the royal palace at Ādityapura. The

young boy Hanūmat is to be brought and introduced to Pavanamjaya by Pratisūrya. There is the hustle and bustle of high festival in the city in general and in the royal palace in particular.

MAIN SCENE. Pavanamjaya, Añjanā, Vidūsaka and Vasantamālā enter the Assembly Hall. Pavanamjaya is seated on the Royal throne under a pearl canopy. All express their gratitude to fate for the happy reunion. Pratisūrya comes along with the little boy Hanūmat and introduces him to Pavanamjaya. The whole palace is steeped in merriment. Mutual greetings and felicitations are exchanged. Pratisūrya now narrates at length all the happenings in the Mātangamālīnī forest—the trials and tribulations through which Añjanā and Vasantamālā had to pass in the course of their wanderings in the forest, how they came to Paryankaguhā on the eastern wing of the Ratnakūta mountain and there met the great sage Amitagatī and were consoled by him with the assurance that their sufferings would shortly be over, how while staying there, they were attacked by a fierce lion, how their loud appeals for help were answered by the Gandharva king Manicūda and his wife Ratnacūdā, how the lion was killed by Manicūda, how Añjanā in course of time gave birth to a son, how Pratisūrya came to know of them and removed them to the Anurūhadvīpa, where the religious rites of the new-born babe were duly performed, how later on, while helping King Pahlāda and Mahendra in the search for Pavanamjaya, he discovered him on the bank of the Makarandavāpikā, in the heart of the Vanamālā wood, in the Mātangamālīnī forest, how he thereupon went back to Anurūhadvīpa and returned with Añjanā and Vasantamālā and how finally the meeting between Añjanā and Pavanamjaya took place. All express

their thanks to the Gandharva king Manicūda for having rescued Añjanā from the fierce lion Manicūda, at the command of Varuṇa and Rāvana (who are now mutual friends) bestows upon Pavanamjaya the sovereignty of the Vijayārdha mountain and makes a formal declaration to that effect. Pavanamjaya thankfully accepts the new status conferred upon him, The Vidyādhara pay homage to him with bent heads and folded hands.

After the epilogue, with usual benedictions, the drama comes to an end.

2) *Subhadrā Nāṭikā*: This play deals with the marriage of Subhadrā, sister of the Vidyādhara king Nami and daughter of Kaccharāja, with King Bharata, son of Vrsabha, the first Tirthankara.

ACT I The victorious campaign of King Bharata in all the quarters of the world (Digvijayayātīā) is reviewed in the course of the conversation between King Bharata and his friend Kārtyāyana, the Vidūsaka. King Bharata accidentally sees Subhadriā, the Vidyādhara damsel, in the Vedivana while he is wandering in the regions of the Rajatācala (Vijayārdha). The king conceives a deep love for Subhadriā which he confesses in her presence. While the king is engaged in talking with Subhadriā, the Queen Vailāti (daughter of King Vilāta) comes there. Subhadrā at once leaves in a hurry. The queen's suspicions are naturally aroused regarding the fidelity of the king. He tries to console and pacify her, but not with much success.

ACT II The king's love-loin state gets more and more serious and he visits the Vedivana once again for diversion. He draws a picture of Subhadriā and remains contemplating it. Subhadriā and her friend Mandārikā

enter and gradually reach the thicket of Mandāra trees, where the king is sitting with his friend, the Vidūsaka, looking intently at Subhadrā's likeness. The Queen Vailātī also comes to the place and secretly watches the doings and overhears the utterances of the love-loin king. Her patience is at its end and she angrily rushes into the king's presence. The king and the Vidūsaka try to offer excuses regarding the picture, but the queen is not at all convinced by them. She leaves in a fit of rage, not minding the king's apologies and protestations of love. Subhadrā, who has watched the whole of this scene between the king and the queen, now enters. The king explains to her, that his behaviour and attitude towards the queen were prompted by his spirit of *dāksīnya* (liberalism in matters of love), but that he really loves Subhadrā in all sincerity. The king grasps the hand of Subhadrā. But just then she hears her friends calling her and so takes leave of the king to go away, leaving him plunged in deep sorrow.

ACT III Subhadrā is seriously suffering from love-sickness. She writes a love-letter to the king and her friend Mandārikā suspends it on the branch of an Aśoka tree. The king and the Vidūsaka enter and discover Subhadrā merged in anxious thoughts, and sorely tortured by the pangs of love. Subhadrā and her friend perform the marriage ceremony of the Aśoka tree and the Mālatī creeper. The Vidūsaka approaches them under the pretext of asking for presents and the king also goes near and grasps the hand of Subhadrā, who is very apprehensive of the queen. At this juncture the queen and her maid come there with a view to conciliating the king. But when the queen sees the king holding the hand of Subhadrā she is enraged and rushes forth in a fit of anger.

Subhadrā slinks away into the adjoining bower. The king apologises to the queen and prostrates himself before her. The queen however angrily rejects his gestures and leaves with her attendant. The king now discovers the love-letter of Subhadrā on the branch of the Aśoka tree, and reads it over and over again, while Subhadrā watches the whole thing from the bower where she is hiding, and is convinced of his love for her. It is now announced to the unbounded satisfaction of both King Bharata and Subhadrā, that King Nami has decided to give his sister, Princess Subhadrā, in marriage to King Bharata.

ACT IV The king is uneasy on account of his love-longing and on account of the indignation on the part of the queen. The Vidyādhara messenger, Tārksyadatta, comes with the news that King Nami is coming with his beautiful sister and the entire army of the Vidyādharas. The king is greatly delighted at the prospect of meeting his beloved once again. In the meanwhile King Nami has sent word to Queen Vailātī and informed her that he intends to give his sister Subhadrā in marriage to King Bharata, as it has been prophesied by sooth-sayers that Subhadrā would be the wife and queen of a Cakravartin. The queen gives her consent to this proposal. Subhadrā and the queen, who were till now rather unfriendly towards each other, are now reconciled. King Bharata is extremely delighted at these developments and gives orders that King Vilāta (his father-in-law) be made lord of Madhyamottarakhandā, and that Yuvarāja Cakrasena (brother of Queen Vailātī) be made lord of Paścīmakhandā. King Nami now arrives, followed by hosts of Vidyāharas. He gives his sister Subhadrā to King Bharata and the two are united in blissful wedlock.

3) *Marthandīkalyāna* The play deals with the marriage of Rāma, son of King Daśaratha of Ayodhyā, with Sītā, daughter of King Janaka of Mithilā and Queen Vasudhā, after Sītā has selected Rāma at the Svayamvara, on the basis of Rāma's stringing and breaking the bow (called Vajrāvarta) belonging to King Bali.

ACT I Rāma, who has already conceived a love for Sītā even before actually seeing her, meets Sītā in the shrine of Kāmadeva near the Upavanadolāgrha where Sītā has gone for the swing-sport in connection with the spring festival. Sītā is amazed at the beauty of Rāma and is enraptured to see him. She hears the voice of her friends calling her and so she takes leave of Rāma and goes away. Rāma is plunged in reflection on Sītā's marvellous beauty and finds that his heart has been completely captured by her.

ACT II Rāma is still brooding over Sītā. He has an irresistible desire to see her once again. At the suggestion of his friend Gārgyāyana, the Vidūsaka, Rāma goes to the Mādhavīvana situated to the north of the palace. Even there his suffering is not abated in the least. Now Sītā and her friend Vinitā come to the Mādhvīvana. They overhear the conversation going on between Rāma and his friend, the Vidūsaka. Certain words uttered by Rāma are misunderstood by Sītā, who consequently thinks that Rāma no longer loves her. She falls into a swoon. Rāma and his friend, the Vidūsaka, rush forward and Rāma tries to cheer up Sītā. But she is so overpowered by jealousy, that she is on the point running away from Rāma. He appeases her by explaining the real meaning of his words which she has misunderstood. He reaffirms his deep love for her. As the evening is drawing near, Rāma

and Sītā most reluctantly take each other's leave and depart

ACT III The sufferings of Sītā are increasing and Kalāvati, her messenger, goes to Rāma and acquaints him with her sad plight Rāma too is pining for Sītā and is passing his time in the Mādhavivana, and is in a desperate mood and in a pitiable state Kalāvati recounts to him the sad condition of Sītā and hands over to him a message written by Sītā on a Ketakī petal Rāma repeatedly reads the message. Kalāvati suggests that Rāma should secretly visit in the evening the Candrakāntadhārāgrha in the southern part of the Mādhavivana, where Sītā is passing her time.

ACT IV Sītā is now revealed in the Pramadvana, in the Candrakāntadhārāgrha All the cooling remedies employed by her friends to mitigate her fever and suffering have absolutely no effect upon her, but on the contrary aggravate her condition Rāma now enters accompanied by the Vidūsaka, and finds Sītā in the *Yantradhārāgrha*, lovelorn and eagerly waiting for him. Rāma and the Vidūsaka stand aside for some time, overhearing the conversation of Sītā and her friend. Sītā begins to despair of Rāma's arrival, and her friend Vinitā, proposes that they two should enact the events that took place formerly in the Mādhavivana (in Act II, above) Vinitā is to play the part of Rāma and Sītā is to assume the role of herself While the scene is being enacted, Rāma, at a very critical moment suddenly rushes forth and reveals himself before them He comforts Sītā, holding her hand He utters words of comfort in order to banish her fears and nervousness Sītā is now called by her mother Vasudhā, and most reluctantly she takes her leave of Rāma

ACT V From the preliminary scene we learn about the preparations for the Svayamvara of Sītā, wherein she is to be given to the hero who strings the heavenly bow called Vajrāvarta. The kings who have assembled for the Svayamvara are now informed that they should get ready. Accordingly all the kings hasten towards the Svayamvara mandapa. Rāma and Lakṣmana too proceed towards the Svayamvara-mandapa. Janaka comes to the Assembly Hall and orders Sītā also to be conducted to the Svayamvara-mandapa. Various kings come forward to try their strength on the bow, but are foiled in their attempt. At last Rāma comes forward. He not only bends and strings the bow, but also snaps it asunder, with a terrific and deafening sound. Rāma is hailed by all and Janaka gives orders for starting immediately the festival of Sītā's marriage with Rāma. A voice from the sky announces that Rāma is Puruṣottama in his last life prior to emancipation (*caramadeha-dhārvī*). The marriage is celebrated with appropriate pomp and circumstance.

4) *Valkrāntakaurava* This drama deals with the marriage of Kauraveśvara (*alias* Megheśvara or Jaya), son of Mahārāja Somaprabha with Sulocanā, daughter of King Akampana of Kāśī after she has selected him at the Svayamvara on the strength of his personal qualities.

ACT I PRELIMINARY SCENE Kauraveśvara has come to Vārānasī in order to witness the Svayamvara of Sulocanā and has encamped on the banks of the Gangā. He has already fallen in love with Sulocanā ever since he saw her for the first time when he visited Vārānasī in connection with the festival of the Nagradevatā.

to be ready for defending the city in case it is attacked by Arkakīrti and his allies, who have already mobilised for the battle

MAIN SCENE This is nothing but a conversation between Ratnamālī (a Vidyādhara), Mandāyamālā (his wife) and Mantharaka (or Mandara, then attendant), all riding in an aerial car and witnessing the various events in the battle raging on the earth below, between Kauraveśvara and his partisans on the one hand and Arakakīrti and his allies on the other hand. The various incidents in the battle — the fierce encounters between individual heroes on either side, the changing fortunes of the two sides as the fight grows in its intensity and finally the duel between Kauraveśvara and Arakakīrti — all these are here presented in the form of brief and neat verbal pictures. Kauraveśvara at last overpowers Arakakīrti in a hand-to-hand fight and takes him prisoner. He is hailed by gods with flowers dropped over him from their *vimānas*.

ACT V PRELIMINARY SCENE On his return to Vārānasī, Kauraveśvara finds that his father-in-law, King Akampana of Kāśī, does not approve of the battle and the defeat and imprisonment of Arakakīrti by Kauraveśvara, for Arakakīrti was the son of Bharata Cakravartin, and his defeat and humiliation were as good as the defeat and humiliation of Bharata himself. A message is now received from Bharata, saying that Arakakīrti was really in the wrong, and urging upon Akampana to bring about an understanding and reconciliation between Arakakīrti and Kauraveśvara. The King of Kāśī (Akampana) once again offers his younger daughter (Ratnamālā) to Arakakīrti, who this time accepts the proposal. We are

told that Arkakīrti's marriage with Ratnamālā is to take place that very night and Kauraveśvara's marriage with Sulocanā would be celebrated the next day

MAIN SCENE It is the hour of evening preceding the wedding day. Kauraveśvara is brooding over the peculiar feelings that crowded his mind when Sulocanā selected him by placing the garland round his neck. A secret meeting between Kauraveśvara and Sulocanā has been arranged to take place in the Kaumudīgrha in the Bāloḍyāna. The two meet for a short while in the Kaumudīgrha and then Sulocanā leaves Kauraveśvara, as she is called away to attend the Kautukabandha ceremony of her sister Ratnamālā.

ACT VI PRELIMINARY SCENE The marriage of Ratnamālā and Arkakīrti has already taken place and the marriage of Sulocanā and Kauraveśvara is going to be celebrated shortly. Preparations on a grand scale are in progress.

MAIN SCENE Kauraveśvara proceeds towards the Ratnamandapa where the king of Kāśī is waiting for him. The ladies shower handfuls of fried grains on him. The fires are fed with offerings, Sūktas are recited by worthy Brahmins, auspicious songs are sung by bards. Sulocanā is led up to the Ratnamandapa by her friends. The king of Kāśī gives her in marriage to Kauraveśvara and offers his blessings to both. With the usual benedictions the play comes to an end.

SOURCES OF THEIR PLOTS

All the four plays of Hastimalla which form the subject of the present study, derive their themes from Jain mythology.

1) The story of Añjanā and Pavanamjaya occurs in chapters XV-XVIII of Paumacariya (PC) of Vimala Sūri (second century A. D.) and chapters XV to XVIII of Pandmapurāna (PP) of Ravisena (eighth century A. D.) The accounts in both these works are identical. The following are the points of divergence between the story as given by Vimala and Ravisena on the one hand and by Hastimalla on the other (1) Pavanamjaya is called in PC and PP by various names such as Pavanagati, Pavanavega, Vāyugati, Vāyuvega, Vāyukumāra etc. Añjanā is called also by the name Añjanāsundarī. The wife of king Mahendra (i. e. mother of Añjanā) gets the name Hidayavegā or Hidayasundarī in PC and PP, while she has the name Manovegā in Hastimalla's play. King Mahendra is in PC and PP said to be the father of a hundred sons, Arindama and others, while Hastimalla mentions only two sons of his by name (Arindama and Prasannakīrti). Ketumatī, mother of Pavanamjaya is called Kīrtimatī in PC. (2) There is no question of Svayamvara in PC and PP. After having a consultation with his ministers King Mahendra decides to give his daughter to Pavanamjaya and secures the consent of King Prahlāda in due course. (3) Three days before the celebration of the marriage Pavanamjaya's mind is prejudiced against Añjanāsundarī, Vasantamālā and Mīsrakeśī. He completely misunderstands the whole situation and somehow jumps to the baseless conclusion that Añjanāsundarī does not want to marry him as she really loves Vidyutprabha (another Vidyādhara prince). He is on the point of killing Añjanāsundarī, but is prevented by his friend Pīahasita. He becomes disgusted with her and wishes to cancel his proposed marriage with her and return to his city forthwith. Yielding however to the

pressure of his father and of King Mahendra, he decides to marry Añjanāsundarī, though he secretly resolves to kill her after the marriage (4) Pavanamjaya's hatred towards his wife hardens into harshness and utter indifference to her and persists for no less than twentytwo years, while she languishes away, consumed by sorrow. Even when Pavanamjaya goes away to help Ravana in the war with Valua, he angrily remonstrates with his wife for wanting to give him a send-off and wishing him good luck. (5) This attitude of Pavanamjaya towards his wife undergoes a sudden change at the sight of a wailing Cakravākī on the bank of the Mānasa lake. He conceives a deep longing for her and sincerely repents his former harshness towards her. (6) He secretly goes back to his city to meet his wife and spends several days (according to PP) in her company (and not one night only as stated in PC and AP) Though he is said to have lived with her for several nights, he does not think it proper to inform his parents about his stay there, nor do they come to know about it Before returning to the battle-field, he has already come to know about Añjanā's pregnancy. He assures her that he would return before her state of pregnancy became too obvious He gives her a jewel bracelet (acc to PP, a ring acc to PC.) with his name inscribed on it, for being used if and when necessary. 7) When Pavanamjaya's mother comes to know about the pregnancy of Añjanā, she is shocked She knows how bitterly Pavanamjaya has been hating Añjanāsundarī and she is not prepared to believe that he had secretly visited her She therefore sends her away to her parents 8) King Mahendra too is not ready to admit to his house his own daughter whose virtue is under suspicion He

turns her out of his palace 9) The sage Amitagati, staying in the Paryankaguhā, narrates to her and her friend Vasantamālā, the *pūrvajanma* of the child in the womb, the reason why Añjanāsundarī was at first disliked by her husband as also the reason of her present separation from him 10) As Añjanā is about to get into the Vimāna of Pratisūrya, her infant babe smilingly tries to jump into the Vimāna and in doing so falls amidst the rocks of the mountain below, smashing the rocks to pieces and itself unhurt It is therefore given the name Śrīśaila. It is also called by another name — Hanūmat — as it was brought up in its infancy in Hanūmahadvīpa by Pratisūrya 11) At the end of the war with Varuna; Pavanamjaya returns home and when he learns that his wife has been sent to her father's house, he goes to King Mahendia, but is deeply grieved to find that she is not there 12) He plunges into the forest called Bhūtaravātāvī in search of Añjanā He conveys to his parents his resolve not to come back to them unless he recovers his lost wife. 13) Ketumatī, the mother of Pavanamjaya, feels extremely sorry, when she comes to know about her son's condition 14) The Vidyādharas find Pavanamjaya engrossed in meditation like a *muni* and utterly speechless Pavanamjaya conveys to his parents by means of signs that he has taken the vow of silence and starvation unto death, as long as he does not see his wife

Except for the points of divergence mentioned above, Hastimalla has closely and faithfully followed the story as given in Paumacariya and has cast it into the conventional mould of a Nātaka

II) The story of the marriage of King Bharata (the first Cakravartin) with Subhadrā (sister of the Vidyādharas

King Namī) occurs in Chapter XXXII (Stanza 175ff) of *Ādipurāna* of Jinasena (9th century A D) It is narrated there very briefly¹ The Subhadiā Nātikā is a dramatic elaboration based upon this episode The author has dealt with the theme in the traditional manner of the Nātikā in Sanskrit and fitted it into the framework of conventional motifs of the Nātikā², represented by the Ratnāvalī of Śrīharsa—love at first sight, separation, complications caused by the jealousy on the part of the Queen and the Heroine, untimely blossoming of trees as a result of special treatment given to them and their marriage with suitable creepers, scenes of indignation on the part of the Queen when she gets irrefutable evidence of the King's infidelity and the King's prostrations before her and protestations of love for her, loveletter sent by the Heroine to the King, reconciliation of the Queen with her new rival in love, whom she recognises and accepts as her cousin, prediction by soothsayers that the Heroine is destined to be the wife of a Cakravartin; and finally the marriage

III) The story of the Svayamvara of Sītā and her marriage with Rāma occurs in Uddesa XXVIII of the Paumacariya of Vimalasūri and Parva XXVIII of the Padmapurāna of Ravisena in identical form In

1 नमिश्च विनमिश्रैव विद्याधरधराधिपौ । स्वसारधनसामर्थ्या प्रभु द्रष्टुमुपेतुः ॥
विद्याधरधरासारधनोपायनसपदा । तदुपानीतयानन्यलन्ययासीद् विभोर्धृति ॥
तद्गङ्गातरलौघैः कन्यारत्नपुर सरैः । सरिदोघैरिवोदन्वानपूर्यत तदा प्रभु ॥
स्वसारं च नभेर्धन्या सुभद्रा नाम कन्यकाम् । उदुवाह स लक्ष्मीवान् कल्याणैः
खेचरोचितैः । ता मनोशा रसस्यैव स्मृति संप्राप्य चक्रभृत् । स्व मेने सफलं जन्म
परमानन्दनिर्भरं ॥

2 Cf Viśvanātha, Sāhityadarpana, VI. 269-272. नाटिका
कृतवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्गिका । प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृप ॥
स्यादन्त पुरसबद्धा संगीतव्यापृतायवा । नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवशजा ॥
सप्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः । देवी पुनर्भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवशजा ॥
पदे पदे मानवती तद्वशः सगमो द्वयोः । वृत्तिः स्यात् कैशिकी स्वरूपविमर्शा
सन्धयः पुनः ॥

dramatising the story Hastimalla has scrupulously eschewed all the earlier details such as 1) King Janaka's resolve to give Sītā in marriage to Rāma for having saved his kingdom against the invasion of the Ardhabarbaras, 2) Nānada's intrusion into the residence of Sītā and ejection from that place, 3) his plans for revenge on Sītā by frustrating her proposed marriage with Rāma, 4) the abduction of King Janaka by the Vidyādhara Indugatī, and 5) Janaka's forced acceptance of the condition proposed by Indugatī that Rāma, son of Daśaratha, could marry Sītā, only if he succeeded in stringing the bow called Vajravāta, failing which the Vidyādhara Indugatī himself would carry away Sītā by force for the sake of his son, Bhāmandala. Instead of this Hastimalla creates, in Act I of MK, a situation in which Sītā happens to see Rāma in the temple of Kāmadeva (near the swing-house in the royal gardens) and straightway falls in love with him. He depicts the further course and development of this love by giving an account of the sufferings of both Rāma and Sītā in separation from each other, the first meeting between them in the Mādhavivāna (Act II), the serious condition of both thereafter, Sītā's message to Rāma, conveying her loveless condition and her hope about the eventual fulfilment of her love (Act III), and the second meeting between the lovers in the Candrakāntadhāgīha (Act IV). Hastimalla has thus concentrated his attention only on the love-affair-aspect of the story, prior to the actual Svayamvara and dealt with it in the traditional manner of the Sanskrit Nāṭaka¹

1 Technically the MK is a Trotaka, which is one of the eighteen Uparūpakas according to Sanskrit Dramaturgy. It is defined as follows in Sāhityadarpana VI 273
सप्तद्वयवर्चाकं दिव्यमानुषसश्रयम् । त्रोटकं नाम तत्प्राहुः प्रत्येकं सविदूषकम् ॥

IV The story of the Svayamvara of Sulocanā and her marriage with Jayakumāra (*alias* Megheśvara or Meghasvara) occurs in Parvans XLIII to XLV of the Ādipurāna of Jinasena Hastimalla has closely followed the story as given in Ādipurāna and dramatised it in the traditional manner of Sanskrit play-wrights

The story as given in Ādipurāna is as follows —

In Jambūdvīpa, Bharataksetra, the country called Kurujāngala, capital Hastināpura, King Somaprabha, belonging to Somavamśa, his younger brother Śreyān, and his Queen Laksmīvatī. Their sons Jaya or Jayakumāra and fourteen others, Vijaya etc. Somaprabha became disgusted with the world and renouncing worldly life went to Lord Rsbha along with his brother and attained *moksa* in due course. Jayakumāra succeeded him on the throne and ruled the land very efficiently. His wife Śrīmatī — In Bharataksetra, the country called Kāśī, capital Vārānasi. King Akampana belonging to the Nāthavamśa, his wife Suprabhā. One thousand sons, Hemāngada, Suketuśī, Śīkānta and others. Two daughters, Sulocanā and Laksmīmatī. The king consulted with his ministers about the marriage of Sulocanā and ultimately decided to hold a Svayamvara. Preparations were started for the Svayamvara and invitations were sent to all kings. On the day of the Svayamvara all the invited kings—Jayakumāra, Aikakīrti (son of Emperor Bharata) etc. and the Vidyādharas were duly welcomed and seated in the gorgeously decorated pandal. The Kañcukī called Mahendradatta (and not the Pratīhāra as in VK), led Sulocanā in a chariot to where the kings were seated and introduced each of them to her. Sulocanā passed by all of them and finally came near Jayakumāra. The Kañcukī gave a detailed account of his valour and exploits in the

dramatising the story Hastimalla has scrupulously eschewed all the earlier details such as 1) King Janaka's resolve to give Sitā in marriage to Rāma for having saved his kingdom against the invasion of the Ardhha-barbaras, 2) Nūada's intrusion into the residence of Sitā and ejection from that place, 3) his plans for revenge on Sitā by frustrating her proposed marriage with Rāma, 4) the abduction of King Janaka by the Vidyādhara Indugatī, and 5) Janaka's forced acceptance of the condition proposed by Indugatī that Rāma, son of Daśaratha, could marry Sitā, only if he succeeded in stringing the bow called Vajravāta, failing which the Vidyādhara Indugatī himself would carry away Sitā by force for the sake of his son, Bhāmandala. Instead of this Hastimalla creates, in Act I of MK, a situation in which Sitā happens to see Rāma in the temple of Kāmadeva (near the swing-house in the royal gardens) and straightway falls in love with him. He depicts the further course and development of this love by giving an account of the sufferings of both Rāma and Sitā in separation from each other, the first meeting between them in the Mādhavivāna (Act II), the serious condition of both thereafter, Sitā's message to Rāma, conveying her love-lorn condition and her hope about the eventual fulfilment of her love (Act III), and the second meeting between the lovers in the Candrakāntadhārāgrha (Act IV). Hastimalla has thus concentrated his attention only on the love-affair-aspect of the story, prior to the actual Svayamvara and dealt with it in the traditional manner of the Sanskrit Nāṭaka¹

1 Technically the MK is a Trotaka, which is one of the eighteen Uparūpakas according to Sanskrit Dramaturgy. It is defined as follows in Sāhityadarpana VI 273. ससाष्टनवपचाक दिव्यमानुषसश्रयम् । त्रोटक नाम तत्प्राहुः प्रत्यक सविदूषकम् ॥

IV The story of the Svayamvara of Sulocanā and her marriage with Jayakumāra (*alias* Megheśvara or Meghasvara) occurs in Parvans XLIII to XLV of the Ādipurāna of Jinasena. Hastimalla has closely followed the story as given in Ādipurāna and dramatised it in the traditional manner of Sanskrit play-wrights.

The story as given in Ādipurāna is as follows —

In Jambūdvīpa, Bharataketia, the country called Kurujāngala, capital Hastināpura, King Somapiabha, belonging to Somavamśa, his younger brother Śreyān, and his Queen Laksmīvati. Their sons Jaya or Jayakumāra and fourteen others, Vijaya etc. Somapiabha became disgusted with the world and renouncing worldly life went to Lord Rsabha along with his brother and attained *moksa* in due course. Jayakumāra succeeded him on the throne and ruled the land very efficiently. His wife Śīmatī — In Bharataketia, the country called Kāśī, capital Vāiānasī. King Akampana belonging to the Nāthavamśa, his wife Supiabhā. One thousand sons, Hemāngada, Suketuśī, Śīkānta and others. Two daughters, Sulocanā and Laksmīmatī. The king consulted with his ministers about the marriage of Sulocanā and ultimately decided to hold a Svayamvara. Preparations were started for the Svayamvara and invitations were sent to all kings. On the day of the Svayamvara all the invited kings—Jayakumāra, Aikakīrti (son of Emperor Bharata) etc. and the Vidyādharas were duly welcomed and seated in the gorgeously decorated pandal. The Kañcukī called Mahendradatta (and not the Pratihāra as in VK), led Sulocanā in a chariot to where the kings were seated and introduced each of them to her. Sulocanā passed by all of them and finally came near Jayakumāra. The Kañcukī gave a detailed account of his valour and exploits in the

battles against the gods called Meghakumāra and told her how Emperor Bharata had conferred a unique military distinction on him. Sulocanā put the garland round the neck of Jayakumāra thereby signifying her choice. Prince Jayakumāra was thus the first among princes to have the good fortune of being chosen at a Svayamvara. The other kings were naturally deeply disappointed. One of them—Dumaisana—misrepresented the intentions of Akampana to Arkakūti and provoked him to anger. Arkakūti pledged himself to vanquish Akampana and to wrest Sulocanā from the hands of the latter. A good many of the disappointed kings joined Arkakūti. In spite of the entreaties of his own minister Anavadyamati and those of Akampana's minister too, Arkakūti sent for his Senapati and declared war against Akampana and Jayakumāra. The battle started. Jayakumāra performed diverse incredible feats with his bow called Vajrakānda (given by Bharata). When he came face to face with Arkakūti he tried to argue with him and to persuade him to desist from further prosecuting the war, but to no purpose. In the duel that ensued, Jayakumāra completely overpowered and defeated Arkakūti and took him prisoner and handed him over to King Akampana.

King Akampana felt deeply sorry that matters should have assumed such a grave turn as to result in war with the son of Emperor Bharata. He began to pacify Arkakūti and apologised to him for any offence that Jayakumāra might have given him and offered to him his younger daughter called Laksmīmatī or Aksamālā (Ratnamālā in Hastimalla's play). Arkakūti and his Vidyādharā allies were sent away by Akampana after being duly honoured. Akampana also sent a messenger to King Bharata in order to remove any misunder-

standing in his mind due to the battle that had recently taken place and the defeat sustained by Arkakīrti and in order to offer his apologies to Bharata for the same Bharata gave a quiet hearing to the message and then decided that his son Arkakīrti was really in the wrong and that Jayakumāra was in the right. According to Bharata, it was Arkakīrti who really deserved to be censured and punished. But as he had been on the contrary already honoured by Akampana by giving him his younger daughter in marriage Bharata was quite helpless in the matter.

After the celebration of the marriage of Sulocanā and Jayakumāra, the latter stayed in the house of his father-in-law for some time, enjoying the pleasures of conjugal love. Having received thereafter an urgent call from his ministers, he left for his own capital.

METRES USED BY HASTIMALLA

The total number of stanzas occurring in the four plays of Hastimalla is 912¹ (AP 187, S 134, MK 186, VK 405). Hastimalla appears to be a master of the art of facile versification in Sanskrit and Prākṛit. Śārdūlavikṛīḍita appears to have been his favourite metre, in which he has composed no less than 139 stanzas. Next in order of frequency come Upajāti (111 stanzas), Āṛyā (100), Vasantatilaka (84), Śikharinī (84), Anustubh (83), Mālinī (64), Vamśastha (48), Sragdharā (31),

1 Eight of the stanzas are repeated once each. So the nett number of stanzas is 903. The repeated stanzas are: VK I. 36 = MK II. 37, VK II. 31 = S I. 34; VK III. 6 = MK III. 10, VK III 52 = S IV 15, VK III. 53 = S IV 27; VK V. 73 = MK I. 21; VK V 74 = S III. 17, VK V. 75 = S I. 33.

Harinī (25), Indravajrā (22), Mandākrāntā (18);
 Upendravajrā (16), Rathodhdhatā (13), Aupacchandāsika
 (11), Vīyoginī (10), Prthvī (9), Dīutavilambita (6);
 Puspitāgrā (6), Aparavaktīa (5), Svāgatā (5), Śālinī
 (4), Mañjubhāsinī (3), Vaitāliya (Piākṛit) (3), Adrita-
 nayā (1), Dodhaka (1), Nardataka (1), Pramitāksarā
 (1), Pīahāsinī (1), Bhujangaviṣṛmbhita (1), Rucirā
 (1), Vidyunmālā (1), Avalambaka (1), Ekāvalī (1);
 Ghattā Satpadī (1), Māiakṛti (1) Except for Vaitāliya¹
 (Piākṛit), Adritanayā,² Nardataka,³ Bhujangaviṣṛmbhita,⁴
 Vidyunmālā,⁵ Avalambaka,⁶ Ekāvalī,⁷ Ghatta Satpadī⁸

1 For the Vaitāliya (Prākṛit) metre see Sūtrakṛtānga I 2.
 It is an *Ardhasamacatūspadī* metre, having four lines,
 the scheme of the odd lines being 6 mātrās + Ra-gana
 (— ∪ —) + ∪ —, that of the the even lines is 8 mātrās +
 Ra-gana (— ∪ —) + ∪ —

2 Four lines, each having 23 syllables The scheme is as
 follows ∪∪/∪∪/∪∪/∪∪/∪∪/∪∪ — MK .I.
 5a (pp 3-4)

3 Four lines, each having 17 syllables. The scheme is as
 follows ∪∪/∪∪/∪∪/∪∪/∪∪ — VK V. 67.

4 Four lines, each having 26 syllables Scheme · — —/
 — — —/ — — —/∪∪/∪∪/∪∪/∪∪/∪∪ — MK III 9a,
 p 45, ll 12-15

5 Four lines, each having 8 syllables Scheme — — —/
 — — —/ — — AP VI. 14

6 Four lines, each line having two sections Scheme for
 each section 4 mātrās + Ra-gana (— ∪ —). AP IV 9

7 Two lines, each line having two sections. Scheme
 for each section 5 mātrās + 5 mātrās. MK I 20 a, p. 11,
 line 11: —

8 Six lines; scheme 10 mātrās, 8 mātrās, 13 mātrās, 10
 mātrās, 8 mātrās, 13 mātrās VK II. 14a, p 29, ll. 5-6.

and Māiakṛti,¹ all the other metres used by Hastimalla in his four dramas are of quite common occurrence in the works of classical Sanskrit and Prākṛit poets and dramatists. A complete alphabetical index of all the stanzas occurring in the four plays of Hastimalla and in the Praśastis attached to them has been given at the end of the present edition.²

Hastimalla's ability to handle all these metres in a natural, easy and graceful manner is enough to do credit to any Sanskrit poet. He is quite at home while writing metrical passages and his ease and grace are at times reminiscent of similar qualities in Kālidāsa, Bhavabhūti and others.

LINGUISTIC AND IDEOLOGICAL PECULIARITIES

It is proposed to discuss in what follows a few peculiarities of Hastimalla as evidenced by his four dramas, classified under the following heads: I) Grammatical and Dialectal, II) Lexical, III) Ideological, and IV) Influence of earlier Sanskrit writers on Hastimalla.

I) *Grammatical peculiarities* On the whole the Sanskrit and Prākṛit used in Hastimalla's plays is in keeping with the norm laid down by earlier grammarians. The following peculiarities are however worth being noted: (a) Occasional use of the plural number for the

1 Four lines. Scheme 4 mātrās + 5 mātrās + ~. MK I 26. For the identification of the metres and scansion of the Stanzas mentioned under footnotes 1, 6, 7, 8 on p. 38, and footnote 1 on p. 39 I am indebted to Prof. H. D. Velankar of Bombay.

2 VK V. p. 122 last two lines appear to have a metrical bias, particularly the words कुवलयगर्भदलाग्रमालिका and कठिनयति समस्तमार्दव, which sound like Aparavaktra.

dual in the first person, in original Sanskrit passages and in the Chāyā of Prākṛit passages.¹ b) Unpaunian forms and constructions: AP Act I p. 4: परिसमाप्य for परिसमाप्य; AP Act I. p. 9 अध्यवसितुम् for अध्यवसातुम्; AP Act IV. 18, p 65 वर्तव्यम् for वर्नितव्यम्, AP Act V p 68 निवेदितुम् for निवेदयितुम्; p 74 प्रतिपालितव्यम् for प्रतिपालयितव्यम्; VK Act I. p 11 मा करिष्ठा. for मा कार्षी. or मा कृथा, III. 10 बहुप्रेयसीन् for बहुप्रेयसीकान्; AP Act V p. 68 श्व एव चागन्तव्य. कुमार. for श्व एव चागन्तव्य कुमारेण; MK IV p 76 ब्रूयताम् for उच्यताम्

II) *Dialectal peculiarities*, All the low characters such as Vidūsaka, domestic servants etc and females use Śaurasenī Prākṛit Intervocalic *t* is generally changed to *d* and *th* is changed to *dh* Intervocalic *p* is sometimes retained unchanged. *s* preceded by *anusvāra* is changed to *gh* in some cases, e. g आसवीअद्दु (AP and S) (= आसव्यताम्), आसवा (MK) (= आशंसा) अव + गाह् is represented by ओवाह (AP and S).

Only on rare occasions Prākṛit-speaking characters use Sanskrit e. g. when imitating Sanskrit-speaking characters, e. g. in AP Act I Madhukarikā uses Sanskrit while playing the part of Mīsrakeśī

In AP Act IV, in the scene between Hintālaka and Krūra, Māgadhī is used by both the characters So also in AP Act V Māgadhī is used in the scene between Lavalikā and Camūraka (the *vanacaras*)

In MK III, p. 44 the Sandha (enunch) first speaks in Sanskrit But on page 45, he all of a sudden changes

1 AP, Act I, p 2. तेन हि वय. कुशीलवैः सह सगीतकमारभामहे for आवाम्आरभावहे । p. 7 Vidūsaka जाव इमिणा तमालपादवेण ओवारिअ दक्खम्ह । (chāyā. यावदनेन तमालपादपेनपवार्ये पश्याम. for पश्याव.). p. 9 Pavanamjaya. वयस्य वयमप्यनुपलक्षिता एवासा अनुपदं गच्छामः for आवां...गच्छावः ।

over to Prākṛit and continues to use that very language in his conversation with the Vita On page 46, with stanza 12 he resumes Sanskrit On page 48 there is once again a strange alternation between Sanskrit and Prākṛit. A similar case of sudden change of the dialect occurs in VK Act II p 24, where the Sauvidalla starts with Sanskrit and then suddenly changes over to Prākṛit Both these appear to be cases of scribal error, unless of course we assume that the author himself has resorted to this peculiar procedure purposely. The Sāhityadarpana VI 165 allows Bāla, Sandaka etc to use Śāunāsēnī and occasionally Sanskrit too¹ At VI 162 the Sāhityadarpana says that certain characters like Yosit, Sakhī, Bāla, Veśyā, Kitava and Apsaras may occasionally speak Sanskrit for the sake of displaying their culture and refinement (*Vardagdhya*)

II) *Lexical Peculiarities* The plays of Hastimalla reveal a number of rare and obscure words—Sanskrit and Prākṛit Some of these words might be appearing obscure on account of the unsatisfactory condition of the MSS consulted for AP and S, and on account of the unsatisfactory nature of the text as printed in the editions of MK and VK. Some of these words are enlisted below

AP I p 4 आरातीय (adj near, immediate), सस्त्याय (residence, abode) (cf VK I 8), आत्मनीया (?); p 6 वेतण्ड (elephant), p 7 नाटकसूत्रधारिणी (?), II. p 29 प्रचलायित (nodding the head while sleeping in a sitting posture), IV. p 56 पूल (a bundle, pack), V p 67. कष्ट (?), p 68 सशब्द (conversation, talk), सह्याप (=सहाप) (cf S I p 3, MK III st 13), p 75 वाडवीहि (=वाटवीधि), p 77 विजाता (=प्रसृता), p 78 वेणुतण्डुल (grain of starchy matter found inside the joint of a bamboo, bamboo-seed), p 82-83 पाकसत्त्व (?)

1 बालाना षण्डकाना च सैव (1. e. शौरसेनी) स्यात् संस्कृत क्वचित् ।

VI. p 90 मालुधानी (= लताविशेष); p 98 चचरीकभूय (= चंचरीकभाव cf Pāṇini III. 1. 107, cf सुहृद्भूय VK V 12), VII p 107 दन्व (= दैव); p. 109 आउअ (= आवुक Father, Daddy, Papa), p 109 अपदान (adventure, calamity, valorous, heroic deed), p. 113 अन्यथाकारम् (= अन्यथा) (Pāṇini III 4 27), प्रतिवास (= region, jurisdiction)

S I आर्हन्ती (Aihathood), p 3 गंगामागर (place where the Gangā flows into the ocean), उपश्रुति (supernatural voice heard at night and personified as a nocturnal deity revealing the future), p. 20 धूमाविद (= सतापितम्); II p 22: देवसिअ (? chāyā· दैवसिक); p. 29 अक्षमा (unable, unfit, impatient, infirm and weak), p. 42 अजाकृपाणीयम्, III p 50. चंपण (= मरण chāya), p 52 वाचोयुक्ति (arrangement of words), p 62 वाचिक (message, oral communication), p 67 गलहस्तन (seizing by the neck and turning out, collaring a person, cf. अर्धचन्द्रदान); आमन्त्रणशाला (भोजनगृह, dining hall where mendicants are invited for dinner), p. 71 भोगवली (the panegyric of a professional bard), IV. p 76. आकल्यकम् (?), आत्रेडितम् (cf MK I, p 10 and VK II p 43), p 79 मूलदासः (humble servant, पादमूलदास ?), p 81 नाभिगृहम् (= मातृगृह or पितृगृह, नाभि = near relation, near relationship), p. 33 आक्षपटलिक (government officer, अक्षपटल-court of law), p 85 अतिचार पर्यालोचय् (to make a confession of one's sin), p 86: पर्युपास (= पर्युपासनम्)

MK I 5 रुणा (? = आच्छादिता chāyā), p 4 औपयिकम् (means, remedy) (cf. II p 28), St 8 यदिष्टया (? = यदृच्छया ?), St. 9 पार्श्वग्राही = पार्श्ववर्ती or पार्श्वौ गृहीत्वा हसनशील ?), p 6 मेघोत्कण्ठा, p. 8 पिटातक (scented powder), p 8 वाटक (locality, enclosure), St. 16 आहार्य (costume, attire, cf III. St 1), p. 12 प्रासादिकी घुवा Act II p 27 किकर्तव्यतादूष्य (?); p 28, St. 22. विवेष्टन (?); p. 29, St 25: चुटुक, p 38, St 35: करीपरुप, Act III p 47 कट्टदा (?), St 16 सशनकै (= शनै), p. 48, St 18. सासहीओ (?), p 52. विध्याप्य (to extinguish), p. 54, St 31

चोक्कुर (1), p 55, St 32 शीतलिका (=जलाद्रा? A fan saturated with water), p. 56, St 36 अघनिःश्वास (?), p 59 निर्जडिमतया, जगज्जड, p 61 खण्डाशनिः; p 64 पाहुड्डिअ (? Chāyā प्राधूर्णिक); p 65. गन्धनीहार; p 75 पुष्पगधिका, p 76 दुर्जातम् (false, untrue), p. 85, St 16 विशिखा (a highway).

VK I p 2 तंतन्यमान; p 3 असेचन (क) (charming, lovely), मोचाफल (banana), p 5 सारणी (canal, rivulet), St 9- शीताप (adj to कूपक); उपशल्यभूमि, शीतपाय्यसिलता; p 6 उल्लाघ (आरोग्यवत्-recovered from illness, convalescent), वृत्तान्त-स्थानक, स्वैरचारिपरिपथिपथा; p 7 बाहपितृभि, St 13 कर्करा, p 8- दूष्यपटकायमान (दूष्य- cotton, tent, cf p 9 दूष्यकुटी), p 10 निष्कुट (=गृहाराम); शिखाविशिखा (=रथ्याप्रतोली), p 11 मणिकर्णिका (=कर्णाभरणविशेष), p. 12 उन्मिपितोन्मादनम्, Act II p 21 सौवस्तिके; p 21, St 1 हिक्क; p. 23 तल्लज; मल्लिकाक्ष (पक्षिविशेष), रिँछोलि; गोसर्ग (=प्रभात day-break), p 24 St 8 मज्झमाल (=मध्यमालम्), मज्झआर (=मध्य); आरेवनविटप, p. 28 पुटकिनी (a group of lotuses), p 29 St 15 कारहाट, p 29 St. 16 उच्छिर्लिग (=दाडिम), p 30 मानोश्कम् (=मनोश्त्वम्), पाठीन (मत्स्यविशेष); p 31 खजरीट (हसविशेष), p 32 दोषट (=द्विषट=गज, cf दोषट्ट in Prakrit), तालूरा (chāyā-पुष्पसत्त्वा.), जवाल (mud, moss), कडुगअ (=कुज), p 33 पारिभद्र (द्रुमविशेष), p 35 बाहुदिदुब्बदीकद (chāyā व्याहृतिदुर्बन्दीकृत); तुलंगामेत्त (chāyā यदृच्छामात्र), कमरिका, p 44 St. 34 पारिहार्यं (ककण), St. 35 सहसान (peacock), मन्दसान (? fine), St 36 तलिम (paved ground, pavement), Act III p 46 बाह्यालि (running track for horses), विङ्ग (a gallant, libertine), वामलूर (an anthill), पारिपथिक(परिपथिन्—a robber, waylayer), p 47 पारी, बीटी (a roll of betel leaves), टेटा, नि शस्य, p 48 सौखशायिक (=सौखशायनिक = सुखशयन पृच्छति य), p 49 चच्चा (a doll made of straw), St 13 शिराल (sinewy), प्रचलाकिका (a female snake or peacock), p 50, St 16 वैक्कन, p 50- झझैरा (a whole), वृपस्या (a lustful, lascivious woman), व्याजीकरण (the offering of an excuse), अर्धचन्द्रक (holding by the neck and turning out) (cf. गलहस्तन S p 67); गाणिक्य (the class or society of harlots), p 51:

मत्तकाशिनी (a handsome, lovely woman), St 17 चण्डातक (a short petticoat), सौवस्तिक, p 52 अर्जुका (आर्या); p 53 आजानेय (a well-bred horse), p 53 वानायुकप्रवेक (= वानायुकश्रेष्ठ; वानायुक = a horse from the Vanāyu country situated to the north-west of India), p 54 वेसर (a mule), विक्र (an elephant), आन्दोलिका (a palanquin), p 57, St 33 कर्तुरम्; p 60 प्रभाल (= प्रभावत्); औत्तरार्ध (ruling over the northern half of Vijayārdha), p 65, St 62 कटकासुख, सूचीमुख and अर्धवीटी, p 70, St 67 शकुलपुद्गिन; Act IV p. 74 निर्द्वेष (pitiless, cruel), St 8 अप्रतिचक्र (matchless, cf अप्रतिरथ), p. 76, St 10 कुसृति (fraud, deceit), p 78 अनादीनव (= निर्दोष), p. 79, St 19 सकेतकूटनिष्क, p. 80 अटीकुर्वता; p 81 ज्वाल (swift, rapid), p 82 प्रयोग्य, p. 83 St 29 ग्रहिल (unyielding, relentless, obstinate), p 84 सुवासिनी (a daughter), p 85, St 34 गृह्य (= पक्षपाती, a partisan, sympathiser), p 86, St 35 पीठीकोण (= पादपीठप्रान्त—corners of a foot-stool), कक्ष, पक्ष, उरम्य (military terms), p 88, St 42 अभिमार (attack, on-slaughter), समभिहार; p 88 सफेट (angry, tumultuous conflict), p 89, St 45 आगवेरक (adjective to गज), p 89 चप्प (chāyā विशाल), p 89, St 46 क्षिपणि (a net or sling), St 47 कालंगोद्भव (an elephant), p. 90, खडक्कार (chāyā कटाकार—clanging, metallic sound), p 91 लोलवेदि (chāyā लोलापयति) (cf. Marāthī लोलविणे to dash on to the ground), p 92, St 55 प्रभिन्न (an elephant in rut), p 92 वैवधिक (one who carries loads on a pole) p 97 वदरिद्र (chāyā अवतीर्ण); p 99, St 70 सार्ज रजस, p 99 St 71 पाकल, सुकल and दवथु, p 106 St 93. प्रेक्षयणी, p 106 वाकोवाक्य; p 109 St. 99 गर्भ (eager desire, craving), p 112, St 1 उद्यद्गद्यते; p 113, St 4 अणच्छसरसा (chāyā अनच्छसरसा); p 114 उन्मल्लगम्; p. 119 St 16 वाप्यस्तालस्या; p. 120 आद्यकक्षता, p 125 परोहिडमग्गेण (chāyā पश्चान्मार्गेण), p 129 St 38 तत्रस्त; p. 129 चैत्तुआ (chāyā अभिमारिका); p 129 St. 42 तुगवेडालमाण (chāyā तुगव्रीडालयानाम्), p 130 St 43. चदोवभ (chāyā चदोपक); p 131 St 47 गवल (a wild buffalo); कलाल; p. 133 St. 56 निष्टाप (fierce heat) p 142 St.

76 कापिशायन; p 144 St 78: सौहित्य (satiety, satisfaction), p. 145 St 82 अवतनु (reduced, emaciated body); Act VI. 147 St. 4 विका , p 149 St. 10 लवूष (necklace, festoon), p. 149. St. 11. केशराङ्घ्रिदण्डे , p. 150 St 15. चिबतपाठीन; p 153 St 25 त्रपाते; p. 157 St. 28 शदक; p. 159 अपत्रपातै, p. 160. स्यात्मनिष्ठे:

III) *Ideological peculiarities* The Nāndī stanzas of all the four dramas glorify either one of the Jain Tīrthankaras (AP Munisuvrata, the twentieth Tīrthankara, S and VK. Vrsabha, the first Tīrthankara) or some great hero in Jain mythology [MK Rāmabhadra, the 8th Baladeva, and a contemporary of Munisuvrata, described in MK (p. 94) as चरमदेहधारी पुरुषोत्तमः and (p 88) as मानुषरूपमात्रधारी देवः and further (MK V 44) as Brahma.] Hanūmat was a contemporary of Muni-suvrata and hence the latter appears to have been glorified in the Nāndī of Añjanāpavanamjaya, which deals with the story of the birth of Hanūmat King Bharata and King Kauraveśvara were contemporaries of the first Tīrthankara Vrsabha and hence this latter seems to have been eulogised in the Nāndīs of Subhadrā and Vikiāntakaurava As Rāma was according to Jain mythology a very great personality, it is but proper that he is invoked at the commencement of the drama dealing with the story of his marriage with Sītā

As Hastimalla was a Jain, it is natural for him to make frequent allusions to ideas peculiar to Jain mythology, theology and philosophy A number of such allusions are given below -

AP IV 8 जैनेश्वर साधन; VI. 7 नैर्यन्थ मुनिपुगव; VII. 16 जैन मार्ग, S IV 37 जन शासन, VK III 59 कर्मोसव and निजरण, VK III 74 मेघवक्त्रामरस, AP V pp. 70-71 Vijayārdha Parvata (which forms the scene of many an incident in Jain mythology), AP V p. 75 Nabhugiri, MK IV pp 60-61 and

VK II 7 Nisadha mountain, S I. 4 and IV 7 Himālaya as the first of the Kulapaivatas and as the source of the celestial river, the Rajatācala (i.e. Vijayādhā) as the residence of the Vidyādharas. S I p. 4 Tamisraguhā burst open with a blow of the *dandarātna* belonging to Bharata, the Unmagnajalā and Nimaghajalā rivers and the peculiar behaviour of their waters, S I p. 6 मन्दाकिनीविजयार्धसगम; काण्डप्रपातगुहा described as गगाप्रवेशद्वारभूता, S I 30 (also IV 4) and VK III. 58 the six continents of the earth, MK V. 9 the two Puspadantas and Indra and Pratiṅdia, S II. 21 Striratna as an item of the paraphernalia of the Cakravartin (cf III p 72, IV p 78), S IV 3, VK 54 Jain Scriptures referred to as Śruti, S IV. 3, VK III. 54 Bharata as *Antyamanu*, *Caramadehadhara* (Rāma in MK V p 74 and Hanumat in AP VII p 46 also are called *Caramadehadhara*), वर्णाश्रमस्थितिगु प्रथमोपदेष्टा and वर्णाश्रमस्थितिगुरु (the first organiser, regulator and law-giver of the Varnas and Āśramas in human society) and as the supreme conqueror of the world, VK VI 54, Bharata as मनु. प्रजापत्य (i.e. son of प्रजापति i.e. Lord Vrsabha), S IV 5 and VK III 54, the victorious *cakra* of Bharata, S IV 27 (=VK III 54) Bharata's great feat of archery on the occasion of his *Digvijayayātrā*, VK III 52 submission of the Vijayādhā mountain before Bharata and presentation of the royal parasol and throne, S IV 3 Vrsabha, the first Tirthankara as पुराणपुरुष and चराचरगुरु, VK III 55 Vrsabha as पितामह of the world and as प्रजापति (VK VII 54)

VK III p. 58, King Akampana, father of Sulocanā, (the heroine) is credited with having first started the practice of holding a Svayamvara in the case of a marriageable

princess.¹ The practice of holding a Svayamvara is described as सर्वस्याभिमतः (VK IV. 1) VK III 30 reference to Sthānu as residing on the top of mount Kailāsa and presiding over the divine assembly and delivering the Śiutis, VK IV p 96, reference to *Ugrakula*, VK VI 9, reference to *Pañcopacāra* in the worship of Parameśvara, VK VI 33, reference to पद्मोपासकस्थान; VK VI 33, reference to अद्यतत्त्व and अन्यतत्त्व; VK VI 50, the three fires at the marriage ceremony described as रत्नत्रयात्मान; VK VI. 51, reference to उत्पाद, व्यय and प्रौढ्य, the three characteristics of an existential entity (*dravya*) according to Jainism, VK VI 53, reference to चतुर्वर्ण्य, VK VI 58, the रत्नत्री described as मायातिलिचिनी and सवित्प्रकाशकौटस्थ्यमयी

There are a few references of general interest too VK II p 29 reference to South Indian ornaments (द्रविडविलासिनीताटङ्क), VK Act I p 2 the Sūtiadhāna speaks of his mastery over the *Nātyas'āstra* and refers to one उपाध्याय भरताचार्यपुत्र who is constantly finding faults with him and criticising him at the instigation of certain vile, wretched natas (actors) Who this उपाध्यायभरताचार्यपुत्र is is not known He must have been some contemporary of Hastimalla who was rather jealous of the latter's greatness as a dramatist The reference seems to be autobiographical—MK I p 8, VK III. p 41 ff. description of the Veśavāta (Prostitutes' Quarter), VK III p 66 (last line) reference to the नरलकोमल काव्यवध in Śaurasenī, MK I p 12 reference to Kāmbhojī Bhāsā

The following Brahmanical ideas occur in the four plays of Hastimalla They show clearly how Hastimalla, though a Jaina by faith could not escape the influence of Brahmanical ideas

1 अहो महाराजस्य सर्वातिशायिनी प्रज्ञा, यदुपशमिय प्रज्ञावतामर्हणीया स्वयवर-यात्रा । VK III. p. 58.

1) References to S'ruti (a) VK V. 62 refers to Taittirīya Upanisad II. 1,¹ and actually quotes from the same Upanisad, (b) VK VI 39 refers to Śatapatha Brāhmana, XIV. 9 4 and quotes from the same² 2) References to various details of the sacrificial system (a) VK VI. 36, oblations of ghee at the time of marriage (हैयग्वीनाहुति); (b) VK VI 40, *darbha* grass, *havya* (oblations), *Vedī* (altar), the three sacred fires (*analatraya*), the Sūtra-works (very probably the Kalpasūtras describing the details of the ritual) 3) Reference to learned Brahmins well-versed in the three Vedas³ as officiating at the time of the marriage of Sulocanā with Kauraveśvara, (VK VI 40) 4) Reference to the power of the river Ganges to purify and save sinners (S I. 13).⁴ 5) Reference to the birth of Brahmā from the navel of Svayambhu (VK V 51)⁵ 6) Reference to Bhūtanātha, Supreme God, as *Viś'vātmā* i. e. identical with the whole universe and yet transcending the same (*atītavīś'va*) (VK VI. 52) 7) Reference to Rāma as *Brahma* (MK V 44)

IV) *Influence of earlier Sanskrit writers on Hastimalla* Kālidāsa, Bāna, Bhavabhūti, Māgha, Nārāyaṇa, Viśākhadatta and Śrīharsa are some of the earlier Sanskrit writers who have exercised a considerable influence

-
- 1 केवल लोकविख्याता वायोरग्निरिति श्रुतिम् । Cf. तैत्तिरीय उपनिषद् II. 1: तस्माद्वा पतस्मादात्मन आकाशं सभूत । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । etc.
 - 2 आत्मा वै पुत्रनामेल्यनुभवपदवीमश्नुतेऽसौ श्रुतिर्न . । Cf. शतपथब्राह्मण XIV. 9. 4 आत्मा वै पुत्रनामासि ।
 - 3 त्रयीविशुद्धाः प्रथमे द्विजन्मनाम् ।
 - 4 या पुण्यतोयेति जनस्य मान्या स्वयं पतन्ती पतित पुनाति ।
 - 5 यस्य स्वयंभुवो नाभेर्ब्रह्मणो विदुरुद्भवम् ।

on Hastimalla. I give below a list of passages in Hastimalla's plays wherein it is quite obvious that he has imitated these earlier writers

- 1) KĀLIDĀSA 1) AP I p 6 विदूषक —किं राजहसमवधीर्यं वकोटकमनुसरति वरटा । (किं राजहसमवधीर्यं वकोटकमनुसरति वरटा ।) Cf. Śākuntala III अनसूया—सागरमुञ्जित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति । 2) AP I 19 अद्यापि गृह्णति कर etc reminiscent of Śāk II 12 दर्भाङ्कुरेण चरण क्षत etc 3) AP III pp 37-38 Vidūśaka's speech describing his troubles and sufferings while accompanying Pavanamjaya on the battle-field is reminiscent of the speech of Vidūśaka in Śāk II where he narrates his trials and tribulations while accompanying Dusyanta on the hunt.
- 4) AP V p 69 The scene between Pavanamjaya and the Sūta (charioteer) closely resembles similar scenes in Śāk I and VII and Vikramorvaśīya I 5) Ap V p 76: Reading in B, D विदूषक —वअस्स सणेहो खु पाव सकइ, reminiscent of Śāk IV अतिस्नेह खलु पापशङ्की 6) The whole of the 6th Act of AP, where Pavanamjaya is introduced as searching for his lost wife in the forest, is modelled after Vikramorvaśīya IV 7) AP VII p 114 प्रतिसूर्य —अहं हि ते महाराजमहेन्द्रनिर्विशेषः । तत् स्वामिमा भूमिमनुप्रविष्टासि । Cf. Raghuvamśa XIV 72 8) AP VII p 115 पवनजय —अनुभूतं हि शोकं द्विगुणयति बन्धुजनसान्निध्यम् । Cf. Kumārasambhava IV 26 स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ।
- 9) S I p 3 The glutton-like remarks of the Vidūśaka and the king's rebuff (आस्तामौदारिकसँह्लापः 1), remind us of Vikramorvaśīya III (सर्वत्रौदारिकस्याभ्यवहार्यमेव विषयः 1) 10) S I p 15 राजा - सुन्दरि, साक्षपदीनं सख्यं नाम । Cf. Kumārasambhava V 39 यत् सता सनतगात्रि सगतं मनीषिभिः साक्षपदीनमुच्यते । 11) S II 5 परिवर्तितत्रिका असजयत् सुस्थितमेव नूपुरम् । Cf. Śāk II 12 आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् । 12) S II 13. Cf. Vikramorvaśīya II 10 13) S II p 45 राजा—दुर्विनोददुरतिवाहा विभावरी । Cf. Vikramorv. III 4 राजा—अविनोददीर्घायामा कथं नु रात्रिर्गमयितव्या । 14) S III p 48 कथं च दृष्टिभावः । Cf.

Śāk. II विदूषकः—अथ भवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिरामः। 15) S III p. 58. राजा—स्थाने हि सख्यः कामिनीनां ग्रहणम्। Cf Mālavikāgnimitra III 14 स्थाने प्राणा कामिनां दूत्यधीनाः। 16) S IV p. 90 देवी—आर्यपुत्र, “यथा नैषा नाभिगृहं स्मृत्वा खिद्यति तथैतामप्रमत्तः सभावय। Cf. Śāk III अनसूया—वयस्य “यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाहय। 17) MK III 40 Sītā’s message to Rāma दंसणमेत्तंकुरिओ etc Cf Mālavikāgnim. IV 1. 18) MK III 45 द्विरेफमिथुनं द्रुतं etc Cf Mālavikāgnim II 12 and Vikramorv II. 23 19) MK V 12 रामः—अनर्ध्वरूपामपि etc Cf Śāk I 18 इदं किलान्याजमनोहर etc. 20) VK I 22 इयं चेत् सृष्टा स्यात् etc. Cf Vikramorv. I 8 अस्याः सर्गविधौ etc 21) VK I 24 शीताशोरविनि सृता etc Cf Kumāras I 31 असभृत मण्डनमङ्गयष्टे etc 22) VK III The entire description of the various kings assembled for the Svayamvara is in imitation of the pattern set up by Kālidāsa in Raghuvamśa VI. VK III 43 Cf Raghu. VI 35, VK III 47 Cf Raghu VI 35, VK III 48 Cf Raghu VI 13, VK III 50 Cf Raghu VI 57, VK III 51 Cf Raghu. VI 18, VK III p 60 (प्रतीहार—भवतु, अपर्यनुयोज्याश्चित्तवृत्तयः।): Cf Raghu VI 30 (भिन्नरुचिर्हि लोकः।); VK III 65 (reference to सिंहावात): Cf Raghu VI 35, VK III 69 (reference to वृदावन garden) Cf Raghu VI 50, VK III 73 Cf. Raghu. VI 79 VK III p 69 नवमालिका—प्रियसखि, किम् अन्यतो गमिष्यामः। (सुलोचना साभ्यसूयवैलक्ष्यं मुखं नमयति।): Cf Raghu. VI 82 आर्ये, ब्रजामोऽन्यत इत्ययैना वधूरसूयाकुटिलं ददर्श। 23) VK. III 75 challenge given by the disappointed kings to Jayakumāra, is reminiscent of the situation in Raghuvamśa VII. 24) VK IV Description of the battle on account of Sulocanā is reminiscent of Raghuvamśa VII 25) VK VI 29 स्यात् न पारयति न त्वरयाभियातुम्। Cf Kumārasambhava V. 85 त्रैलोक्यधिराजतनया न थयौ न तस्यौ। 26) VK VI 52 Cf Śāk I 1

11) BĀNA AP I p 15 speech of Mīśakeśī, II p 26 description of the Pramādvana, III p 39 description

of moon-rise, V p. 66 description of Kālamegha (the elephant), VII p 110 speech of Pratisūya, all these passages are in imitation of Bāna's prose-style So also MK III p 44 description of Sitā's desperate condition by the Sandha, VK I p 13, lines 1 and 2, VK VI p 156. description of the Ratnamandapa erected for the marriage ceremony of Sulocanā are reminiscent of Bāna's style

iii) BHAVABHŪTI VK I 20, 21, 28, 33 etc describing Kauveśvara's condition on seeing Sulocanā for the first time, are reminiscent of Mālatimādhava I

iv) MĀGHA 1) AP I p 5 Vidūsaka's speech (line 8 from bottom) प्रतिनवविकसितकुसुमासवलोभपरिभ्रमदिदिदिदि etc Cf Śīsupālavadha VI 14 वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्भ्रमर etc. 2) VK II 1 description of early morning is reminiscent of Śīsupālavadha XI. 3) VK IV p 78 तदिदिदिदानीमनादीनवमावेदित महाराजेन । Cf Śīsupālavadha II 22 यद्वासुदेवेनादीनमनादीनवमीरितम् 4) VK IV 50 प्रभूत क्रीणन्तु प्रधनविपणौ विक्रमपणौ यश । Cf Śīsupālavadha XVIII 15 केचिद्दुर्वीमेव सयन्निषद्या क्रीणन्ति स प्राणमूल्यैर्वशासि ।

v) BHATTANĀRĀYAṆA AP III 14 is reminiscent of the style and thought of Venīsamhāna

vi) VIŚĀKHADATTA 1) S IV 2 सदा सेव्याङ्गीति. etc Cf Mudrāraṅgasa III 14 (भेतव्य नृपतेः etc) and V 12 (भय तावत्सेव्यात् etc) 2) MK V p 81 the Kañcuki's soliloquy regarding the infirmities and disabilities brought on by old age is reminiscent of Mudrāraṅgasa III 1.

vii) ŚRĪHARSA VK I 6 Cf Ratnāvalī I 5

The examples given above are quite enough to show how closely Hastimalla has studied earlier Sanskrit writers He seems to have been particularly a great admirer of Kālidāsa, whom he has every now and then tried to follow

HASTIMALLA A POET AND DRAMATIST

To any careful reader of these four plays it must become evident that Hastimalla is really a master of Sanskrit prose and verse. He writes his prose dialogues and verses in a facile and graceful manner. In the prose passages of the dramas he sometimes indulges in lengthy descriptions abounding in poetic fancies and other figures of speech and involved constructions and long compounds, imitating the style of Bāna in all its good and bad qualities—its occasional simplicity and directness and its frequent gorgeousness and floridity. Dozens of passages could be easily picked from these four dramas wherein Hastimalla seems to be making an effort to emulate Bāna. His indebtedness to earlier writers like Kālidāsa and others has been already dwelt upon in an earlier section of this Introduction (p 49ff). He also now and then displays his fondness of alliteration both in the prose and metrical passages of his dramas. We also occasionally come across the use of paranomasia (*s'lesa*)

We come across several highly lyrical passages in these dramas. Act III of AP dealing with the sufferings of Pavanamjaya due to his separation from Añjanā, under the exciting influence of the moonlight and the soft southern breeze, Act VI of AP containing the ravings and emotional effusions of Pavanamjaya, almost gone mad and roving here and there in search of Añjanā, Act II (pp 24-29) and Act III (pp 54-57) of Subhadra describing the love-lorn condition of Bharata, Act III of MK containing a vivid description of the sufferings of Sitā due to her unfulfilled love for Rāma, the employment of various cooling remedies by her friends to mitigate her sufferings and the aggravation of her condition with every application of the remedies, Act IV of MK giving a description of the torments

of love-sick persons in separation and their sufferings under the exciting influence of the moonlight, Act V of VK depicting the mounting eagerness of King Kauraveśvara to meet Sulocanā—the King, the Vidūsaka, Nandyāvarta and the garden-keeper Gandhamālinī making their own contributions to this symposium on the exciting influence of the moon and that of the vernal breezes blowing northwards from the South—all these are really intensely lyrical passages possessing a good deal of poetic charm and revealing the author's insight into the working of the human mind under the influence of the passion of love

The epigrams occurring in the four plays of Hastimalla which have been collected and presented below, in an independent section, show clearly how Hastimalla is a master of happy phrases and pithy and terse expressions full of sound sense. Though sometimes his dramas abound in long narrative and descriptive passages, rather out of place in a drama, he shows himself on the whole to be a master of effective and entertaining dialogue

The plots of all these plays are based on incidents occurring in Jaina Purānas and the author has faithfully followed them except for some changes here and there, as shown in an earlier section of this Introduction. The plays do not contain any really gripping dramatic situations worth mentioning, nor do we come across situations wherein we can see the characters growing and developing as they pass through those situations. The characters are thus for the most part static and not dynamic so far as their growth and development within the limits of the dramas are concerned

The chief merits of Hastimalla are therefore 1) his beautiful versification, 2) the simplicity, directness and

facile grace of his style, 3) his descriptive art; 4) his epigrammatic wisdom, 5) and his *pechant* for composing lyrical scenes

SUBHĀSITAS IN HASTIMALLA'S PLAYS

The four plays of Hastimalla contain a pretty large number of Subhāsitas. Fearing that they would not receive the attention which they deserve from the reader, they have been collected below from the different plays. Sanskrit literature is already rich in epigrams, and Hastimalla's contribution is quite worthy of that great heritage. Some of them exhibit his mature observation and moral values, while others bring out his literary merits. Hastimalla is a master of expression, and more so in his epigrams, which very often though short are full of sound sense.

AÑJANĀPAVANAMJAYA

- I p. 2 यत्सत्य नाटकान्ता* कवयः । (Of गद्य कवीना निकष वदन्ति ।)
 I St. 2 समीचीना वाचः सरलसरला कापि रचना, परा वाचोयुक्तिः कविपरिषद्वाराधनपरा । अनालीढो गाढ* परमनतिगूढोऽपि च रसः, कवीना सामग्री झटिति चलितं कं न कुरुते ॥
 I p 6 किं राजहंसमवधीर्यं बकोटकमनुमरति वरटा ।
 I p 8: चन्द्र एव खलु चन्द्रिकायाः सभाव्यते ।
 I p 9: दुरवगाहा हि भागधेयानां परिपाका* ।
 I p 11: यथा स्थिता कथा तथैव खलु कथयितव्यम् ।
 I p 13 स्थाने खलु स्त्रिय हि नाम लज्जा भूषयति ।
 I. p 17 किं नाम दुरवगाह हृदयनिर्विशेषस्य सखीजनस्य ।
 II. p. 21 न खलु कदाचिद्राजसिंहः करिकलभैरभियुक्तो भवेत् ।
 II p 24: नववधूसमागमोत्सवो नाम कामिजनमनःसमावर्जनैकरसो मदनस्य रसान्तराभिवेशः ।
 II p 24 स्वभावतो हि नवसमागम स्वयमेव कामिनीनामनावेधानुद्भावयति भावान् ।
 II p. 25 न चाल्पीयानपि कालः प्रियाविरहेणातिवाहयितुं पार्यते ।
 II. p 27. इह खलु कामिना हृदयेषु क्रमादुत्कण्ठासहस्रबद्धामजस्र सोपान-परिपाटीमधिरोहति मदनः ।

II. p 27 St 10 भवति ललना चेत. श्रुत्वा विलोकनसत्त्वर, तदनु भजते
दृष्ट्वा चिन्ता समागमशसिनीम् । पुनरविरहोपायं वाञ्छत्यवाप्य समागम,
प्रतिपदमसौ कामोन्माद क्रमेण विवर्धते ॥

II p 33 St 17. वदन्ति राशममात्यनिष्ठा वृत्तिम् ।

II. p. 35 St 19 निर्भिन्नद्विरदेन्द्रमस्तकतटीनिर्मुक्तमुक्ताफलश्रेणीदन्तुरद-
न्तकुन्तविवरो यो राजकण्ठीरवः । सोऽय मानमहान् स्वय मृगशिशुव्यापाद-
नव्यापृत , किं कीर्त्यन्तरमात्मनो जनयति प्रख्यातशौर्योचितम् ॥

II p 35 St 20: पुत्रेष्वनिर्वापितविक्रमेषु विद्याविनीतेषु भवादृशेषु । यथा-
वदारोपितकार्यभारा स्वैर नरेन्द्रा सुखिनो भवन्ति ।

III p 38: सर्वथोद्वेजनीय खलु राजपुत्रमित्रन्व नाम ।

IV. p 54: तथापि किं चन्द्रलेखापि गरलमुद्गरिति, चन्द्रनलना वाऽग्निम् ।

IV p 56, St 1 निरवद्य चारित्र्यं शास्त्रापि निजाभिजात्यपरवत्य ।
विभ्यति खलु कुलवनिताः परिवादलवादपि प्राय ॥

IV p 56, St. 3 परिणतिरपि जाता कुत्रचिद्गर्हणीया ।

IV p 58. कष्टमुद्वेजनीया खलु परपिण्डगृध्नुता ।

IV p 64: यद्वा तद्वा भवतु । अनुलघनीया खलु स्वामिनीसदेशा ।

IV p. 64, St 17 इन्द्र तावच्चिन्त्य सपदि सुकृतादप्यसुकृत, पर प्रेयः प्रायो
भवति निखिलस्यापि जगतः ।

V p 76 (footnote) सणेहो खु पाव संकड । (खेह खलु पापं शङ्कते ।)

p 77 St 19 आभिजात्यपरिपालने रता सर्वतोऽपि परिवादभीरवः ।
सगृहीतपतिदेवताव्रताः श्लाघनीयचरिताः कुलाङ्गना ॥

V p 79 St 23. अननुभूतवियोगकथामपि प्रियतमा प्रणयादुपलालयन् ।
भवति यः परिपूर्णमनोरथो युवजन सुकृती स हि कामिनाम् ।

V p 86. स्वच्छन्दचारिणः खलु प्रभवो भवन्ति ।

VI p 88 St 2 उद्दामपद्मवाणे पयोदकाले सुदुस्सहे के वा । धीरा विहाय
जायासमागम केवल च जीवन्ति ॥

VI p 84, St 4 अनुभाव्य एव वाढ जन्मान्तर एव कर्मपरिपाक ।

VI. p 93, St 23 चिरतर विधिना प्रतिबन्धिना विघटितानि मिथो
मिथुनान्यपि । घटयितु प्रभवत्यचिरादिव स्वयमसौ भगवान् रतिवल्गवः ॥

VII. p 107 न खलु दुष्कर नाम दैवस्य ।

VII p 109 सत्य खलु तद्, जीवन् भद्र प्राप्नोतीति ।

VII p 112 दिव्यचक्षुषो हि महर्षयः ।

VII p 115: अनुभूत हि शोक द्विगुणयति बन्धुजनसान्निध्यम् ।

SUBHADRĀ NĀṬIKĀ

- I p 2 नानादेशपरिभ्रमो नामैक सौख्य पुरुषस्य ।
 I p. 15. साप्तपदीनं नाम सख्यम् ।
 I p. 20, St 38 व्यलीकसंकल्पनिरुत्सुके जने करोति शङ्का मनसः परा
 रुजम् ।
 II p 23: सर्वथा असतुष्टा खलु राजानः ।
 II p 24, St. 3 अपि गाढमनोरथाकुलो विषमो गक्रम एष मन्मथः ।
 II p 26. न खलु साध्यसिद्धये भूयोव्यापृतिमाकाङ्क्षति साधनस्य प्रकृष्ट-
 गुणता ।
 II. p 26, St 9 एकत्र वस्तुन्यसकृत्प्रहरानपेक्षते जातु न वज्रधारा ।
 II p 28, St 13 अध्याते चालेख्ये दु शकमालेखन नाम ।
 II p 32 समसुखदुःखे पुनः शरीरमात्रभिन्ने सखीजने भावनिगूहन ददाति
 खेद चित्तस्य वचनीयता स्नेहस्य ।
 II p 36 ईदृशा महापुरुषा न कदापि दाक्षिण्यमुज्ज्वन्ति ।
 II p 41 राजानुवर्तेन खल्वेतादृशानां (विदूषकसंघशानां वराकाणां)
 युक्तम् ।
 II. p 42. तदेद्रजाकृपाणीय नाम ।
 II p 43, St 23 अन्यत्र दाक्षिण्यवतोऽपि पुसः ससक्तमेकत्र समुत्सु-
 कत्वम् । काम हि सत्यप्सरसा सहस्रे विशिष्टमिन्द्रस्य शचीपतित्वम् ॥
 III p 51 प्रियभाषिण्यः खलु सख्यः ।
 III. p 51 सर्वथा न विसवदन्ति निमित्तानि ।
 III. p 54, St 3 वामे विधौ भो खलु को न वामः ।
 III p 56, St. 10 स्त्रियः प्रकृत्या ननु कोमलाः ।
 III p 58. स्थाने हि सख्यः कामिनीना शरणम् ।
 III p 63. अथवा सर्वतो निपतन्ति पुरुषाणा दृष्टयः । विशेषतः पुना
 राज्ञाम् । तस्मात्तदेव स्त्रिया बह्वभर्त्वं याऽपराद्धे च प्रसाद दर्शयति । अतिकोप-
 नाया बह्वभा अपि उद्विजन्ते पुरुषा । . . कुर्पिताया बह्वभायाः स्वयमुप्यपसर्पण-
 मेव प्रसाद ।
 III p. 66, St. 21 अतिक्रम प्रेयसि बद्धकोपा विधाय पूर्वं विहितव्यलीके ।
 स्त्रियो हि किञ्चित्परिवृत्तकोपा भवन्ति जातानुशया क्रमेण ॥
 III. p. 67. एतत् खलु तद् आमन्नणलालसया विमुक्तभिक्षापरिभ्रमणस्य
 आमन्नणशालाया गलहस्तनम् ।
 III. p 70. गत गतम् । गन्तव्यमिदानीं चिन्त्यताम् ।
 III. p 72: आकाश एवोत्पन्न रत्नम् ।

III. p 72, St 27 प्रत्यक्षमन्मथार्तिप्रकाशनादपि मृगीदृश प्राय ।
रमयत्यनङ्गलेख समुत्सुक कामिनश्चेत् ।

IV p. 74 अथवा मनोरथैरुविषय एव परपरिचरणपराधीनस्य मादृशो जनस्य
नैराश्यसुखरसास्वादः । सर्वथा धिगेनामेन प्रणालिका सेवानियन्त्रणाम् ।

IV p 74, St 2 सदा सेव्याङ्गीति परपरिभवास्वादलघुता, परिक्लेशो
भूयान्धनलवकूनोन्मादजडता । अवृत्तिवृत्तेष्वप्यनवसरलाभाद्धिमुखता, विहन्त्येव
सेवा तदियमिह चामुत्र च सुखम् ॥

IV p 83 अथवा यत्नान्तरनिरपेक्षैव महाभागाना समीहितसिद्धिः ।

IV p 83, St 24. स्वैर फलानि वितरत्प्रविहाय दैव यत्नान्तर किमिति तत्र
गवेषणीयम् ।

IV p 86 अथवा कुतो मितभाषिता लघुचेतसाम् ।

MAITHILĪKALYĀṆAM

I p 2 वशीकरोति खलु कविजन सुभाषितम् ।

I p 3, St 4 दुरधिगमभावा हि कवय ।

I p 5, St 9 श्रुत यद्वा तद्वा नयति मदनोद्दीपनपदे, प्रकृत्या यच्छीत
गणयति च तत्तापजननम् । यदेवादौ वाछेत्तदनु तदपि द्वेष्टि सहसा कथ
पार्श्वग्राहो न हसति जन कामुकजनम् ॥

I p 5, St 10 सतापाना कान्ता निबन्धन यैव दुर्निवारणाम् । तामेव
किलान्विच्छति तेषामिच्छन् प्रतीकारम् ॥

I p 13, St 26. या आरोहति दोला कान्तेनापि वसन्ते । शीर्षे खलु
सुवतीना सा यौवनवतीनाम् ॥

II p 19, St 4 विघटितफला नम्रारभा भवन्ति मनस्विनाम् ।

II p 20. औत्सुक्य खलु जनस्य सर्वथा पौरोग्याय ।

II p 22, St 8a न तथा द्रयिता समन्मथा न तथा पातितमर्धवीक्षितम् ।
मनस परितोषण यथा प्रियमित्रै कथित प्रिया प्रति ॥

II p 22, 8b अनवाप्तफलो यथा वयस्य प्रियमित्रस्य कृते कृतप्रयत्न ।
विवृणोति सुहृत्त्वमत्युदार न तथाऽवाप्तफलो विना प्रयत्नात् ॥

II p 25 अनात्मज्ञत्वमप्युपालभोपक्रममेव मन्मथव्यथाया ।

II p 27: यत्र खलु मन प्रवर्तितम् अक्षमपि स्वय गृह्णाति ।

II p 29 एष खलु स शान्तिकर्मणि भूतोत्पातो येन शिगिरोपचार एव
संतापोत्पत्तेर्हेतु ।

II. p 29, St 26 क विषयेषु विवेकसहं मन स्मृतिविमोहजडा क च
कामिनः ।

II p 30: कथमन्यथा चिन्तितमन्यथा परिणतम् ।

- II. p 31 को वात्मनः सन्तापहेतुमभ्यर्थयति ।
 II p 31. सौख्यहेतुरिति प्रार्थितः सन्तापहेतुर्जातः ।
 III p 40 शोभन खलु लौकिका भणन्ति नास्ति ससूर्ये वासरे प्रदीप-
 स्यावसर इति ।
 III p 41 कलभगमन खलुत्तमाना पुरुषाणा गमनम् ।
 III p. 43 राजपरिवारे कुब्जा वामना एडा मूका वर्बरा किरांतास्तिष्ठन्ति ।
 III p 45, St, 9 जत्थ हु पढम दिण्णो अच्छीण ऊसवो पिअजणेण ।
 उक्कठिअ जण पुण सोवि पएसो विगोदेइ ॥
 III p 46, St 11 धुत्ता हु णाम—महिलं अपुव्वआमवि विस्सद्ध विअ
 कुणति चाडूहि । तह तह वि णिवारिता कहवि ण मुचति पत्थेत्ता ॥
 III p 49 कथ सूर्यं हस्तेनापवारयसि ।
 III p 51, St 22: स्वच्छान्तरात्मापि गुणैर्न मन्ये न स्याद्वशे दर्पकशास-
 नस्य ।
 III p 53. अहो सकल्पाना द्रढिमा ।
 III p 53 उभय खलु विरहवतीना प्रियजनसमागमसौख्य जनयति,
 सकल्पा निद्रा च ।
 III. 56 सखीजनायत्तं खलु विरहिणीना जीवितम् ।
 III. 57 समसुखदुःखो हि सखीजनः ।
 IV p. 62 रहस्ये खलु तावदात्मापि शकितव्य ।
 IV p 71, St 2 हन्त शोचनीया खलु विरहिणः । ते हि । प्रसर्पन्ती
 ज्योत्स्ना मदनविजयारभरभसप्रमदोत्था धूलिं किल वियति पश्यन्ति विधुरा ।
 किमन्यन्मन्यन्ते मलयगिरिवार्तांश्च पवनान् मकोपं प्रोन्मुक्तान्यममहिषशूकार-
 मरुत ॥
 IV p 76 संगीतकविदग्धा हि प्रायो राजकुलपरिचिता स्त्रियः ।
 IV. p 78 असाधारणरमणीय खलु नववधूविहृतम् ।
 IV p, 79 अहो दुःसहता प्रियाविरहस्य ।
 V. p 81 अहो वाञ्छक नाम गुणाय सपद्यते ।
 V p. 83 प्रिया हि नाम जनस्य समोहिनी विद्या ।
 V p 84, St 13 अवलुप्तभुजङ्गलोकनाथप्रियकान्तास्तनपत्रभङ्गकान्ते ।
 गरुडस्य गरोद्वराद्वरीयान् वद वल्मीकभव कियान् फणी स्यात् ।
 V. p 85, St. 15 के वा वारणकुम्भपीठदलने सिंहादृतेऽन्ये मृगा ।
 V p 90, St 29: प्रकृत्या कश्चिद्विगुण स्याद्गुणाधाननम्रः ।
 V. p. 93, St. 41 कक्षात्कक्ष विविक्षु शशशिशुमशनैरुत्प्लुत विधुताक्ष कि
 दृष्ट्वा हन्त हन्तु कलुषयति मुधा मानसं राजसिंहः । यस्य क्रोधान्धगन्धद्विरदनर-
 दनद्वन्द्वकदान्तरालस्थाली निर्मुक्तमुक्ताफलशकलशिलादन्तुरा दन्तर्पत्ति ॥

V. 93, St 43 पर्जन्य प्रति गर्जता मदनदत्तोतोमुचां दन्तिनां संघर्षेण मुधैव यत्किल मुहु प्रागर्जितं गर्जितम् । तर्त्कि कर्तुमल बलाद्गजरिपौ दन्तापिता-
घ्नद्वये मस्तिष्काहरणाय मस्तकतट स्वच्छन्दमुच्छिन्दति ॥

VIKRĀNTAKAURAVA

I p 2, St 3 एतद्देहानुभाव्ये प्रचुरधनचये नास्ति कस्यापि वृत्ति, कान्ता-
वर्गेऽपि तद्वत्तरुणिमवयसा केवलेनानुभाव्ये । तस्मात्सजृम्भमाणे प्रसरति च विना
देशकालव्यवस्था, कीर्तिस्तोमेऽभिरामे जगति कृतमते कस्य वा स्याद्विरक्ति ॥

I p 8. कथमसावनाकलितकालातिपात पातयति कामुकानापानदु सहायामा-
पदि मदन । तथा हि । क्षणाद्वैर्यग्रन्धि शिथिलयति निर्मथ्य विनय, क्षणालज्जा
भङ्गन् क्षपयति विवेक पटुमपि । क्षणादन्यामन्या सृजति रुजमन्तर्वहिरपि,
क्षणात्कामं काम जनयति जिगीषूश्च पुरुषान् ॥

I p 12 तदेतदुन्मिषितोन्मादनं यदुत कामयमानस्य पुस प्रेयस्या सह
नयनसमेद ।

I p 13 न खलु अन्तर एवावस्थान निपतत- प्रस्तरस्य ।

I p 13 युक्तमेव प्रियसुहृदे स्वानुभूत निवेदयितुम् ।

I p 15, St 26: यद्वा यत्स्पृहणीयमस्ति सुलभास्तस्यान्तराया भपि ।

I. p 17. असहायं खलु मन्मथास्त्रमभिमतमनुरज्यत पुस प्रत्यनुरागदानम् ।

I p. 19, St 38 मनोरथशतार्ताना प्रोषिताना प्रमाथिनी । निशीथिनी
जगज्जिष्णोर्मन्मथस्य वरूथिनी ॥

II. p 35 सयौवनस्य जनस्याभिमतदर्शन उत्खण्डितधैर्यार्गल, अपनीतलज्जा-
तिरस्करिणीक, दु सहारभककौशो मदनो नाम कोऽप्यन्तकरणमधिक्षिपति ।

II p 37 यदा खल्वपर प्रतिबन्धक नास्ति तदा ननु चिन्तित कथ्यते ।
कन्यकाजनस्य पुन- सुस्त्रिगधेऽपि जने प्रतिवधाति भावावेदन निसर्गसिद्धा लज्जा ।

II p 38: महता भागधेयेन कन्यकानामभिरूपतम पतिर्लभ्यते, तच्च पुण्य-
मपि केवल मानुष्येति ।

II. p 39 अहो स्पृहणीय कन्यकाना व्रीडाव्यतिकर ।

II p 43 अहो दुर्विषहता प्रियाविरहव्यथाया ।

III p 45, St. 1. गुणा एवाहार्यं भवति पुरुषाणा बहुमतं, स्त्रियः स्वैर हार्याः
प्रणयचतुरैश्चादुवचनै । धन पात्रे दत्त न खलु वसुगुप्तिर्धनवता, कवीना काप्यन्या
भणितिरभिजाता विजयते ॥

III p 48, St 10 न बहुप्रेयसीन् पुस- कामिन्यो बहु मन्वते । पुमांसो
वह् मन्वन्ते बहुपुसीर्न योषितः ॥

III. p. 50, St. 16: निदोषा भणितिर्निसर्गमधुरा निर्मत्सरा शेमुषी निष्पापा
नृपता जगद्बहुमता गीतिश्च निर्वैकृता । निर्दोषा चरितस्थितिर्गुणवती वेश्या च
निर्मातृका यत्सत्य बहुनापि भाग्यवसुना लभ्येत वा नैव वा ।

III p 52 अहो लालनीयता बाल्यस्य ।

III p 55: कुमुदाकरमेव हि कौमुदी सभावयति ।

III. p 56: अहो सौकुमार्यमपि योषिता, कार्कश्यमेव पुष्णाति पुष्पायुधस्य ।

.. 'मुष्णाति च विषमेषुदूषिता शेमुषी सत्त्वोन्मेष पुरुषस्य ।

III p 56. अहो सस्कारसन्तानस्य द्रढीयसी प्रौढी ।

III p 58, St 36 पिना वा माना वा भवतु स वरस्तादृगथवा, कुमारी
तच्छन्दं निभृतमवगच्छेदिति तु यत् । तदप्येषा दत्तिल्लघयति यदस्या रमयितुर्गुण
चा दोष वा स्वरुचिमु चक्षुर्विमृशति ॥

III p 60. अपर्यनुयोज्याश्चित्तवृत्तयः ।

III p 64 अलक्षणो विषमेषुव्यापारः ।

IV p 72, St 2: वीभत्सोपहता धिगस्तु विषयोन्मुग्धामिमा कामिताम् ।

IV p 75. किंचेदमात्मवतामनभिमत दु शिक्षितजनदुरुपदेशेषु श्रोत्रदान-
व्यसनम् ।

IV p 76. सा खलु चक्षुष्मत्ता यदुत परपरिग्रहगर्हितेषु जनुषान्धत्व
कलत्रेषु । सैव च श्रुतिमत्ता यत् किल दुर्दान्तजनदु-प्रलपितेषु पुरुषस्योच्चै-श्रवत्वम् ।
स. खलु विक्रामति यस्य निसर्गदुर्मागप्रसगमलीमसैरिन्द्रियमलिम्बुचैर्न मुष्यते
हृदयम् । अभिजातजनहारयता (?) च भृशयति मानिनो यशस्विताम् । विगीता
रणचुम्बिता च विवृणोति पुसामचातुर्यम् ।

IV. p. 79 किंतु सधानमतिसधानमिति द्वे इमे न कापि सभाविते वतिष्ठेते ।

IV. p. 83, St. 30: वैयात्य सहज नृणा दमयितु नैवापरैः पार्यते ।

IV. p 85: बलीयो हि प्रभविष्णुताया अपि सौहार्दम् ।

IV p. 90, St. 50 अवश्यं मर्तव्य कतिचिदतिवाह्यापि दिवसानल विद्युल्लेखा
विलसितविलोलैः कद्रसुभिः । प्रभूत क्रीणन्तु प्रधनविपणौ विक्रमपणैर्शः । स्थास्तु
ज्योत्स्नाशुचि रणरुचिव्यग्रमनसः ॥

IV p. 93, St. 57. बलवानपि सग्रामे हीन शिक्षापराङ्मुख ।

IV. p. 105 - अविचारिताचरणनिष्ठो हि पुमानचिरेण विपदुपघ्नतामातिष्ठते ।

V. p 112: अहो वैरूप्य वार्द्धकस्य । वयासि वेपथूदूतवारवाणच्छलात्स्वयम् ।
उड्डीयेव पलायन्ते सोद्वेग तनुवैकृतम् ॥

V. p 118, St. 11 मदाज्ञो भवति प्रमाद्यति जने को वा विनेये सुधी ।

V p 122 प्रियतमास्पर्श इति हि किमप्यन्यत्सपन्न रसायनमुत्कठमान-
स्यान्त करणस्य ।

V p. 123 अहो अदीर्घसूत्रता मदनस्य । यतः सनिकृष्यमाणोऽपि प्रणयिनी-
समागमसमयो नालममुष्यात्मनोपस्थापनाय ।

V p 130, St 44 अहो निरकुशता शशाकरोचिषाम् । तथा हि ।
रभसकृतविकाशः काममुक्ताट्टहासः सुरपथपटवासोऽनल्पकपूर्धूलि । विशदयति
दिगन्तानिन्दुपादप्रसार कलुषयति तु चिन्ता केवल प्रोषितानाम् ॥

V. p. 131, St. 46 शरणमुपगताना हिंसिता को नृशसः ।

V. p 132, St 54 अपर्यनुयोज्याश्च स्वभावा भावानाम् । कुत ।
किमपकृतममुष्य चक्रवाकै किमुपकृत तुहिनाचिषश्चकोरै । व्यथयति विघटय्य
चक्रवाकास्त्वमपहस्य धिनोति यच्चकोरान् ॥

V. p 138, St. 71 कथ पनस केवल सुमधुराणि पुष्पैर्विना फलानि फलता
त्वया फलविद्याकमूक समः । चरच्चटुलचचरीकचरणाहतोच्चावचप्रकीर्णसुमनोरज -
पटलपाटल पाटल ॥

V p. 145 अहो दुष्पारप्रसराणि कामुकजनस्य आकाशपरिदेवितानि ।

V p. 145 अये प्रचुरप्रतिपक्षसक्षुण्णा प्रवासिना प्रवृत्ति । कुत । क्षपानाथ-
सत्त्व क्षपयति करैरुल्मुकखरैर्वसन्त सन्ताप प्रगुणयनि सतर्ज्य शिशिरम् ।
घनामोदाहृद्भिधि (?) श्वसितमथनैव श्वसनतः स्मर प्रत्याख्यातो विरहिमनसा
घस्मर इति ॥

VI p. 150: तदिदमलक्रियते व्रीडित विभ्रमेण ।

VI p. 150 अहो श्लाघ्यता सौकुमार्यस्य ।

I p 153: अहो रमणीयविषमता नववधूविभ्रमस्य । यत्र हि । करस्पर्शोद्भिन्नै-
पुलकमुकुलै स्वेदसरसै , परिव्यक्ति प्रेम्ण प्रणयपरिणामाद्विकसिता । न दृष्टैस्ति-
र्यग्भिर्न खलु परिरभैरमृदुभिर्न सजल्पै स्निग्धैर्न च वदनचद्रैरुपहतै ॥

वच किंचिद्वक्त्रादभिलषति निर्गन्तुमसकृत्, स्फुरन्नन्तर्लग्नस्थिति तदधरोष्ठ
स्फुटयति । यत्तेते रज्यन्त्यौ न खलु न दृशौ द्रष्टुमपि नस्यपाते रुन्धाना चलयति
कुतोऽपि त्वमहना ॥ प्रत्यालिंगनतोऽपि यत्र सुखदौ स्रस्तावमुक्तौ करौ, वक्त्रेन्दोर-
पहार एव सरसो यत्रोपहारादपि । यत्र स्वादुरुदचतोऽपि वचसो निश्वास एव कुल ,
सोऽय प्राणममासमागमरस प्राथम्यरम्यक्रमः ॥

ADDENDUM

AP VI, p 87 lines 19-20 (जलदसमय वहू । पिअविरहिआ विअ । उअ
पदुमिणी इमा । इह परिमिलाअट्टि ।) appear to be unmistakably
metrical The metre is Cāru—a Prākṛit metre. Scheme
Four lines, each having ten mātrās [5 mātrās + 5 mātrās
(Ra-gana —)]. (Vide H. D Velanka Prākṛita and Apa-
bhramś'a Metres, JBBRAS, New series, Vol 22, 1946)
This was omitted by oversight, both while printing the text
and writing the section—Metres used by Hastimalla (pp.
37ff), and also the Index of stanzas

नाट्यकार हस्तिमल्ल

दिगम्बर-जैन-साहित्यमें हस्तिमल्लका एक विशेष स्थान है। क्यों कि जहाँतक हम जानते हैं रूपक या नाटक उनके सिवाय और किसी दि०जैन कविके नहीं मिले हैं। श्रव्य काव्य तो बहुत लिखे गये परन्तु दृश्य काव्यकी ओर किसीका ध्यान ही नहीं गया। हस्तिमल्लने साहित्यके इस अंगको खूब पुष्ट किया। उनके लिखे हुए अनेक सुन्दर नाटक उपलब्ध हैं।

वंश-परिचय

हस्तिमल्लके पिताका नाम गोविन्दभट्ट था। वे वत्सगोत्री ब्राह्मण थे और दाक्षिणात्य थे। स्वामी समन्तभद्रके देवागम-स्तोत्रको सुनकर उन्होंने मिथ्यात्व छोड़ दिया था और सम्यग्दृष्टि हो गये थे। उन्हें स्वर्ण यक्षी नामक देवीके प्रसादसे छह पुत्र उत्पन्न हुए—१ श्रीकुमारकवि, २ सत्यवाक्य, ३ देवरवल्लभ, ४ उदय-भूषण, ५ हस्तिमल्ल और ६ वर्धमान। अर्थात् वे अपने पिताके पाँचवें पुत्र थे। ये छहोंके छहों पुत्र कवीश्वर थे इस तरह गोविन्दभट्टका कुटुम्ब अतिशय सुशिक्षित और गुणी था।

सरस्वतीस्वयंवरवल्लभ, महाकवितल्लज और सूक्ति-रत्नाकर उनके विरुद थे^१। उनके बड़े भाई सत्यवाक्यने उन्हें 'कवितासाम्राज्यलक्ष्मीपति' कहकर उनकी

- १- गोविन्दभट्ट इत्यासीद्विद्वान्मिथ्यात्ववर्जितः,
देवागमनसृष्टस्य श्रुत्या सदृशान्वित ।
अनेकान्तमत तच्च बहु मेने विदावरः,
नन्दनास्तस्य सजाता वार्धिताखिलकोविदाः ॥
दाक्षिणात्या जयन्त्यत्र स्वर्णयक्षीप्रसादतः ।
श्रीकुमारकविः सत्यवाक्यो देवरवल्लभः ॥
उद्यद्भूषणनामा च हस्तिमल्लाभिधानक ।
वर्धमानकविश्चेति षडभूवन्कवीश्वरा' ॥ वि० कां०

२-अस्ति किल सरस्वतीस्वयंवरवल्लभेन भट्टारगोविन्दसुनुना हस्तिमल्लनाम्ना महा-
कवितल्लजेन विरचि ः विक्रान्तकौरव नाम रूपकमिति । -वि० कौ०

सूक्तियोंकी बहुत ही प्रशंसा की है। राजावली-कथाके कर्ताने उन्हें उभय-भाषाकवि-चक्रवर्ती लिखा है।^५

हस्तिमल्लने विक्रान्तकौरवके अन्तमें जो प्रशस्ति दी है, उसमें उन्होंने समन्त-भद्र, शिवकोटि, शिवायन, वीरसेन, जिनसेन और गुणभद्रका उल्लेख करके कहा है कि उनकी शिष्य-परम्परामें असंख्य विद्वान् हुए और फिर गोविन्दभट्ट हुए जो देवागमको सुनकर सम्यग्दृष्टि हुए। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वे उक्त मुनिपरम्पराके कोई साधु या मुनि थे। जैसी कि जैन ग्रन्थ-कर्ताओंकी साधारण पद्धति है, उन्होंने गुरुपरम्पराका उल्लेख करके अपने पिताका परिचय दिया है।

हस्तिमल्ल स्वयं भी गृहस्थ थे^६। उनके पुत्र-पौत्रादिका वर्णन ब्रह्मसूरीने प्रतिष्ठा-सारोद्धार में किया है। स्वयं ब्रह्मसूरी भी उनके वंशमें हुए हैं। वे लिखते हैं कि पाण्ड्य देशमें गुडिपत्तनके शासक पाण्ड्य नरेंद्र थे, जो बड़े ही धर्मात्मा, वीर, कलाकुशल और पण्डितोंका सन्मान करनेवाले थे। वहाँ वृषभतीर्थकरका रत्न-सुवर्णजटित सुन्दर मन्दिर था, जिसमें विशाखनन्दि आदि विद्वान् मुनिगण रहते थे। गोविन्द भट्ट यहींके रहनेवाले थे। उनके श्रीकुमार आदि छह लड़के थे। हस्तिमल्लके पुत्रका नाम पार्श्वपंडित था जो अपने पिताके ही समान यशस्वी धर्मात्मा और शास्त्रज्ञ थे। ये अपने वशिष्ठ काश्यपादि गोत्रज बान्धवोंके साथ होयसल देशमें जाकर रहने लगे, जिसकी राजधानी छत्रत्रयपुरी थी। पार्श्वपंडित के चन्द्रप, चन्द्रनाथ और वैजय्य नामक तीन पुत्र थे। इनमें चन्द्रनाथ अपने परिवारके साथ हेमाचल (होन्नूर) में अपने परिवारसहित जा बसे और दो भाई अन्य स्थानोंको चले गये। चन्द्रपके पुत्र विजयेन्द्र हुए और विजयेन्द्रके ब्रह्मसूरी, जिनके बनाये हुए त्रिवर्णाचार और प्रतिष्ठा-तिलक ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

३ किं वीणागुणशंकृतैः किमथवा साद्वैर्मधुसन्दिभि-
विभ्राम्यत्सहकारकौरकशिखाकर्णावतसैरपि ।
पर्याप्ताः श्रवणोत्सवाय कवितासात्राज्यलक्ष्मीपते
सत्य नस्तव हस्तिमल्ल सुभगास्तास्ताः सदा सूक्तयः ॥ मै० क०

४ कनड़ी आदिपुराणकी पुष्पिकामें कविने स्वयं भी उभयभाषाकविचक्रवर्ती लिखा है—

“इत्युभयभाषाकविचक्रवर्तिहस्तिमल्लविरचितपूर्वपुराणमहाकथाया दशमपर्वं ।

५ परवादिहस्तिना सिंहे हस्तिमल्लस्तदुद्भवः ।
गृहाश्रमी बभूवाहं च्छसनादिप्रभावकः ॥ २३ ॥

६ के० मुजबलि शास्त्रीका अनुमान है कि छत्रत्रयपुरी शायद द्वारसमुद्र (इलेरीड) हो। यह होयसल राजाओंकी राजधानी रही है।

कविके भाई

कविके जो पोच भाई थे, उनसे हम प्रायः अपरिचित हैं। सत्यवाक्यको हस्तिमल्लने 'श्रीमती-कल्याण' आदि कृतियोंका कर्ता बतलाया है, परन्तु उनका न तो यह ग्रन्थ ही अभी तक प्राप्त हुआ है और अन्य कोई ग्रन्थ ही। नामसे ऐसा मालूम होता है कि 'श्रीमती-कल्याण' भी बहुत करके नाटक होगा।

श्रीकुमार कविका 'आत्मप्रबोध' नामका एक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है, परन्तु वे हस्तिमल्लके बड़े भाई हैं या कोई और, इसका निर्णय नहीं हो सका।

वर्धमान कविको कुछ लोगोंने गणरत्नमहोदधिका ही कर्ता समझ लिया है परन्तु यह भ्रम है। गणरत्नके कर्ता श्वेतावर सम्प्रदायके हैं और उन्होने सिद्धराज जयसिंह (वि सं ११५१-१२००) की प्रशंसामें कोई काव्य बनाया था। दिगम्बर सम्प्रदायपर उन्होने कटाक्ष भी किये हैं, और वे हस्तिमल्लसे बहुत पहले हुए हैं।

कविका नाम

हस्तिमल्लका असली नाम क्या था, इसका पता नहीं चलता। यह नाम तो उन्हें एक मत्त हाथीको वशमे करनेके उपलक्ष्यमे पाण्ड्य राजा के द्वारा प्राप्त हुआ था। उस समय उनका राजसभामे सैकड़ों प्रशंसा-वाक्योंसे सत्कार किया गया था। इस हस्ति-युद्धका उल्लेख कविने अपने सुभद्राहरण नाटकमे भी किया है और साथ ही यह भी बतलाया है कि कोई धूर्त जैनमुनिका रूप धारण करके आया था और उसको भी हस्तिमल्लने परास्त कर दिया था।

७ एव खल्वसौ श्रीमतीकल्याणप्रभृतीनां कृतीनां कर्ता सत्यवाक्येन सूक्तिरसावर्जित-
चेतसा ज्यायमा कनीयानप्युपश्लोकितः । —मै० कल्याण ।

८ गणरत्नमहोदधिका रचनाकाल वि० सं० ११९७ है ।

९ अकल्पितप्राणसमासमागमा मलीमसागा धृतमैक्ष्यघृत्तयः ।

निर्ग्रन्थता त्वत्परिपन्थिनो गता जगत्पते कित्वजिनावलम्बिन ॥ -ग० र० म० पृ० १६४

१० श्रीवत्सगोत्रजनभूषणगोपभट्टेप्रैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात् ।

नानाकलाम्बुनिधिपाण्ड्यमहेश्वरेण श्लोकैः शतैः सदसि सत्कृतवान् वभूव ॥

११ सम्यक्त्व सुपरीक्षितुं मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे

चास्मिन्पाण्ड्यमहेश्वरेण कपटाद्धन्तु स्वमभ्यागते (त) ।

शैलूष जिन्मुद्रधारिणमपास्यासौ मदध्वसिना

श्लोकैनापि मदेभ्रमह इति यः प्रख्यातवान्स्त्रिभिः ॥

पाण्ड्यमहीश्वर

हस्तिमल्लने पाण्ड्य राजाका अनेक जगह उल्लेख किया है। वे उनके कृपा-पात्र थे और उनकी राजधानीमें अपने विद्वान् आसजनोंके साथ जा बसे थे। राजाने अपनी सभामें उन्हे खूब ही सम्मानित किया था। ये पाण्ड्यमहीश्वर अपने भुजबलसे कर्नाटक प्रदेशपर शासन करते थे^{१२}।

कविने इन पाण्ड्य महीश्वरका कोई नाम नहीं दिया है। सिर्फ इतना ही मालूम होता है कि वे थे तो पाण्ड्यदेशके राजवंशके, परन्तु कर्नाटकमें आकर राज्य करने लगे थे।

दक्षिणकर्नाटकके कार्कल स्थानपर उन दिनों पाण्ड्यवंशका ही शासन था। यह राजवंश जैनधर्मका अनुयायी था और इसमें अनेक विद्वान् तथा कलाकुशल राजा हुए हैं। 'भव्यानन्द' नामक सुभाषित ग्रन्थके कर्ता भी अपनेको 'पाण्ड्यक्षमापति' लिखते हैं, कोई विशेष नाम नहीं देते। हमारी समझमें ये हस्तिमल्लके आश्रयदाता राजाके ही वंशके अनन्तरवर्ती कोई जैन राजा थे और इन्होंने ही शायद श० स० १३५३ (वि. स. १४८८) में कार्कलकी विशाल बाहुबलि प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कराई थी^{१५}।

पाण्ड्यमहीश्वरकी राजधानी मालूम नहीं कहाँ थी। अजनापवनंजयके 'श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरेण' आदि पद्यसे तो ऐसा मालूम होता है कि सतरनम या सततगर्भ नामक स्थानमें हस्तिमल्ल अपने कुटुम्बसहित जा बसे थे, इसलिए यही उनकी राजधानी होगी, यद्यपि यह पता नहीं कि यह स्थान कहाँपर था।

१२ श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरे निजभुजादण्डावलम्बी कृतं

कर्नाटावनिमडल पदनतानेकावनीशेऽवति ।

तत्प्रीत्यानुसरन्स्वबन्धुनिवहैर्विद्वद्भिराप्तैस्सम

जैनागारसमेतसतरनमे (?) श्रीहस्तिमल्लोऽवसत् ॥ — अजनापवनजय

१३ भव्यानन्दशास्त्रीकी एक प्रति 'ऐ० पन्नालालसरस्वतीभवन'में है। यह आत्मानु-शासन और भर्तृहरिशतकके ढंगकी सुन्दर प्रसादगुणयुक्त रचना है। इसमें नागचन्द्रका स्मरण किया गया है और इसके आधारपर पं० के० भुजबलिशास्त्रीने शक स० १३५० के लगभग उसका निर्माण-काल निश्चित किया है।

१४ देखो के० भुजबलिशास्त्रीद्वारा सम्पादित प्रशस्तिसग्रह पृ० १९

१५ डॉ० ए. एन. उपाध्येने अजनापवनंजयकी दो प्रतियाँ देखकर सूचना दी है कि एक प्रतिमें 'सतगर्भ' और दूसरी प्रतिमें 'सततगर्भ' पाठ है। पहले पाठसे छन्दोभंग होता है, इसलिए दूसरा पाठ ठीक मालूम होता है।

हाथीका मद उतारनेकी घटना 'सरण्यापुर' नामक स्थानमें घटित हुई थी और वहाँकी राजसभामें ही उन्हें सत्कृत किया गया था। इस स्थानका भी कोई पता नहीं है। या तो यह सततगमका ही दूसरा नाम होगा या फिर किसी कारणसे पाण्ड्यराजा हस्तिमल्लके साथ कहीं गये होंगे और वहाँ यह घटना घटी होगी।

कविका मूलनिवासस्थान

ब्रह्मसूरीने गोविन्दभट्टका निवासस्थान गुडिपत्तन बतलाया है और पं० के. भुजवलि शास्त्रीके अनुसार यह स्थान तजौरका दीपंगुडि नामका स्थान है, जो पाण्ड्यदेशमें है। कर्नाटकका राज्य प्राप्त होनेपर या तो वे स्वयं ही या उनका कोई वंशज कर्नाटकमें आकर रहने लगा होगा और उसीकी प्रीतिसे हस्तिमल्ल कर्नाटककी राजधानीमें आ बसे होंगे।

ब्रह्मसूरीके बतलाये हुए गुडिपत्तनका ही उल्लेख हस्तिमल्लने विक्रान्तकौरवकी प्रशस्तिमें द्वीपंगुडि नामसे किया है। उसमें भी वहाँके वृषभजिनके मन्दिरका उल्लेख है जिनके पादपीठ या सिंहासनपर पाण्ड्यराजाके मुकुटकी प्रभा पड़ती थी। वृषभजिनके उक्त मन्दिरको 'कुश-लवरचित' अर्थात् रामचन्द्रके पुत्र कुश और लवके द्वारा निर्मित बतलाया है।

हस्तिमल्लका समय

अग्र्यपार्य नामक विद्वानने अपने जिनेन्द्रकल्याणभ्युदय नामक प्रतिष्ठापाठमें लिखा है कि मैंने यह ग्रन्थ वसुनन्दि, इन्द्रनन्दि, आशाधर और हस्तिमल्ल आदिकी रचनाओका सार लेकर लिखा है और उक्त ग्रन्थ श० स० १२४१ (वि० स० १३९६) में समाप्त हुआ था। अतएव हस्तिमल्ल १३९६ से पहले हो चुके थे।

ब्रह्मसूरीने अपनी जो वंशपरम्परा दी है, उसके अनुसार हस्तिमल्ल उनके पितामहके पितामह थे। यदि एक एक पीढीके पचीस-पच्चीस वर्ष गिन लिये

- १६ श्रीमद्दीपगुडीश कुशलवरचितस्थानपूज्यो वृषेशः
स्याद्वादन्यायचक्रेश्वरगजवशकृद्धस्तिमल्लाहयेन ।
गद्यै पद्यै प्रवन्धैर्नवरसभरितैरादृतोऽय जिनेशः
पायान्न पादपीठस्थलविकटलसत्पाण्ड्यमौलिप्रभौघः ॥ १४ ॥
- १७ यश्चाशाधरहस्तिमल्लरुधिनो यश्चैकसन्धीरितः
तेभ्यस्स्वाहृतसार आर्यरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः ॥ १५ ॥
- १८ शाकाब्दे विधुवेदनेत्रहिमगे (?) सिद्धार्थसवत्सरे
माघे मासि विशुद्धपक्षदशमीपुष्यार्कवारेऽहनि ।
ग्रन्थो रुद्रकुमारराज्यविषये जैनेन्द्रकल्याणभाक्
सम्पूर्णोऽभवदेकशैलनगरे श्रीपालवन्धूजितः ॥

—कारजाकी प्रति

जाँय, तो हस्तिमल्ल उनसे लगभग सौ वर्ष पहलेके हैं और पं जुगलकिशोरजी मुख्तार ब्रह्मसूरीको विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दिका विद्वान् मानते हैं, अतएव हस्तिमल्लको विक्रमकी चौदहवीं शताब्दिका विद्वान् मानना चाहिए।

कर्नाटक कवि-चरित्रके कर्ता आर० नरसिंहाचार्यने हस्तिमल्लका समय ई० सन् १२९० अर्थात् वि० सं० १३४८ निश्चित किया है, और यह ठीक मालूम होता है।

ग्रन्थ-रचना

हस्तिमल्लके अभीतक चार नाटक प्राप्त हुए हैं १ विक्रान्तकौरव, २ मैथिली-कल्याण, ३ अजनापवनंजय. ४ सुभद्रा। इनमेंसे पहले दो प्रकाशित हो चुके हैं।

इनके सिवाय १ उदयनराज, २ भरतराज, ३ अर्जुनराज, और ४ मेषेश्वर इन चार नाटकोका उल्लेख और मिलता है। इनमेंसे भरतराज सुभद्राका ही दूसरा नाम मालूम होता है। शेष तीन नाटक दक्षिणके भंडारोंमें खोज करनेसे मिल सकेंगे। 'प्रतिष्ठा-तिलक' नामका एक और ग्रन्थ आराके जैन-सिद्धान्त-भवनमें है। यद्यपि इस ग्रन्थमें कहीं हस्तिमल्लका नाम नहीं दिया है परन्तु अग्र्यपार्यने अपने जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयमें जिन जिनके प्रतिष्ठा-पाठोंका सार लेकर अपना ग्रन्थ रचनेका उल्लेख किया है उनमें हस्तिमल्ल भी हैं। अतएव निश्चयसे हस्तिमल्लका एक प्रतिष्ठापाठ है और वह यही है।

आदिपुराण (पुरुचरित) और श्रीपुराण नामके दो ग्रन्थ कनड़ी भाषामें भी हस्तिमल्लके बनाये हुए उपलब्ध हैं। संस्कृतके समान कनड़ीभाषापर भी उनका अधिकार था और शायद इसी कारण वे उभयभाषाचक्रवर्ती कहलाते थे। यदि उनका जन्मस्थान दीपगुडि है, जैसा कि ब्रह्मसूरीने लिखा है तो उनकी मातृभाषा तामिल होगी और ऐसी दशामे कनड़ीपर भी उन्होंने संस्कृतके समान प्रयत्नपूर्वक अधिकार प्राप्त किया होगा।

१९ देखो ग्रन्थपरीक्षा तृतीयभाग, पृष्ठ ८।

२० मि० आफ्रेखके 'केटलागस केटलागोरम्' (सन् १८९१ लिपजिग) में इन सब नाटकोंका उल्लेख आपर्ट साहबकी 'लिष्ट ऑफ सस्कृत मेनु' इन सदर्न इण्डिया' (जिल्द १-२ सन् १८८०-८५) के आधारसे किया गया है। यह लिस्ट दक्षिणभारतकी प्राय-वेट लायब्रेरियोंको देखकर तैयार की गई थी और इसलिपि आपर्ट साहबने उस समय गृहपुस्तकालयोंमें इन ग्रन्थोंको खय देखा होगा।

२१ इस ग्रन्थके शुरूके ४१ पत्र सागलीके श्रीगुडप्पा तवनापा आरवाडेके पास हैं और उन्हें देखकर डॉ० उपाध्येने अभी हाल ही 'हस्तिमल्ल एण्ड हिज आदिपुराण' नामक अंग्रेजी लेख लिखा है। यह ग्रन्थ गद्यमें है और इसके प्रत्येक पूर्वमें जो मंगला-चरण है वह जिनसेनके आदिपुराणका है।

२२ मूडविद्री और बरागके जैन मठोंमें इस ग्रन्थकी हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं।

अज्ञनापवनंजयं

नाम

नाटकः¹



आदौ यस्य पुरश्चराचरगुरोरारब्धसंगीतक-
श्चक्रे नाट्यरसान् क्रमादभिनयन्नाखण्डलस्ताण्डवम् ।
यस्मादाविरभूदचिन्त्यमहिमा वागीश्वराद् भारती
स श्रीमान् मुनिसुव्रतो दिशतु वः श्रेयः पुराणः कविः ॥१॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—अलमतिप्रसंगेन । मारिष, इतोस्तावेत् ।

(प्रविश्य)

पारिपार्श्वकः—भाव, अयमस्मि ।

सूत्रधारः—आज्ञापितोऽस्मि परिषदा । यथा अद्य त्वया
तत्रभवतः सरस्वतीस्वयंवृतपतेर्भट्टारकगोविन्दस्वामिनः सूनुना
श्रीकुमारसत्यवाक्यदेवरवल्लभोदयभूषणानामार्थमिश्राणामनुजेन,
कवेर्वर्धमानस्याग्रजेन, कविना हस्तिमलेन विरचितं, विद्याधर-
चरितनिबन्धनमञ्जनापवनंजयं नाम नाटकं यथावत्प्रयोगेण
नाटयितव्यमिति ।

1 At the beginning, A has श्रीरस्तु । अज्ञनापवनंजय नाम नाटकम् !;
B नमः सिद्धेभ्यः । श्रीमत्प्रमेन्दुमुनये नमः !; C अ नमः सिद्धेभ्यः । अथ श्रीमद्-
स्तिमलकविविरचितम् अज्ञनापवनंजय नाम नाटकम् ।, D श्रीमत्पद्मगुरुभ्यो नमः । D
has on its left-side margin अज्ञनापवनजयनाम नाटक । १ D भट्टारगो.

पारिपार्श्वकः—भाव, किमिति खलु परिषदः सविशेषमस्मिन् बहुमानः ।

सूत्रधारः—ननु कविपरिश्रम एवात्र निबन्धनम् । कुतः ।

समीचीना वाचः सरलसरला कापि रचना

परा वाचोयुक्तिः कविपरिषदाराधनपरा ।

अनालीढो गाढः परमनतिगूढोऽपि च रसः

कवीनां सामग्री झटिति चलितं कं न कुरुते ॥ २ ॥

पारिपार्श्वकः—एवमेतत् । यत्सत्यं नाटकान्ताः कवयः ।

सूत्रधारः—तद्यावदिदानीमारभ्यतां संगीतकम् ।

पारिपार्श्वकः—तेन हि किमिति विलम्ब्यते । एष हि महेन्द्र-
सूनुररिंदमो निजानुजाया अञ्जनायाः सर्वतः स्वयंवरमहोत्सवाय पुर-
पर्यन्तमेव प्रत्यासीदन्तं राजलोकं समुचितसत्कारपुरस्सरं संभावयितुं
महाराजमहेन्द्रेण नियुक्तः पुरप्रसाधनाय पौरवर्गं प्रोत्साहयन्नित
एवाभिवर्तते । तदयमस्माकमपि तावदस्मिन्महोत्सवे नैपथ्यरचनां
ब्रहीतुमुचित एवावसरः । कथं^५ तेन हि वयं सज्जीकृतं स्वयंवरमण्ड-
पमेव समासाद्य कुशलैः कुशीलवैः सह संगीतकमारभामहे ।

पारिपार्श्वकः—यदाज्ञापयति भावः । (इति^६ निष्क्रान्तौ ।)

(प्रस्तावना^७ ।)

1 A omits खलु परिषदः 2 A मारिषः, B D no name for the speaker.
3 A यदयम^५. 4 Thus A B C D. The usual form is नैपथ्य. 5 कथं seems
to be superfluous though found in A B C D. The words तेन हि
वय. ...आरभामहे are obviously the remark made by the Sūtra-
dhara, though none of the Mss. shows them as such. 6 D om. इति.
7 B C D स्थापना.

प्रथमोऽङ्कः

(तत् प्रविशत्यरिंदमः ।)

अरिंदमः—आज्ञापितोऽस्मि तातेन, यथा वत्स, अरिंदमः
वत्साया अञ्जनायाः स्वयंवरमेहोत्सवाय तावदाहूताः प्रविशन्ति—पञ्च-
नंजय—विद्युत्प्रभ—मेघनादप्रमुखा राजपुत्राः सांप्रतमस्मदीयं नग-
रम् । तदिदानीं नगरीप्रसाधनायां राजन्यवर्गसंभावनायां च त्वयैव
सावधानेन भवितव्यमिति । (परितोऽवलोक्य) इयं च तावदस्मदा-
देशात् सविशेषमेव प्रगुणीकृता नगरी । तथा हि¹ ।

पौरैरिमानि निखिलानि निकेतनानि

पर्युत्सुकैरिह समुच्छ्रितकेतनानि ।

द्वारेषु संप्रति हि वन्दनमालिकाभि-

रायोजितानि परितो मणिकुट्टिमानि ॥ ३ ॥

(परिक्रम्यावलोक्य च) अये, कथमिदानीमितः प्रतोलीमतीत्य²
रथ्या एवावगाहन्ते सर्वेभ्योऽपि दिगन्तेभ्यः समायाता निजबलभर-
संमर्दकोलाहलेन दशापि दिशो रुन्धाना दिक्पाला इव भूपालाः ।
(विलोक्य) कः पुनरयं राजमार्गमतिक्रम्य प्रमदवैनसंमुखः सौवि-
दल्लोकापसारितसंमर्दस्तुरंगवरादवतीर्णः । (निरूप्य) अये, तातस्य
परमसुहृदः प्रह्लादराजस्य तनयः³ स⁴ एषः ।

परिमितपरिवारः पौरवर्गेण साक्षा-

दपर इव वसन्तः सादरं वीक्ष्यमाणः ।

प्रमदवनमिदानीं पादचारेण खेलन्

प्रविशति कमनीयां कान्तिलक्ष्मीं दधानः ॥ ४ ॥

1 ० तत्रथा २ B ० प्रतोलीरतीत्य, D प्रतोलीरतीत्य. ३ B सार्धं, ० सार्धं
4 A and B विलोक्यन्ते as verb agreeing with भूपाला. 5 B and ०
प्रमदसमुखसौविदल्ल°. ६ B D तुरगमवरात्, ० तुरगमात्. 7 B ० D add पञ्चनंजयः
after तनयः. 8 B D य एष, ० यः सैषः.

(विचिन्त्य) प्रथमं तावदिममेवात्र संभावयतः स्वागतसंकथया कुशलप्रश्नेन सुखसंभाषितेन च तेन च समुदाचारेण महान् कालो ममातिवर्तेत । तदिदानीमारातीयं कार्यशेषं परिसमापय्य पुनरेवैनं द्रक्ष्यामः । (इति^१ निष्क्रान्तः ।)

शुद्धविष्कम्भः ।

(ततः प्रविशति पवनंजयो विदूषकश्च ।)

पवनंजयः—सखे, रमणीयमिदमुद्यानम् । तदत्रैव मुहूर्तं विश्रम्य पश्चात् संस्त्यायप्रदेशं गच्छामः ।

विदूषकः—तह होदु । एत्थ खु महाराअपल्हादमहिंदराआणं चिरसमारूढाए मेत्तीए अत्तणीयां वि अ विस्सद्धं^६ विहरणीयां अम्हाणं पमअवणुद्देसा । ता इदो इदो पिअवअस्सो । [तथा भवतु । अत्र खलु महाराजप्रह्लादमहेन्द्रराजयोश्चिरसमारूढया मैत्र्या आत्मनीयापि^८ च विस्त्रब्धं विहरणीया आवयोः प्रमदवनोद्देशाः । तस्मादित इतः प्रियवयस्यः ।]

(परिक्रामत ।)

पवनंजयः—(निर्वर्ण्य) अहो नु खलु भोः प्रमदवनस्य परा लक्ष्मीः । अत्र हि ।

प्रवृत्तो^{१०} ज्याघोषः खलु मधुलिहां झंकृतमिदं

पतन्त्येते बाणा अपि निशितधाराः सुमनसः ।

स्थितः पार्श्वे चैष स्वयमपि वसन्तः सहचरः

सदायं संरब्धो^{११} नतकुसुमधन्वा विहरति ॥ ५ ॥

1 B D omit च, C omits तेन च coming after च Perhaps तेन तेन च समुदाचारेण. 2 Thus A B C. It stands for परिममाप्य. 3 B परिक्रम्य निष्क्रान्तः । C परिनिष्क्रम्य निष्क्रान्त । D परिष्क्रम्य निष्क्रान्त । 4 D °पळहाद°. 5 C D अत्तणया. 6 B विस्सद्धं; C D विसद्ध. 7 D विहरणीया. 8 D आत्मिकीया य विस्त्रब्ध. 9 B C D परिक्रान्त. 10 C प्रवृत्तोच्चो घोषः 11 C संरब्धोन्नत°.

प्रथमोऽङ्कः

विदूषकः—भो¹ वअस्स, दक्ख दावि इदो उण णिवडंतप्रसूणकिज-
 क्कपुंजपिंजरिअपक्खपालिआ गाअइ सहआरसिहरं आरुहिअ गाहिअ²
 णेअत्था³ विअ कलमधुरं कलकंठिआ । इदो अ फुडविहडिअमउल-
 चसअसदभरिअमधुरसपाणमदभरभेलो⁴ विहरइ वउलवीहीए सहअ-
 रीए सह राअकीरो । इदो पडिणवविअसिअकुसुमासवलोहपरिअभमंतिं-
 दिंदिरइंकारपेसला विलोहअइ⁵ गोमालिआ । इदो सामलबहुलपत्त-
 लदाए दिवा वि संकिअणिसीहेहि चक्कवाअचक्कवालेहिं परिहरिजंत-
 परिसरो, णवजलहरुगमलुद्धेहिं मुद्धचादअपोदएहिं णिपीयमाणमहु-
 विंदुणिसंसंदो⁷, सिंहडिअंडलेहिं पि केआरवमुहरेहिं इदोतदो दिण्णंतं-
 तंडवोवहारो सोहइ एसो बालतमालओ । [भो वयस्य, पश्य तावदितः
 पुनर्निपतत्प्रसूनकिअलरुपुअपिअरितपक्षपालिका गायति सहकारशिखर-
 मारुद्ध गृहीतनेपथ्येव कलमधुरं कलकण्ठिका । इतश्च स्फुटविघटितमुकुल-
 चषकनातभरितमधुरसपानमदभरवेगो¹⁰ विहरति बकुलवीथ्यां सहचर्या सह
 राजकीर । इतः प्रतिनवविकसितकुसुमासवलोभपरिअमदिन्दिन्दिरइंकार-
 पेसला विलोभयति¹¹ नवमालिका । इतः श्यामलबहुलपत्रलतया दिवापि
 शङ्कितीनिशीथैश्चक्रवाकचक्रवालैः परिहियमाणपरिसरः, नवजलधरोद्गमलुद्धैः
 सुगंधचातकपोतकैर्निपीयमानमधुविन्दुनिप्यन्दः, शिखण्डिमण्डलैरपि केका-
 रचमुखैरैरितस्ततो दीयमानताण्डवोपहार शोभत एष बालतमालः ।]

पवनंजयः—वयस्य, सम्यगुपलक्षितम् । पश्य ।

चलकिसलयाग्रहस्तोत्क्षिप्तां नवमालिका कुसुममालाम् ।

आमुच्याधिस्कन्धं स्वयं वृणीते तमालवरम् ॥ ६ ॥

I D adds (on the line) पिअ after भो 2 B and c °णेअच्छा.
 3 B D °खेलो, ° खेलो. 4 B C विलोअणाइ, D विलोहइ लोअणाइ णो°. 5 B C
 वुहळ°. 6 D चक्काअचक्कवालेहि 7 D णीसंदो. 8 D दिण्णतंडवो°, [दिज्जततंडवो°].
 9 The chāyā in A has विकसित°, D फुल्लविकसित 10 D भरखेळ°. 11 The
 chāyā in A reads लोचनानि after विलोभयति. 12 D om. शंकित. 13 The
 chāyā in A D दत्त°

विदूषकः—किं ति ण परिष्फुडं मंतियदि । णं भणिद्वं पवणं-
जअं सअं वरंती^१ अंजणा विअ त्ति । [किमिति न परिष्फुडं मञ्चयते ।
ननु भणितव्यं पवनंजयं स्वयं वृण्वती अञ्जनेवेति ।]

पवनंजयः—(सस्मितम्) कृतं परिहासेन ।

विदूषकः—ण खु एसो परिहासो । अविलंबिअं खु एअं अणु-
भविस्ससि^२ । अण्णहा किं राअहंसं ओहिरिअ वओडंअं अणुसरइ
वरडा । अण्णं च । पुव्वं खु विअअङ्काअलवेअंडचूलिआअंतसिज्झ-
ऊडसिज्झाअदणे मंदारणिलअब्भंदरगआ अण्णाहिं पिअसहअरविज्जा-
हरकण्णआहिं पुप्फाणि ओचिणंती ओलोइआ तुमे तत्तहोदी अंजणा ।
[न खल्वेष परिहासः । अविलम्बितं खल्वेतदनुभविष्यसि । अन्यथा किं राज-
हंसमवधीर्यं बकोटकमनुसरति वरटा । अन्यच्च । पूर्वं खलु विजयार्धाचल-
वेत्तण्डचूलिकायमानसिद्धकूटसिद्धायतने मन्दारनिलयाभ्यन्तरगता अन्याभिः
प्रियसहचरविद्याधरकन्यकाभिः पुष्पाण्यवचिन्वती अवलोकिता त्वया तत्र-
भवती अञ्जना ।]

पवनंजयः—अथ किम् ।

विदूषकः—तदो अ तिस्से वि तुमं दट्ठुण अत्तणो धीरदाए सह
ओगलिअकुसुमंजलीए पिअसहीहिं ओहसिआए अब्भण्णेण चेअ मंदा-
ररुक्खेणं अंदरिआए लक्खिओ मए भावो तुइ साहिलासो । ता मा
दाणिं अण्णहासंकिअ । [ततश्च तस्या अपि त्वां दृष्ट्वा आत्मनो धीरतया
सह अवगलितकुसुमाञ्जल्याः प्रियसखीभिरुपहसिताया अभ्यर्णेनैव मन्दारवृक्षे-
णान्तरितायां लक्षितो मया भावस्त्वयि साभिलाषः । तस्मान्मा इदानीम-
न्यथाशाङ्क्य ।]

पवनंजयः—(सोत्कण्ठम्)

1 B वरंति, O वरती. The chāyā in A स्वयंवरीति, chāyā in D वरिति;
D om. सअं. 2 D अणुभविस्सिसि. 3 D वओडं. 4 D वेअट्ठा 5 D अब्भतर-
6 D *रुक्खेणंतरिआए. 7 The chāyā in A तिरोहिताया.

तदा प्रियायाः करपल्लवाग्रात् स्रस्तानि मन्दं कुसुमानि यानि ।
तैरेव क्लृप्तैः कुसुमायुधो मामद्यापि बाणैः प्रहरत्यमोघैः ॥ ७ ॥

(निर्वर्ण्य)¹

अपि नाम कदाचिदञ्जना विहरन्ती कलहंसगामिनी ।

जनयेन्मम नेत्रयोर्द्वयोरनयोरुत्सुकयोरिहोत्सवम् ॥ ८ ॥

(नेपथ्ये)

मालदिए, मालदिए । [मालतिके, मालतिके ।]

विदूषकः—एत्थ का एसा सदावेदि । जाव इमिणा तमाल-
पाअवेण ओवारिअं दक्खम्ह । [अत्र का एषा शब्दापयति । यावदनेन
तमालपादपेन अपवार्यं पश्यामः ।]

पवनंजयः—यदाह भवान् । (उभौ तथा कुरुतः ।)

(प्रविश्य)

मधुकरिका—मालदिए । [मालतिके ।]

(प्रविश्य)

प्रमदवनपालिका—कहं भट्टिदारिआए अंजणाए णाडअसुत्त-
धारिणी सदावेइ मं महुअरिआ । [कथं भर्तृदारिकाया अञ्जनाया नाटक-
सूत्रधारिणी शब्दापयति मां मधुकरिका ।] (उपसृत्य) सहि, कीस मं
सदावेसि । [सखि, कस्मान्मां शब्दापयसि ।]

प्रथमा—सहि, कहिं खु तुए तुरिअं गम्मिअदि^१ । [सखि, कुत्र
खलु त्वया त्वरितं गम्यते ।]

द्वितीया—अहं खु भट्टिणीए मणोवेगाए आणत्ता, जह
वच्छाए अंजणाए कल्लं खु सअंवरो, ता जाव ओसहिमालं गुंभिदुं
संदाणप्पमुहाइ^२ विहासुम्मुहाइ मंगलाइ पुप्फाइ^३ ओचिणिअ आणेहि

1 B वन निर्वर्ण्य, O D उपवन निर्वर्ण्य सोत्कण्ठम् । 2 O ओवारिआ, chāyā
D अपवारितौ पश्याव । 3 B O गच्छियदि, D गच्छीअदि 4 D संदाणअपमुहाइ
5 D मगलाइ फुल्लाइ

त्ति । [अहं खलु भट्टिन्या मनोवेगया आज्ञसा, यथा वत्साया अञ्ज-
नायाः कल्यं खलु स्वयंवरः, तस्मादावदोषधिमालां गुम्फितुं संतानप्रसुखानि
विकासोन्मुखानि मङ्गलानि पुष्पाभ्यवचित्य आनयेति ।]

प्रथमा—सहि, चिद्धु एअं । दिद्धा उण तुमे एत्थ भट्टिदारिआ
अंजणा । [सखि, तिष्ठत्वेतत् । दृष्टा पुनस्त्वयात्र भर्तृदारिका अञ्जना ।]

द्वितीया—सहि, सा खुं पिअसहीए वसंतमालाए सह केलिवणे
संगीअसालं पविट्ठा । [सखि, सा खलु प्रियसख्या वसन्तमालया सह
केलीवने संगीतमालां प्रविष्टा ।]

प्रथमा—तेण हि अहं^१ गच्छेमि । [तेन ह्यहं गच्छामि ।]

द्वितीया—सहि, चिद्ध दाव । पुणो वि गंतुं सकं । [सखि, तिष्ठ
तावत् । पुनरपि गन्तुं शक्यम् ।]

प्रथमा—सहि, किं ति । [सखि, किमिति ।]

द्वितीया—सहि, कहां तुमं समत्थेसि को णु खु महाभागो एअं
मालं धारिस्सदि^२ त्ति । [सखि, कथं त्वं समर्थयसे को नु खलु महाभाग
एतां मालां धारयिष्यतीति ।]

प्रथमा—हला, किं एत्थ विआरिज्जइ । तेलोक्कपसंसिअरुवसोहग्ग-
विसेसो पल्हा^३दणंदणो पवणंजओ खु एत्थ पहवदि । [सखि, किमत्र
विचार्यते । त्रैलोक्यप्रशंसितरूपसौभाग्यविशेषः प्रह्लादनन्दनः पचनंजयः
खल्वत्र प्रभवति ।]

द्वितीया—सहि, मए वि एअं चिंदिदं^४ एव्व । चंद एव्व खु चंदि-
माए संभाविज्जइ । [सखि, मयाप्येतच्चिन्तितमेव । चन्द्र एव खलु चन्द्रि-
कार्याः संभाव्यते ।]

1 D सा ह्यु 2 B C D have तहि after अह. 3 D धारिस्सिदि. 4 D
तेल्लोक्क. 5 D पळहाद 6 D चिंदिद 7 D चद्रिकया.

विदूषकः—वअस्स, सुणाहि सुणाहि । जह मए कहिअं तह एव्व एओओ भणंति । [वयस्य, शृणु शृणु । यथा भवा कश्चितं तथैवैते भणतः ।]

पवनंजयः—को नामाध्यवसितुमीष्टे । दुरवगाहाँ हि भागवे-
यानां परिपाकाः ।

प्रथमा—सहि, गच्छ तुमं । अहं वि भट्टिदारिआए पासपरिव-
ट्टिणी होमि । [सखि, गच्छ त्वम् । अहमपि भर्तृदारिकायाः पार्श्वपरिवर्तिनी भवामि ।]

द्वितीया—तह । [तथा ।] (निष्क्रान्ता ।)

मधुकरिका—जाव केलीवणं गच्छेमि । [यावत् केलीवनं गच्छामि ।]
(परिक्रामति ।)

पवनंजयः—वयस्य, वयमप्यनुपलक्षिता एवास्या अनुपदं गच्छामः ।

विदूषकः—तेण हि इदो इदो । [तेन हि इत इतः ।] (परिक्रामत ।)

मधुकरिका—एअं वणं, जाव पविसेमि^१ । [एतद्वनं, यावत्प्रविशामि ।]
(ततः प्रविशत्यञ्जना सखी च ।)

अञ्जना—हंजे वसंतमाले, किं ति तुमं तुण्हिका^४ चिद्धसि । कहेहि दाव किं वि । [हजे वसन्तमाले, किमिति त्वं तूष्णीका तिष्ठसि । कथय तावत् किमपि ।]

वसन्तमाला—जइ एवं, सुणाहि दाव सोदवं । [यद्येव, शृणु तावच्छ्रोतव्यम् ।]

अञ्जना—(खगतम्) अवहिदमिह । [अवहितस्मि ।]

वसन्तमाला—अत्थि खु वेअड्डुपेरंते विज्जाहरलोए अप्पडिमह्ल-
सिरीअं आइच्चपुरं णाम णअरं । तांसि अं सअलविज्जाहरविधरिअ-

1 D तह एव्व एदाओ. 2 B C D दुरवबोधा 3 B C have the stage-
direction नाट्येन प्रविशति. 4 D तूष्णीका 5 D तस्मिं च

चरणो पल्हादो^१ णाम राएसी । तस्स अ पदणी^३ वसुमदीए सह
दुदिअपदणी^४ केदुमदी णाम । [अस्ति खलु विजयार्धपर्यन्ते विद्याधरलोके
अप्रतिमल्लश्रीकम् आदित्यपुरं नाम नगरम् । तस्मिंश्च सकलविद्याधरविधृतचरणः
प्रह्लादो नाम राजर्षिः । तस्य च पत्नी वसुमत्या सह द्वितीयपत्न्या केतुमती
नाम ।]

अञ्जना—तदो तदो । [ततस्ततः ।]

वसन्तमाला—तेसिं अ तणओ विज्जाहरलोअसलाहेक्कट्टाणहूदो
पवणंजओ णाम । [तयोश्च तनयो विद्याधरलोकश्चाद्यैकस्थानभूतः पवनं-
जयो नाम ।]

अञ्जना—(खगतम्) कुदो खु एसा तं जणं पत्थावेदि । [कुतः
खल्वेषा तं जनं प्रस्तावयति ।]

वसन्तमाला—एदं खु पुण अवरं एत्थ पत्थुदं । अत्थि णादि-
दूरे पुव्वसाअरस्स संठिअं दंतिपव्वअं अहिवसंतो महिंदसरिसो विज्जा-
हरराओ महिंदो णाम । [एतत्खलु पुनरपरमत्र प्रस्तुतम् । अस्ति नातिदूरे
पूर्वसागरस्य संस्थितं दन्तिपर्वतमधिवसन् महेन्द्रसदृशो विद्याधरराजो महेन्द्रो
नाम ।]

अञ्जना—अत्थि । [अस्ति ।]

वसन्तमाला—तस्स महिंदराअस्स अणूरुहदीवणाहविज्जाहर-
पडिसूरबहिणीए मणोवेआए^५ जादा, ओहसिअसअलच्छररूवाए
असाहारणीए कंतिलच्छीए अञ्जणा णाम । [तस्य महेन्द्रराजस्य
अनूरुहद्वीपनाथविद्याधरप्रतिसूर्यभगिन्यां मनोवेगायां जाता, अपहसितसकला-
प्सरोरूपया असाधारण्या कान्तिलक्ष्म्या अञ्जना नाम ।]

अञ्जना—अप्पिअभासिणि अलं दाव^६ मं पसांसिअ । [अप्रिय-
भाषिणि अलं तावन्मां प्रशस्य ।]

१ D पल्हादो. २ B C D पदिणी. ३ D पदिणीए. ४ D मणोवेगाए. ५ B C D
दाणि.

वसन्तमाला—जह ड्डिआ कहा तह एव्व खु कहिदव्वं । [यथा स्थिता कथा तथैव खलु कथयितव्यम् ।]

अञ्जना—होदु, तदो । [भवतु, ततः ।]

वसन्तमाला—तदो अ सा कण्णआ अण्णाहिं पि सह विज्जा-हरकण्णआहिं पुप्फापचयक्खित्तहिअआ सिज्झऊडवाहिरे मंदार-वणिअं पविट्ठा । [ततश्च सा कन्या अन्याभिरपि सह विद्याधरकन्यकाभिः पुष्पापचयाक्षिप्तहृदया सिद्धकूटबहिर्मन्दारवर्नीं प्रविष्टा ।]

अञ्जना—हला, किं खु सि तुमं वक्तुकामा । [सखि, किं खल्वस्ति त्वं वक्तुकामा ।]

वसन्तमाला—तदो अ तेण वि पवणंजएण मअरद्धअणिउत्तेण जदिच्छाए तहिं चेअ पविट्ठेण दिट्ठा खु सा ओइअपच्चग्गपुप्फभरिअं-जली अंजणा । [ततश्च तेनापि पवनंजयेन मकरध्वजनियुक्तेन यदृच्छया तत्रैव प्रविष्टेन दृष्टा खलु सा अवचितप्रत्यग्रपुष्पभरिताञ्जलिरञ्जना ।]

अञ्जना—अलं दाव इमिणा पलविदेण । [अलं तावदनेन प्रलपितेन ।]

वसन्तमाला—(सस्मितम्) किं अदो वरं । तुमं चेअ जाणासि । [किमतः परम् । त्वमेव जानासि ।]

अञ्जना—(आत्मगतम्) कहं तदा णादहिअअ म्हि इमाए । [कथं तदा ज्ञातहृदयासि अनया ।]

मधुकरिका—(विलोक्य) एसा खु भट्टिदारिआ । जाव उवस-प्पामि । [एषा खलु भर्तृदारिका । यावदुपसर्षामि ।] (उपसृत्य) जेट्टु भट्टिदारिआ । [जयतु भर्तृदारिका ।]

अञ्जना—सहि, उवविसेहि । [सखि, उपविश ।]

मधुकरिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि । [यद् भट्टिदारिका आज्ञापयति ।] (उपविशति ।)

वसन्तमाला—हला मधुअरिए, किंचि वत्तुकामा विअ लक्खिज्जसि । [सखि मधुकरिके, किंचिद् वत्तुकामेव लक्ष्यसे ।]

अञ्जना—किं तं । [किं तत् ।]

मधुकरिका—दाणिं खु तुह सयंवरूसवत्थं आअदा पवणंजअ-विज्जुप्पह—मेहणादप्पसुहा राअउत्ता । [इदानीं खलु तव स्वयंचरोत्सवार्थमागताः पवनंजय-विद्युत्प्रभ-सेवनादप्रसुखा राजपुत्राः ।]

अञ्जना—(स्वगतम्) कहं लो वि आअदो । [कथं लोऽप्यागतः ।]
(लज्जां नाटयति ।)

वसन्तमाला—सुवो कहं ण लज्जेसि । [श्व. कथं न लज्जसे ।]

विदूषकः—(कर्णं दत्त्वा) वअस्स, समासण्णो इत्थिआराओ । [वयस्य, समासन्न. स्त्रीशब्दः ।]

पवनंजयः—तेन हि कदलीगुल्मान्तरिताः पश्यामः । (उभौ तथा कुरुत ।)

पवनंजयः—(अञ्जना दृष्ट्वा) दिष्ट्या दृष्टमिदानी दर्शनीयम् ।
(साचुरागम्)

सुकुमारविलासविभ्रमं मदनाराधनसाधनं धनम् ।

मम मूर्तिमदेव जीवितं तदिदं संप्रति संमुखागतम् ॥ ९ ॥

विदूषकः—वअस्स, जं सच्चं तुह एव्व एसा अरिहेदि^१ । [वयस्य, यत्सत्यं तवैवैषा अर्हति ।]

मधुकरिका—भट्टिदारिए, णं दिट्ठपुव्वा तुए सअला राअकुनारा आलेक्खगदा । ता कहेहि दाव कस्सि उणं महाभाए तुह हिअअं

१ D आगथो । २ D वित्थिआळाओ (chāyā स्त्रियव्रतः). ३ D अरिहिसिदि.
४ D पुण.

उकंठेदि । [भर्तृदारिके, ननु दृष्टपूर्वास्त्वया सकलराजकुमारा अलेख्यगताः ।
तस्मात् कथय तावत् कस्मिन् पुनर्महाभागे तव हृदयमुत्कण्ठते ।]

अञ्जना—(स्वगतम्) कलं चैअ णं जाणिस्सध । [कल्यमेव
ननु ज्ञास्यथः^१ ।] (सलजं तूष्णीमास्ते ।)

पवनंजयः—अये, स्थाने खलु खियं हि नाम लज्जा भूषयति ।
अस्या हि ।

स्मितेनान्तर्गतं भावमनाख्यातुमिवाक्षमा^३ ।

प्रसाधनान्तरमसौ जाता लज्जेव सुभ्रुवः ॥ १० ॥

वसन्तमाला—सहि महुअरिए, णिगूहिअभावा भट्टिदारिआ,
तुवं खु भाववेदिणी णाडयसुत्तहारिणी । ता किं ति सअं चैअ जाणिटुं ण
पहवैसि । [सखि मधुकरिके, निगूढभावा भर्तृदारिका, त्वं खलु भाववेदिनी
नाटकसूत्रधारिणी । तस्मात् किमिति स्वयमेव ज्ञातुं न प्रभवसि ।]

मधुकरिका—सहि, सुट्टु भणिअं । तेण हि पसत्तं^६ इमं सअंवरं
नाडअंती अहं चैअ तुह दंसइस्सं । [सखि, सुट्टु भणितम् । तेन हि
प्रसक्तमिमं स्वयंवरं नाटयन्ती अहमेव तत्र दर्शयिष्यामि ।]

वसन्तमाला—सहि, सुट्टु भणिअं । [सखि, सुट्टु भणितम् ।]

मधुकरिका—अहं दाव पीठमदिआ मिस्सकेसी होमि । तुमं
पुण भट्टिदारिआ होहि । [अहं तावत्पीठमदिआ मिश्रकेणी भवामि ।
त्वं पुनर्भर्तृदारिका भव ।]

वसन्तमाला—का दाणिं राअउत्तभूमिआ गण्हंति^७ । [का इदानीं
राजपुत्रभूमिका गृह्णन्ति ।]

1 D writes सस्मित on स्वगतं 2 D जानीथः 3 A अक्षमम् 4 D णिगू-
हिदुभावा. 5 A B C D पविसत्त. The chāyā in A प्रसक्तम्. 6 B भूमिआओ.
7 0 गण्हति The chāyā in A का इदानीं राजपुत्रभूमिका गृह्णाति ।

विदूषकः—एसो एत्थ एको संगिहिदो । [एपोऽत्रैकः संनिहितः ।]

पवनंजयः—मूर्ख, मा कृथा विस्रम्भलीलाभङ्गम् ।

मधुकरिका—सअं उणं एसा भट्टिदारिआ एको राअउत्तो भविस्सदि । [स्वयं पुनरेषा भर्तृदारिका एको राजपुत्रो भविष्यति ।]

वसन्तमाला—के उण अण्णे । [के पुनरन्ये ।]

मधुकरिका—एदाओ उण पडिक्खंभसालभंजिआओ । [एताः पुनः प्रतिस्त्रम्भशालभञ्जिकाः ।]

वसन्तमाला—सहि, साहु साहु । कस्स उण राअउत्तस्स भूमिअं गण्हादुं भट्टिदारिआ । [सखि, साधु साधु । कस्य पुना राजपुत्रस्य भूमिकां गृह्णातु भर्तृदारिका ।]

मधुकरिका—पवणंजअस्स भूमिअं गण्हादुं एसा । एदा उणं सालभंजिआओ विज्जुप्पहमेहणादप्पमुहाणं । [पवनंजयस्य भूमिकां गृह्णात्वेवा । एताः पुनः शालभञ्जिकाः विद्युत्प्रभमेवनादप्रमुखानाम् ।]

वसन्तमाला—सहि, तह । [सखि, तथा ।]

अञ्जना—(खगतम्) सहि, साहु । (प्रकाशम्) किं ति मं वि आआसेध । [सखि, साधु । (प्रकाशम्) किमिति मामप्यायासयथ ।]

उभे—का वा तुमं आआसेदि । गच्छदुं होदी विस्सद्धं [का वा त्वामायासयति । गच्छतु भवती विस्रब्धम् ।]

(अञ्जना सस्मितमास्ते ।)

पवनंजयः—(सहर्षम्) अहमेव तावदिहापि बहु मन्तव्यः । मम हि ।

अयमद्य विनापि संगमादपरः प्राणसमासमागमः ।

यदियं पवनंजयोऽहमित्युपविष्टा स्वयमित्थमञ्जना ॥ ११ ॥

विदूषकः—जह मए चिंतिदं तह एव एसा वि समस्थेदि त्ति त्केमि । [यथा मया चिन्तितं तथैवैषापि समर्थयत इति तर्कयामि ।]

वसन्तमाला—सहि, का दाणि ओसहिमाला । [सखि, केदानी-मोषधिमाला ।]

मधुकरिका—(अञ्जनाया मुक्तावलीमादाय) एसा मुक्तावली ओसहि-माला होदु । [एषा मुक्तावली ओषधिमाला भवतु ।]

वसन्तमाला—सहि, सुदु । किं अदो वरं विलंविअदि । णाड-आमो दाव । [सखि, सुदु । किमतः परं विलम्ब्यते । नाटयामस्तावत् ।]

मधुकरिका—सहि, तह । [सखि, तथा ।] (सरस्वतमवलम्ब्य) वत्से इतः ।

अञ्जना—अंमो सअं विअ अज्जाए मिस्सकेसीए सरज्जोओ । [अहो स्वयमिवार्याया मिश्रकेश्याः स्वरयोगः ।]

(कृतकमिश्रकेशी कृतकाञ्जना च परिक्रामत ।)

कृतकमिश्रकेशी—प्रविष्टाः स्मः स्वयंवरमण्डपम् । (परितो-ऽवलोक्य) अये, स्वयंवरमण्डपस्य परा लक्ष्मीः । तथा हि । इतस्ततः समुच्चलद्वन्द्वन्द्वन्द्वजयशब्दकोलाहलबहलेन संभ्रान्तप्रतीहारशतकृत-समुत्सारणाघोषकलकलेन प्रारभ्यमाणमङ्गलसंगीतकप्रहतमृदुमृदङ्ग-ध्वनिमन्द्रेण च किंनरीजनोपवीणितवल्लकीगुणझंकृतानुसारिणा विद्या-धरवनितागीतस्वरेण शब्दमय इव जायते श्रवणपथः । वेत्रमया इव लक्ष्यन्ते कक्ष्याः । सिंहासनमया इव दृश्यन्ते रत्नकुट्टिमभूभागाः । उद्भूयमानप्रकीर्णकानिलविप्रकीर्णपटवासचूर्णमय्य इव शोभन्ते दश दिशः । आभरणप्रभाजालमयमिव विभाति गगनतलम् । राजलोक-मय इव संभाव्यते स्वयंवरमण्डपः ।

इह हि प्रविश्य मणिमञ्जगताः परिवारिताः परिजनैः परितः ।
अधुना तवैव पुनरागमनं प्रतिपालयन्ति जगतीपतयः ॥ १२ ॥
तद्यावदिमामोपधिमालां गृह्णातु भर्तृदारिका ।

(कृतकाञ्जना सलज्जमादत्ते ।)

कृतकमिश्रकेशी—(हस्तेन प्रतिशालभञ्जिकं निर्दिशन्ती)

नाथोऽयं कोशलानां मगधपतिरसावेष पाञ्चालराजो

वङ्गानां वल्लभोऽयं मलयविभुरयं केकयाधीश्वरोऽयम् ।

एष स्वामी हरीणां कुरुनृपतिरसावेष चाल्मीकभूपः

को नामैतेषु वत्से प्रभवति भवितुं सांप्रतं मालभारी ॥ १३ ॥

(कृतकाञ्जना तूष्णीं तिष्ठति ।)

कृतकमिश्रकेशी—(अन्यतो गत्वा नाट्येन शालभञ्जिका निर्दिश्य)

निखिलखचरयूथोन्माथिनो रावणस्य

प्रियतनय इहायं रक्षसामीश्वरस्य ।

निजभुजबलहेलानिर्जितारातिचक्रः

पितृवदनविभाव्यप्राभवो मेघनादः ॥ १४ ॥

(कृतकाञ्जना तूष्णीं तिष्ठति ।)

कृतकमिश्रकेशी—(अन्यतो गत्वा नाट्येन शालभञ्जिकां निर्दिश्य)

एष विद्युत्प्रभो नाम हिरण्यप्रभुनन्दनः ।

विद्याधरेषु विख्यातो विश्वविद्याविशारदः ॥ १५ ॥

(कृतकाञ्जना तूष्णीं तिष्ठति ।)

कृतकमिश्रकेशी—(अन्यतो गत्वा सस्मितमञ्जना निर्दिश्य)

अव्याजसुन्दरवपुः प्रभवो गुणानां

श्लाघास्पदं भगवतो मकरध्वजस्य ।

किंवा बहुप्रलपितेन तवैव योग्यः

प्रह्लादराजतनयः पवनंजयोऽयम् ॥ १६ ॥

(कृतकाञ्चना सलज्जं सानुरागं च अञ्जनाया कण्ठे हारलताम् आमुञ्चति ।)

अञ्जना—(सस्मितम् आत्मगतम्) साहु, वसंतमाले, साहु । [साधु वसन्तमाले, साधु ।]

पवनंजयः—(सहर्षम्) साधु भद्रे, साधु ।

विदूषकः—साहु । [साधु ।]

मधुकरिका—साहु, सहि वसंतमाले, साहु ओगाहिअं खु तुए भट्टिदारिआए हिअअं । [साधु, सखि वसन्तमाले, साधु अवगाहितं खल्लु त्वया भर्तृदारिकाया हृदयम् ।]

वसन्तमाला—णं भट्टिदारिआए भट्टिणो भूमिअं दत्ती तुमं चेअ मे एत्थ गुरु । [ननु भर्तृदारिकाया भर्तृभूमिकां दधती त्वमेव मेऽत्र गुरुः ।]

अञ्जना—(सस्मितम्) ओगाहिअं किर मे हिअअं । [अवगाहितं किले मे हृदयम् ।]

उभे—कहं णावगाहिअं । पढमं दाव मंदारवणिआए विण्णादं । दाणिं पुण संजादसेदुग्गमेहि पुलइएहि अंगेहि परिस्फुटं ते साणुराअं हिअअं । [कथं नावगाहितम् । प्रथमं तावन्मन्दारवनिकायां विज्ञातम् । इदानीं पुनः संजातस्वेदोद्गमैः पुलकितैरङ्गैः परिस्फुटं ते सानुरागं हृदयम् ।]

पवनंजयः—साधु खल्वनुमीयते हृदयम् । तथा हि

स्वेदजलविसरसेकादङ्कुरितान्तर्गतानुरागेव ।

इयमङ्गयष्टिरस्या रोमोद्भेदं समुद्रहति ॥ १७ ॥

अञ्जना—(सस्मितम्) किं णाम दुरवगाहं हिअअणिन्विसेसस्स सहीजणस्स । [किं नाम दुरवगाहं हृदयनिर्विशेषस्य सखीजनस्य ।]

विदूषकः—वअस्स, किं अवरं इह द्वियदि । एहि, उवसप्पम्ह ।
[वयस्य, किमपरमिह स्वीयते । एहि^१, उपसर्पावः ।]

पवनंजयः—यथाह वयस्यः ।

(उपसर्पतः ।)

वसन्तमाला—किं बहुणा । अण्णं सव्वं सज्जं । पवणंजओ खु
एत्थ चिराअदि । [किं बहुना । अन्यत् सर्वं सज्जम् । पवनंजयः खल्वत्र
चिरायते ।]

विदूषकः—ण खु चिराअदि । एस णं तुवरेदि^२ । [न खलु
चिरायते । एप ननु त्वरते ।]

(अञ्जना दृष्ट्वा सलज्जमुत्थायान्यतो गच्छति ।)

वसन्तमाला मधुकरिका च—(दृष्ट्वा) अम्मो^३ भट्टा । (उपसृत्य)
जेटु भट्टा । [अहो भर्ता । (उपसृत्य) जयतु भर्ता ।]

पजनंजयः—(मधुकरिकां प्रति सस्मितम् अञ्जना वसन्तमालां च निर्दिश्य)
आर्ये मिश्रकेशि, किमयं पाणिग्रहणमहोत्सवसमनन्तरे पवनंजयस्य
अंजनामपहाय गन्तुं समयः ।

सर्वाः—(स्वगतम्) क्हं इमिणा आदिदो पहुदि सव्वं ओलोइदं ।
[कथमनेन आदितः प्रभृति सर्वमवलोकितम् ।]

मधुकरिका—(सस्मितम्) तेण हि हत्थे गण्हिअ वारेहि णं ।
[तेन हि हस्ते गृहीत्वा वारयैनाम् ।]

पवनंजयः—यथाह भवती । (अञ्जनामुपसृत्य, हस्ते गृहीत्वा, सस्मितम्)

इतस्त्वया गन्तुमयुक्तमित्थमिमं जनं प्राणसमं विहाय ।

नन्वञ्जना नाम मनोरथानां विहारभूमिः पवनंजयस्य ॥ १८ ॥

अञ्जना—(स्वगतम्) अम्मो गंभीरदा वंअणस्स । [अहो गम्भी-
रता वचनस्य ।]

मधुकरिका वसन्तमाला च—(सस्मितम्) जुत्तं खु भणिदं भट्टिणा ।
[युक्तं खलु भणितं भर्त्रा ।]

विदूषकः—संवृत्तो पाणिगहणमहूसवो । [संवृत्तः पाणिग्रहण-
महोत्सवः ।]

(नेपथ्ये)

इत इतो भर्तृदारिका । अतिक्रामति मज्जनवेला । तदिदानीं कन्या-
न्तःपुरमेव तावदागन्तव्यम् । प्रतिपालयन्ति च ते सर्वा एव प्रसाधन-
हस्ता जनन्यः ।

वसन्तमाला—तुवरदु भट्टिदारिआ । एसा खु अज्जा मिस्सकेसौ
सदावेदि । भट्टा, मुंच दाणिं हत्थं । कल्लं चेअ णं गण्हिरिससि ।
[त्वरतां भर्तृदारिका । एषा खलु आर्या मिश्रकेशी शब्दापयति । भर्तः, मुञ्जे-
दानीं हस्तम् । कल्यमेव ननु प्रहीष्यसि ।]

पवनंजयः—यथाह भवती । (सामिलापं मुञ्चति ।)

उभे—इदो इदो भट्टिदारिआ । [इत इतो भर्तृदारिका ।]

(सर्वा परिक्रम्य निष्क्रान्ता ।)

पवनंजयः—(तन्मार्गदत्तदृष्टिं सोत्कण्ठम्) कथं गतामपि प्रियां
साक्षात्करोतीव प्रौढस्मृतिः । तथा हि

अद्यापि गृह्णति करं मयि सा सलज्ज-

मात्मानमन्तरयतीव सखीजनेन ।

यान्ती च किञ्चन कुतोऽपि विलम्बमाना

सव्याजमत्र चलितां हरतीव दृष्टिम् ॥ १९ ॥

विदूषकः—वअस्स, एसो खु आरूढो णहमज्झं घम्मंसू, अदि-
क्कामदि अ भोअणवेला, ता वअंपि गच्छम्ह । [वयस्य, एष खल्वारूढो
नभोमध्यं घर्माशुः, अतिक्रामति च भोजनवेला, तस्माद्द्वयमपि गच्छाम् ।]

पवनंजयः—यद्भवते^१ (निर्वर्ण्य) अथे प्राप्तो मध्याह्नः । संप्रति हि

सरसि जलविहङ्गास्तीरजानां तरूणां

जलमपहततापं छायाया संश्रयन्ति ।

अविदलितकलापा बर्हिणः प्राप्य तन्द्री-

मुपवनतरुशाखावासयष्टीर्भजन्ते ॥ २० ॥

(परिक्रम्य निष्कान्तौ ।)

इति श्रीहस्तिमल्लेन विरचितेऽञ्जनापवनंजयनामनाटके^२
प्रथमोऽङ्कः ।

द्वितीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति वसन्तमाला ।)

वसन्तमाला—अम्हो महाराअपल्हादस्स^३ राअधाणीए असाहा-
रणं रामणिज्जअं । किं बहुणा खु विज्जाहरलोअस्स एअं आइच्चउरं
अलंकारं^४ वण्णंति^५ । जेण तं वि णाम अमरावईपडिमं मर्हिंदराअ-
धाणिं विसुमरिअ अम्हे एत्थ सुहं णिवसामो । अम्हो^६ भट्टिणो
बंधुजणस्स दक्खिण्णं, जेण अम्हे वि दाव भट्टिदारिआसरिसं
संभाविद म्ह । चिट्ठडु दाव एदं । तं खु विसेसदो विम्हअणिज्जं
भट्टिदारिआए सअंवरदिणे सुसरिसो खु एसो इमाणं समाअमो
त्ति सअलेण वि राअलोएण पडिऊलदं भोत्तूण संभाविदो भट्टा,

1 Thus A B C. Obviously the verbal form रोचते is missing.
D adds रोचते above the line 2 D परिक्रम्य 3 D °चित्तमजना...य नाटक
प्र°. 4 B O नम सिद्धेभ्यः । A adds अथ before द्वितीयोऽङ्कः । D omits दिः
5 D पहहादस्स 6 B O omit अलंकार. 7 D वण्णंति 8 D अहो.

भट्टिदारिआ अं । अहवा को^१ भट्टिणो पडिऊलो होडुं पभवदि । ण
खु कदाइ राजसिंहो करिकलहेहिं अहिजुत्तो हवे । सव्वहा महा-
भाआ भट्टिदारिआ । किं अवरं एत्थ आसंघिअदि । भट्टिणा
अविरहिदं सुइरं^२ वड्ढेडु । (परिक्रम्य) कहिं दाणिं वट्टइ भट्टा ।
(पुरो विलोक्य) अन्हो किं एदं एत्थ णिसण्णं । [अहो महाराजप्रह्ला-
दस्य राजधान्या असाधारणं रामणीयकम् । किं बहुना खलु विद्याधरलो-
कस्यैतदादित्यपुरम् अलंकारं वर्णयन्ति । येन तामपि नाम अमरावतीप्रतिमां
महेन्द्रराजधानीं विस्मृत्य वयमत्र सुखं निवसामः । अहो भर्तुर्बन्धुजनस्य
द्राक्षिण्यं, येन वयमपि तावद् भर्तृदारिकासदृशं संभाविताः स्मः । तिष्ठतु
तावदेतत् । तत्खलु विशेषतो विस्मयनीयं भर्तृदारिकायाः स्वयंवरदिने सुस-
दृशः खल्वेषोऽनयोः समागम इति सकलेनापि राजलोकेन प्रतिकूलतां मुक्त्वा
संभावितो भर्ता, भर्तृदारिका च । अथवा को भर्तुः प्रतिकूलो भवितुं प्रभवति ।
न खलु कदाचिद् राजसिंहः करिकलभैरभियुक्तो भवेत् । सर्वथा महाभागा
भर्तृदारिका । किमपरमत्राशास्यते । भर्त्रा अविरहितं सुचिरं वर्धताम् ।
(परिक्रम्य) कुत्रेदानीं वर्तते भर्ता । (पुरो विलोक्य) अहो किमेत-
दत्र निषण्णम् ।]

(ततः प्रविशति^३ उपविष्टो विदूषक ।)

विदूषकः—होदि वसन्तमाले । [भवति वसन्तमाले ।]

वसन्तमाला—कहं^४ अज्जप्पहसिदो । [कथमार्यप्रहसितः ।]

(उपसर्पति ।)

विदूषकः—होदि, किंति मं अणवेक्खिअ गच्छसि । [भवति,
किमिति मामनवेक्ष्य गच्छसि ।]

वसन्तमाला—(सस्मितम्) ण खुं दिट्ठो मए अज्जो, इमिणा
सुअंगसंणिहेण तुह कुच्छिणा अंतरिओ । [न खलु दृष्टो मया आर्यः,
अनेन मृदङ्गसंनिभेन तव कुक्षिणा अन्तरितः ।]

I B O add वा after को १ D सइर १ B C प्रविश्य. ४ A B O अज्ज-
प्पहसिदो. The word अज्ज (आर्य) is almost always written in these
Miss. as अवअ. ५ O अणदिक्खिअ. D अणपेक्खिअ. ६ D हु. ७ D मुदग.

विदूषकः—दासीए धूदे, किं तुम्हाणं विअ खामं खामं मह वि उदरं । [दास्याः पुत्रि, किं युष्माकमिव क्षामं क्षामं ममाप्युदरम् ।]

वसन्तमाला—का वा अम्हे तुमे सारिच्छं^१ लद्धुं । अज्ज चिट्ठदु एअं । कीस भवं एत्थ खुं उवविट्ठो चिट्ठइ । [का वा वयं त्वया सादृश्यं लब्धुम् । आर्यं तिष्ठत्वैतत् । कस्माद् भवानत्र खलूपविष्टस्तिष्ठति ।]

विदूषकः—होदि, वअस्सस्स अण्णाए^३ तत्तहोदिं सहावेदुं आअ-च्छंदो इमिणा दुब्भरेण जडरभारेण अक्कंदो^४ एत्थ मुहुत्तं^५ विस्स-सिदुं उवविट्ठो चिट्ठामि^६ । [भवति, वयस्यस्याज्ञया तत्रभवतीं शब्दा-पथितुमागच्छन् अनेन दुर्भरेण जठरभारेणाक्रान्तोऽत्र मुहूर्त विश्रमितुमुपविष्ट-स्तिष्ठामि ।]

वसन्तमाला—अज्ज, कुदो एदं अज्ज सविसेसं पउडुं दुप्पूरं ते उदरं । (सस्मितम्) किं महोअरं आडु गब्भो । [आर्यं, कुत एतदद्य सविशेष प्रवृद्धं दुष्पूरं^७ त उदरम् । (सस्मितम्) किं महोदरम् अथवा गर्भः ।]

विदूषकः—द्वै कुंभदासि, मा एव्वं । अदीद्वै खुं दाव णिसीह्वे मए वि णिदक्खिण्णेण तत्तहोदीए सहत्थदिण्णेहि सत्थिवाअणचकु-लेहि आअलं पूरिओ एस कुच्छी । अज्ज उण पच्चूसे भट्ठिणीए^८ अंतेउरे जीरअमरिअभूइडुं भक्खिअं दहिमिस्सं पादरासं । तुमं उण दाणिं क्हिं गमिस्ससि^९ । [अये कुम्भदासि, मा एवम् । अतीते खलु तावन्निशीथे मयापि निर्दाक्षिण्येन तत्रभवत्या स्वहस्तदत्तैः स्वस्तिवाचनशङ्कु-लीभिरागलं^{१०} पूरित एष कुक्षिः । अद्य पुनः प्रत्यूपे भट्टिन्या अन्तःपुरे जीरक-मरिचभूयिष्ठो भक्षितो दधिभिश्चः प्रातराशः । त्वं पुनरिदानीं कुत्र गमिष्यसि ।]

१ D सारिक्ख. २ D हु. ३ B C अण्णाए. ४ D मारेणकतो. ५ D मुहुत्तं
६ D त्विट्ठेमि. ७ chāyā in A दुष्पारम् ८ D ए केदुमदीए अते. ९ D गमि-
स्सिसि. १० D शङ्कुलैरा. ११ D न्यां केतुमला अ.

वसन्तमाला—अज्ज, दाणिं कहिं वट्टेइ भट्टेत्ति जाणिदुं कुमार-
भवणं गच्छेमि । [भार्य, इदानीं क वतंते भतंति ज्ञातुं कुमारभवनं
गच्छामि ।]

(नेपथ्ये)

उद्यानाध्यक्षौ—भो भोः सर्वेऽपि तावदुद्यानाधिकृताः पुरुषाः
शृण्वन्तु भवन्तः ।

प्रथमः—

रचयत मणिशालभञ्जिकानां स्तनकलशेषु विलेपनानि भूयः ।
सरसमलयजच्छटाभिराशु प्रमदवनान्तरचित्रमण्डपेषु ॥ १ ॥
किं च ।

उपवनसरसीनां तीरभागाङ्गणेषु
द्रुतमिह पुलिनानि स्वैरमापादयध्वम् ।
अविरलमतिमात्रोन्मिश्रकर्पूरचूर्णैः
स्फुटितदलपुटानां केतकीनां रजोभिः ॥ २ ॥

द्वितीयः—

मरकतमणिकुट्टिमस्थलेषु प्रतिनवकुङ्कुमपङ्कपत्रभङ्गान् ।
विलिखत सविशेषदर्शनीयानुपवनपादपपादवेदिकासु ॥ ३ ॥
अपि च ।

सुरभिकुसुमगन्धोद्गारिवारिप्रवाह-
मुनपरिसरवालाशोकमालालवालाः^४ ।
सपदि कृतककुल्याः साधु सञ्जीक्रियन्तां
द्रुतशशिमणितुल्या यन्त्रधारागृहेषु ॥ ४ ॥

१ B C D महे रि. २ A B C रचयतु. ३ B C D अपि च. ४ B C सुमालवालाः.

(उभावाकर्णयत. ।)

वसन्तमाला—अञ्ज, किं एदं । [आर्यं, किमेतत् ।]

विदूषकः—दाणिं खु तत्तहोदीसहिदो¹ पिअवअस्सो पमदवण-
मञ्झे बउलुज्जाणं पविसदि त्ति उज्जाणज्झक्खेहिं² सज्जीकरीअदि
सव्वा पमदवणभूसी । ता अविलंविअं गढुअ तुमं तहिं चैअ तत्त-
होदिं आणेहि । अहमविं³ पिअवअस्सस्स पासं गमिस्सं । [इदानीं खलु
तत्रभवतीसहितः प्रियवयस्यः प्रमदवनमध्ये बकुलोद्यानं प्रविशतीति उद्याना-
ध्यक्षैः सज्जीक्रियते सर्वा प्रमदवनभूमिः । तस्माद् अविलम्बितं गत्वा त्वं
तत्रैव तत्रभवतीमानय । अहमपि प्रियवयस्यस्य पार्श्वं गमिष्यामि ।]

वसन्तमाला—अञ्ज, तह । [आर्यं, तथा ।] (निष्क्रान्तौ ।)

प्रवेगक ।

(ततः प्रविशति पवर्नजय ।)

पवर्नजयः—अये, नववधूसमागमोत्सवो नाम कामिर्जनमनःसमा-
वर्जनैकरसो मदनस्य रसान्तराभिनिवेशः । संप्रति हि

अस्पष्टैरवलोक्तैरविकसद्दन्तांशुभिश्च स्मितै-

स्तैस्तैर्मन्मनभापितैश्च मधुरैरर्धावशिष्टाक्षरैः ।

भूयः प्रार्थितलम्बितैश्च ललितैरालिङ्गनैर्विश्लथै-

र्त्रीडां नातिजहाति नातिभजते विस्रम्भमप्यञ्जना ॥ ५ ॥

किमत्र बहुना । स्वभावतो हि नवसमागमः स्वयमेव कामिनी-
नामनावेद्यान् उद्गावयति भावान् । तथा हि

उत्थानैर्मम संनिधौ स्तनभराक्रान्तिक्रमहेतैः

स्वेदोद्भेदपुरस्सरैरविरलैः स्पर्शेषु रोमाञ्चितैः ।

1 After तत्तहोदीसहिदो B has a big lacuna extending as far as तत्तहोदिं पडिवालेम्ह, on p. 27, fourth line. 2 A C D उज्जाणदक्खेहिं. 3 D अह वि. 4 C कविजन°. 5 C मन्मथ°. 6 Thus A C, it should have been कुम°.

सव्याजान्तरितैः सखीभिरलसन्त्यस्तैश्च गन्तुं पदै-
रन्यामेव दशां महेन्द्रसुतया चेतो ममारोप्यते ॥ ६ ॥

(विचिन्त्य^१) ननु निशावसानसमय एव वयं वासभवनाभिर्गताः ।

अद्य च

रविः प्रासादाग्रे घनखचितजाम्बूनदमये
गतप्रायं जातं^२ द्विगुणयति बालातपगुणम् ।
असौ सौधात् सौधं विहरति च पारावतगणः
प्रवृत्ताश्च प्रेक्षाभवनसुरवः केलिशिखिनः ॥ ७ ॥

न चायमल्पीयानपि कालः प्रियाविरहेणातिवाहयितुं पार्यते । मम हि

नेत्रे तस्या वदनकमलप्रेक्षणौत्सुक्यशीले
हस्तौ भूयः स्तनतटयुगक्रीडनैकान्तलोलौ ।
स्कन्धाभोगौ^३ हठंभुजलतारोपणाराधनीयौ
नालं चेतः क्षणमपि विना वर्तितुं पद्मलाक्ष्याः ॥ ८ ॥

(विभाव्य) प्रभात एव हि प्रियामाह्वातुं मत्सकाशात् प्रस्थितो
वयस्यः प्रहसितः, तत् कुतस्तावदद्यापि विलम्बते ।

(प्रविश्य)

विदूषकः—एसो खु पिअवअस्सो महुँ एव आअमणं पडिवा-
ल्लेंतो कंचणवलहीए उवविट्ठो चिट्ठइ । जाव उवसप्पामि । (उपसृत्य^४)
जेदु पिअवअस्सो । [एष खलु प्रियवयस्यो ममैवागमने प्रतिपालयन् काञ्च-
नवलम्ब्याम् उपविष्टिष्ठति । यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य) जयतु प्रियवयस्यः ।]

पवनंजयः—वयस्य, किम् आगता दयिता ।

1 c omits the stage-direction. 2 A चायाद्विगुणयति D चाय for जातं 3 O स्कन्धौ भागे. 4 A हर°. 5 D मम. 6 After the stage-direction उपसृत्य, O has a lacuna extending up to पवनंजयः-प्रविशाग्रतः, below.

मञ्जीरकणितविलोभनेन हंसै-

र्निःश्वासानिलसुखसौरभेण भृङ्गैः ।

काञ्चीनिस्वनितरसेन सारसैश्च

प्राप्तेयं प्रमदवनाधिदेवतेव ॥ १२ ॥

विदूषकः—वअस्स, उट्टेदु भवं, जाव वउलुज्जाणं पविसम्ह ।

[वयस्य, उत्तिष्ठतु भवान्, यावद् बकुलोद्यानं प्रविशावः ।]

पवनंजयः—यथाह भवान् । (उत्तिष्ठत. ।)

विदूषकः—(उपसृत्य) सोत्थि होदीए । [स्वस्ति भवत्यै ।]

वसन्तमाला—(उपसृत्य) जेट्टु भट्टा । [जयतु भर्ता ।]

पवनंजयः—(अञ्जनां हस्ते गृहीत्वा) प्रिये, इत इतः ।

(सर्वे परिक्रामन्ति ।)

पवनंजयः—(निर्बर्ण्य) प्रिये, पइय बकुलोद्यानस्य परां लक्ष्मीम् ।

तथा हि

पुष्पैरद्य विभर्ति बालबकुलो विद्याधरीणामसौ

गङ्गणासवसेकदोहलरसास्वादेन तत्सौरभम् ।

आर्द्रालक्तकरञ्जितेन चरणाम्भोजेन संभावितो

रक्ताशोकतरुर्दधाति कुसुमैस्तद्रागशोभागुणम् ॥ १३ ॥

वयस्य, चित्रमण्डपमेव यास्यामः । तदिदानीं तस्यैव पादफलक-
मार्गमादिश ।

विदूषकः—इदो । [इतः ।] (परिक्रामन्ति ।)

विदूषकः—(पुरो निर्दिश्य) वअस्स, एसो चित्तमंडवो । जाव
उवसप्पम्ह । [वयस्य, एष चित्रमण्डपः । यावदुपसर्पामः ।]

(सर्वे प्रवेशं रूपयन्ति ।)

वसन्तमाला—भट्टा, एअं खु णवविअलिअबउल्लपुप्फपराअ-
सच्छदुअलपच्छदसणाहं सअणिज्जं । जाव इमं अलंकरेदु भट्टा ।
[भर्तः, एतत्त्वल्लु नवविदलितबकुलपुष्पपरागस्वच्छदुकूलप्रच्छदसनाथं शय-
नीयम् । यावदिदम् अलङ्करोतु भर्ता ।]

(सर्वे यथोचितमुपविशन्ति ।)

पवनंजयः—(स्पर्शं रूपयित्वा)

असौ सद्यःपुष्यद्वकुलमुकुलोद्गीर्णमदिर्गा-
कणाहारी हारी मधुपवनितागीतमधुरः ।
श्रमं मुष्णानस्तौ सपदि गमनायासजनितं
प्रिये मन्दं मन्दं मलयपवनो वाति शिशिरः ॥ १४ ॥

विदूषकः—घुम्मंति विअ अच्छिणी इमस्स सुहसेवदाए पदेसस्स ।
[घूर्णतं इवाक्षिणी अस्य सुखसेव्यतया प्रदेशस्य ।]

वसन्तमाला—(दृष्ट्वा, सहासम्) भट्टा, एसो दाणिं अज्जप्पहसिदो
आसीणप्पचलाइदेण मंदुरामकडअलीलं विडंवेदि । [भर्तः, एष इदा-
नीम् आर्यप्रहसित आसीनप्रचलायितेन मन्दुरामकंटलीलां विडम्बयति ।]

(अजना पवनंजयश्च सस्मितं पश्यत ।)

वसन्तमाला—किं एसो परं आआसे रोमंथं अब्भस्सदि ।
[किमेष परम् आकाशे रोमन्थमभ्यस्यति ।]

विदूषकः—(स्वप्रायते) अत्तहोदि, रसाला खु एदे मोदआ ।
[अत्रभवति, रसालाः खल्वेते मोदकाः ।]

(सर्वे हसन्ति ।)

1 D वउळफुळ्ळवराअ°. 2 B and C add the following before this stage-direction : पवनंजयः—प्रिये उपविश्यताम् । 3 B °दीर्ण°. 4 The chāyā in A reads निद्रायेते इव.

विदूषकः—(निपतन् प्रतिबुध्योपविश्य च सवैलक्ष्यम्) वअस्स, किं अकारणे हसिज्जइ । [वयस्य, किम् अकारणे हस्यते ।]

पवनंजयः—(सस्मितम्) न खलु किञ्चित् ।

वसन्तमाला—(सहासम्) अले कविलमकडअ, सिविणए वि मोद-
आइ ण विस्सरसि । [अरे कपिलमकडक, स्वप्नेऽपि मोदकान् न विस्सरसि ।]

विदूषकः—(सकोपम्) वअस्स, एसा दासीए धूदा तुम्हाणं पि अगदो मं अदिक्खिवादि । ता किं इह द्विण्ण । (ससंरम्भमुत्तिष्ठति ।)
[वयस्य, एषा दास्यादुहिता युवयोरप्यग्रतो माम् अधिक्षिपति । तस्मात् किमिह स्थितेन ।] (ससंरम्भमुत्तिष्ठति ।)

अञ्जना—(सस्मितम्) अज्ज, मा मा एव्वं कुण । अविणीदां खु
एसा, जाव खमिज्जउ । [आर्य, मा मैवं कुरु । अविनीता खल्वेषा, यावत् क्षम्यताम् ।]

पवनंजयः—वयस्य, ननु प्रिया निवारयति ।

(विदूषकोऽशृण्वन्नैव सत्वरमपसरति ।)

वसन्तमाला—हुं, कुविओ गओ अज्जप्पहसिओ, जाव गदुअ
पसादेमि णं । (विदूषकमुपसृत्य) अज्ज, मा मा कुप्पेहि । [हुं, कुपितो
गत आर्यप्रहसितो, यावद् गत्वा प्रसादयाम्येनम् । (विदूषकमुपसृत्य) आर्य,
मा मा कुप्य ।]

विदूषकः—होदि, ण खु दाव कुप्पेमि, जइ मे णिद्दाभंगं ण
कुणसि । [भवति, न खलु तावत् कुप्यामि, यदि मे निद्राभङ्गं न करोषि ।]

वसन्तमाला—जं अज्जस्स रोअदि । [यद् आर्याय रोचते ।]

विदूषकः—जाव अहं इमस्सि वडलवेदिआए णिद्दावेमि ।
[यावदहमस्यां बकुलवेदिकायां निद्रां करोमि ।]

[वसन्तमाला—अज्ज तह । अहं वि इदो तदो मलआणिलं सेवेमि ।

[आर्यं तथा । अहमपि इतस्ततो मलयानिलं सेवे ।]

विदूषकः—होदि वसंतमाले, भाएमि^१ अहं इह एकाई सोविदुं ।
ता तुए ण दूरं अवकमिद्वं । [भवति वसन्तमाले, बिसेमि अहमिह
एकाकी स्वपितुम् । तस्मात् त्वया न दूरमपक्रमितव्यम् ।]

वसन्तमाला—(सस्मितम्) अज्ज, तह करिस्सं । विस्सद्धं सआहि ।
(निष्क्रान्ता) [आर्यं, तथा करिष्यामि । विस्रब्धं शयीथाः ।]

(विदूषको निद्रायते ।)

पवनंजयः—हुं प्रिये, विवित्तरमणीयोऽयं देशः । तदिदानीमपि
स्वैरविस्त्रम्भरोधिनि व्रीडारसे कोऽयमत्यायतोऽभिनिवेशः । (अज्जना
लज्जां नाटयति ।)

पवनंजयः—(साचुरोधम्)

आलिङ्गनाय न ददासि कुतस्त्वमङ्गा-

न्यापातुमर्पयसि नैव किमाननेन्दुम् ।

दृष्टिं मदीक्षणपथे न करोषि कस्मा-

त्राभाषसे किमिति देवि निरुद्धकण्ठा ॥ १५ ॥

(नेपथ्ये महान् कलकल)

विदूषकः—(ससभ्रमं प्रतिबुध्योत्थाय) अविह अविह वसंतमाले ।
[अचत अचत वसन्तमाले ।]

(प्रविश्य संभ्रान्ता)

वसन्तमाला—अज्ज, मा भआहि । [आर्यं, मा भैषीः ।]

अज्जना—(ससभ्रमम्) हुं किं एदं^१ । [हुं किमेतत् ।]

1 B C D add before this, the following: विदूषक—होदि तह ।
(वसन्तमाला अपक्रामति ।). 2 D भाआमि. 3 C एआई 4 B C विसत्थ 5 D
सुमदान् 6 B C अविहा उ, D अविह for अविह अविह. 7 D adds here: पव !
आरुण्यं सवितर्कम् । किमिदम्.

विदूषकः—भाआमि अहं इह द्वाहुं । एहि तत्तहोदो पासं ।
[बिभेम्यहमिह स्थातुम् । एहि तत्रभवतः पार्श्वम् ।]

(उपसर्पत. १)

पवनंजयः—(विभाव्य) कथं तातस्य प्रस्थानभेरीरवः ।

विदूषकः—एवं होदवं । [एवं भवितव्यम् ।]

पवनंजयः—

निर्हारी विजयार्धकन्दरदरीद्वारं प्रतिध्वानयन्
उद्रीवान् गृहकेकिनो जलधरध्वानोत्सुकान्नर्तयन् ।
शत्रुक्षत्रकुलक्षयैकपिशुनः कात्स्न्येन रुन्धन्नभ-
स्तातस्यैष कुतः खलु प्रसरति प्रस्थानभेरीध्वनिः ॥ १६ ॥

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेटु कुमारो । एसो खु अमच्चो अज्जविजयसम्मा
कुमारं दहुं आअदो वउलुज्जाणदुवारए चिट्ठइ । [जयतु कुमारः ।
एष खल्वमात्य आर्यविजयशर्मा कुमारं द्रष्टुमागतो बकुलोद्यानद्वारे तिष्ठति ।]

पवनंजयः—(अञ्जना प्रति) प्रिये, गच्छेदानीं स्वभवनमेव ।

अञ्जना—जं अज्जउत्तो आणवेदि । (उत्तिष्ठति ।) [यदार्यपुत्र
आज्ञापयति ।]

वसन्तमाला—(उत्थाय) इदो इदो भट्टिदारिआ । [इत इतो
भर्तृदारिका ।]

(परिक्रम्य निष्क्रान्ते ।)

पवनंजयः—वैजयन्ति, अविलम्बितं प्रवेशय ।

प्रतीहारी—जं कुमारो आणवेदि । (निष्क्रम्य, अमात्येन सह प्रविश्य)
इदो इदो अमच्चो । [यत् कुमार आज्ञापयति । (निष्क्रम्य, अमात्येन सह
प्रविश्य) इत इतोऽमात्यः] (परिक्रामतः ।)

अमात्यः—अहो नु खलु महाराजस्य महिमा । कुतः

वदन्ति राजां यदमात्यनिष्ठां वृत्तिं तदत्र व्यभिचारि दृष्टम् ।

स्वयंगृहीतोचितकार्ययुक्तेः सेवाविनोदाय वयं यदस्य ॥ १७ ॥

प्रतीहारी—(पुरो निर्दिश्य) एसो खु कुमारो, जाव उवसप्पदु
अमच्चो । [एष खलु कुमारो, यावदुपसर्पत्वमात्यः ।]

अमात्यः—(दृष्ट्वा) अये कुमारो, य एषः

सकलं पैवृकं तेजो दुर्निरीक्ष्यं समुद्वहन् ।

आस्कन्दति रवेः कक्ष्यां नभोमध्यविलङ्घिनः ॥ १८ ॥

(उभावुपसर्पत ।)

पवनंजयः—आर्य, अभिवाद्ये ।

अमात्यः—कुमार, कुलधुरंधरो भव ।

पवनंजयः—वैजयन्ति, आसनमत्रभवते ।

प्रतीहारी—इदं संणिहिदं वेत्तासणं, जाव उवविसदु अमच्चो ।

[इदं संनिहितं वेत्तासनं, यावदुपविशत्वमात्यः ।]

अमात्यः—(उपविश्य) वैजयन्ति, निषिद्धाशेषपरिजना द्वार-
देशमशून्यं कुरु ।

प्रतीहारी—जं अमच्चो भणादि । [यदमात्यो भणति ।] (निष्क्रान्ता ।)

पवनंजयः—किमागमनप्रयोजनमत्र भवतः ।

अमात्यः—कुमार, श्रूयताम् ।

पवनंजयः—अवहितोऽस्मि ।

अमात्यः—श्रूयत एव हि कुमारेण यथा दक्षिणार्णवान्तर्वर्तिनि
त्रिकूटपर्वते लङ्कापुरमधिवसन् रक्षसां पतिर्दशग्रीवो नाम विद्यत इति ।

पवनंजयः—अस्ति, श्रूयते ।

अमात्यः—तस्य च पश्चिमाणवसंस्थितं पातालपुरमधिवसता
वरुणेन सह सुमहानासीद् विरोधः ।

पवनंजयः—ततस्ततः ।

अमात्यः—ततश्च दशग्रीवेणापि खरदूषणप्रभृतिभिरधिष्ठितं महद्
वरुणं प्रति नियोजितं दण्डचक्रम् ।

पवनंजयः—ततः ।

अमात्यः—प्रवृत्ते च महति संगरे गृहीता वरुणेन खरदूषणप्रभृतयः ।

पवनंजयः—ततः ।

अमात्यः—एतादृशं मानभङ्गमुद्धहन् दशास्यः खरदूषणादीनां
मोचनाय दूतमुखेन महाराजमभ्यर्थितवान् ।

पवनंजयः—ततः ।

अमात्यः—एवं चाभ्यर्थितो महाराजः कुमारमाहूय पुरं परि-
पालयितुमत्रैव समवस्थाप्य स्वयं प्रस्थानाय प्रारभते ।

पवनंजयः—(सहासम्) आर्यं कुतोऽयमस्थान एव तातस्य प्रस्था-
नसंरम्भः ।

निर्भिन्नद्विरदेन्द्रमस्तकतटीनिर्मुक्तमुक्ताफल-

श्रेणीदन्तुरदन्तकुन्तविवरो यो राजकण्ठीरवः ।

सोऽयं मानमहान् स्वयं मृगशिशुव्यापादनव्यापृतः

किं कीर्त्यन्तरमात्मनो जनयति प्रख्यातशौर्योचितम् ॥ १९ ॥

तदिदानीमेतावन्मात्रे वस्तुनि समैव तावद् गमनेन पर्याप्तम् ।

अमात्यः—युक्तमेवाभिहितं कुमारेण । कुतः ।

पुत्रेष्वनिर्वापितविक्रमेषु विद्याविनीतेषु भवादृशेषु ।

यथावदारोपितकार्यभाराः स्वैरं नरेन्द्राः सुखिनो भवन्ति ॥२०॥

तथापि निर्विचारं क्षुद्र इति नावमन्तव्यो वरुणः । तस्य हि

अधिष्ठानं तावज्जलनिधिरनुल्लंघ्यमहिमा

शनं पुत्राः शत्रुक्षितिपकुलनिष्पेषकुशलाः ।

स्वयंसेवी^१ विद्याधरनृपतिसार्थोऽप्यभिलषन्

प्रतीहारस्थानं प्रतिदिनमशून्यं च कुरुते ॥ २१ ॥

एवं च पुनरेतादृशे प्रतिपक्षे पराजिते सुमहदिहं यशः संपत्स्यते
महाराजस्य । तदलसत्यावेगेन । कुमारेणैव यावत्प्रत्यागमनं प्रतिपाल्य-
मानामिच्छत्येतां राजधानीं महाराजः ।

पवनंजयः—(विहस्य) किमिदमार्यस्याप्यनुमतमेव । पश्य ताव-
द्वचिरात्

आपातालतलान् प्रसह्य रभसान्निर्मूलमुन्मूलितां

तां पातालपुरी क्षिपाम्ययमहं मध्येसमुद्रं क्रुधा ।

गाढोन्मुक्तपतच्छिलीमुखमुखोद्गीर्णस्फुलिङ्गानल-

ज्वालाभिः कवलीकृतानि समरे शुष्यन्त्वसृञ्जि द्विषाम् ॥ २२ ॥

अमात्यः—किमिदमतिगरीयः कुमारस्य ।

^१विदूषकः—असच्च सुदु भणिअं । [अमात्य सुदु भणितम् ।]

अमात्यः—किं प्रतिज्ञात एव कुमारेण संगरः ।

पवनंजयः—अथ किम् ।

1 C पुत्रेषु निर्वापितविक्रमेषु. 2 A स्वय सेव्यद्विद्याधर etc, B C स्वय सेव्या
विद्याधर etc. D स्वय सेव्यो; the reading in the text is conjectural.
3 B C नुनहदेव. 4 A शुष्यन्त्यसृञ्जि, B रुष्यन्त्यसृञ्जि, C शुष्यन्त्यसृञ्जि. 5 C omits
both these speeches.

अमात्यः—तेन हि महाराज एवात्र प्रमाणम् । तदिदानीं महाराजमेव द्रक्ष्यामः ।

पवनंजयः—बाढम् । प्रथमः कल्पः ।

विदूषकः—तेण हि उट्टेदु वअस्सो । [तेन हि उत्तिष्ठतु वयस्सः ।]
(सर्वे उत्तिष्ठन्ति ।)

पवनंजयः—

धारानिर्भिन्नविद्विद्रुकुलगलविगलद्रक्तधाराप्रवाह—

प्रच्छन्नं पश्चिमाग्निनिधिमुपरचिताकाण्डसंध्यानुरागम् ।

निर्व्याजं शङ्कयन्ती दिशि दिशि निविडं^१ प्रज्वलद्वाडवाग्निं

स्वैरं संग्रामलीलामनुभवतु मम स्थेयसी खड्गयष्टिः ॥ २३ ॥

विदूषकः—इदो इदो । [इत इतः ।]

(परिक्रम्य निष्क्रान्ता सर्वे ।)

इति^३ श्रीहस्तिमल्लेन विरचितेऽञ्जनापवनंजयनाम-
नाटके^४ द्वितीयोऽङ्कः ।

तृतीयोऽङ्कः^५ ।

(ततः प्रविशति विदूषक ।)

विदूषकः—अहो वरुणस्स णिरवग्गहा सामग्गी, जं दाव एत्तिअं
वि कालं दिणे दिणे परिवड्ढमाणजुद्धसंमदो पुत्तसदणिक्खत्तसमर-
धुरो ण कदाइ ओगाहेइ^६ संगरंगणं । अहवा वअस्सो एत्थ पसं-
सिदव्वो । जो एवं राजीवप्पमुहाणं महाबलाणं वरुणणंदणाणं सदेण

1 Thus A B C, it would be better to read निविडप्रज्वलद्वाडवाग्नि-
2 D विदू । तेण हि उट्टेदु वयस्सो । इदो । परिक्रम्य etc. 3 A B D इति श्रीगोवि-
न्दस्वामिनः सन्नुना हस्तिमल्लेन etc. C इति श्रीगोविन्दस्वामिस्सनुना हस्तिमल्लेन etc.
4 D विरचितमंजनापवनंजय नाम नाटक द्वितीयोऽङ्कः ॥ 5 B C D नमः सिद्धेभ्यः । A
adds अथ before तृतीयोऽङ्कः. 6 D ओवाहेइ.

अण्णोण्णसंघरिसंप्पत्ताहि महाविज्जाहि भआणए रणसिरे एसुं
 च्चदुसु वि मासेसु अणुदिणं सविसेसं किज्जंतपरक्कमो वड्डेइ विजएण ।
 (निःश्वस्य) सच्चो वि पुण एसो^१ संगामवइअरो पहसिदस्स एव्व
 दुच्चरिअपरिवाओ जो एव्वं एकदो^२ इमिणा दूसवेण^३ समुदघोसेण,
 एकदो अ परुसेण संगणद्धवरूहिणीकोलाहलेण, एकदो अ भआण-
 एण णिवडंतसरसदसदेण, एकदो कण्णकडुएण धणुग्गुणगुंजिदेण,
 एकदो अ भीसणेण विजअडिंडिमणिग्घोसेण वहिरीकअसवणउडो
 दिवाणिसं भीदभीदो विसुमरिअणिद्वासुहो वीसद्धं भुंजिदुं पि अलद्धा-
 वसरो, तत्तेण रुल्लडिदिं^४ आअरेमि । सच्चहा उव्वेअणिज्जं खु राअ-
 उत्तमित्तत्तणं णाम । विसेसदो एत्थ खरदूसणादिमोअणुच्छाहो
 बाहेदि मं जं तेसं चेअ हदासाणं खरदूसणादीणं पच्चवाअं आसं-
 किअ वरूणस्स इत्ति माणभंगं परिहरंतो विज्जावलेण सणिअं चेअ
 जुज्झदि वअस्सो । अण्णहा को णाम पदिवक्खो समरसिरंमि संमुहे
 वअस्सस्स मुहुत्तमेत्तं वि वट्ठिदुं पहवदि । अज्ज दु पुण इमस्सिं
 एक्कस्सिं दिणे मम एव्व बम्हणस्स भाअघेएण उहअपक्खवट्ठिहिं
 सेणावईहिं अण्णोण्णवलविस्समत्थं दिट्ठिआ णिसिद्धो जुद्धवावारो ।
 एवं च पहाददो पहुदि एत्तिअं वेळं चउरंगवलदंसणसमूसुओ अ-
 लद्धावसरदाए ण साहु सेविओ मए पिअवअस्सो । दाणिं च सार्य-
 त्तेणसंज्ञासमुदाआरत्थं अत्थाणदो णिग्गदो कहिं पुण दाणिं वट्टेइ ।
 (पुरो विलोक्य) एसा खु धणुग्गाहिणी सरावई । एअं दाव पुच्छिस्सं ।
 (आकाशे) होइ सरावइ, कहिं दाणि वट्टेइ वअस्सो । किं भणासि,

1 D सघंस. 2 D इमेसु for एसु 3 D एस. 4 D दुस्सवेण 5 A रुल्लडिदिं, B
 रुल्लडिदिं; 6 D रुल्लडिदिं [रुग्गडिदिं], chāyā in A रुगस्थितिम्. 6 A B C
 सायज्ञणसंज्ञा°. 7 D णिग्गओ.

अञ्ज णिव्वट्टिसंज्ञासमुदाआरो णिसिद्धासेसपरिअणो कुमुड्डीणी-
तीरुद्देसे वट्टइत्ति । तेण हि तहिं गच्छामि । (परिक्रामति) [अहो वरु-
णस्य निरवेग्रहा सामग्री, यत्तावदेतावन्तमपि काल दिने दिने परिवर्धमानयुद्ध-
संमर्दः पुत्रशतनिक्षिप्तसमरधुरो न कदाचिदवगाहते सङ्गराङ्गणम् । अथवा
वयस्योऽत्र प्रशंसितव्यः । य एव राजीवप्रमुखानां महाबलानां वरुणनन्दनानां
शतेन अन्योन्यसंघर्षप्रयुक्ताभिर्महाविद्याभिर्भयानके रणशिरसि, एषु चतु-
र्ष्वपि मासेषु, अनुदिन सविशेष क्रियमाणपराक्रमो वर्धते विजयेन । (नि श्वस्य)
सर्वोऽपि पुनरेष संग्रामव्यतिकरः प्रहसितस्यैव दुश्चरितपरिपाको य एवमेक-
तोऽनेन दुःश्रवेण समुद्रघोषेण, एकतश्च परुषेण संनद्धवरुथिनीकोलाहलेन,
एकतश्च भयानकेन निपतच्छरशतशब्देन, एकतः कर्णकटुकेन धनुर्गुणगुञ्जितेन,
एकतश्च भीषणेन विजयडिण्डिमनिर्घोषेण वधिरीकृतश्रवणपुटो दिवानिश भीत-
भीतो विस्मृतनिद्रासुखो विस्त्रब्धं भोक्तुमप्यलब्धावसरः, तत्त्वेन रुग्णस्थितिम्
आचरामि । सर्वथोद्वेजनीयं खलु राजपुत्रमित्रत्वं नाम । विशेषतोऽत्र खरदूष-
णादिमोचनोत्साहो बाधते मां यत्तेषामेव हताशानां खरदूषणादीनां प्रत्यवाय-
माशङ्क्य वरुणस्य झटिति मानभङ्गं परिहरन् विद्यावलेन शनैरेव युध्यते वयस्यः ।
अन्यथा को नाम प्रतिपक्षः समरशिरसि संमुखे वयस्यस्य मुहूर्तमात्रमपि
वर्तितुं प्रभवति । अद्य तु पुनरस्मिन्नेकस्मिन् दिने ममैव ब्राह्मणस्य भागधेयेनो-
भयपक्षवर्तिभ्यां सेनापतिभ्याम् अन्योन्यबलविश्रमार्थं दिष्ट्या निषिद्धो युद्ध-
व्यापारः । एवं च प्रभाततः प्रभृत्येतावतीं वेलां चतुरङ्गबलदर्शनसमुत्सुकोऽ-
लब्धावसरतया न साधु सेवितो मया प्रियवयस्यः । इदानीं च सायंतन-
संध्यासमुदाचारार्थम् आस्थानतो निर्गतः कुत्र पुनरिदानीं वर्तते । (पुरो
विलोचय) एषा खलु धनुर्ग्राहिणी शरावती । एतां तावत् पृच्छामि । (आकाशे)
भवति शरावति, कुत्रेदानीं वर्तते वयस्यः । किं भणसि, आर्यं निर्वातितसंध्या-
समुदाचारो निषिद्धाशेषपरिजनः कुमुद्वतीतीरोद्देशे वर्तत इति । तेन हि तत्र
गच्छामि । (परिक्रामति ।)]

(तत्र प्रविशति पवनंजय ।)

पवनंजयः—(निर्वर्ण्य) अहो नु खलु सुखसेव्यता सागरपरिसरो-
द्देशानाम् । इह हि

सेनानेकपरुष्णचन्दनरसान् गण्डूषयन्तः सरि-

तीरोपान्ततमालपल्लवपुटानुद्भेदयन्तः शनैः ।

सद्यो युद्धपरिश्रमापहरणात्संमानिताः सैनिकैः

सेव्यन्ते^१ सुखशीतलाः सुरभयो वेलावनान्तानिलाः ॥ १ ॥

विदूषकः—एसो खु वअस्सो । जाव उवसप्पामि । (उपसृत्य)

जेट्टु पिअवअस्सो । [एष खलु वयस्यः । यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य)

जयतु प्रियवयस्यः ।]

पवनंजयः—ऋथं वयस्यं ।

विदूषकः—भो वअस्स, दक्ख दाव पञ्चासण्णचंदोदअस्स दंस-
णिज्जदं गअणभाअस्स । [भो वयस्य, पश्य तावत्प्रत्यासन्नचन्द्रोदयस्य
दर्शनीयतां गगनभागस्य ।]

पवनंजयः—(विलोक्य)

मध्येध्वान्तं प्रविशति हठात् संप्रति प्रेक्षणीर्यं

प्रालेयांशोः करपरिकरः संनिकृष्टोदयस्य ।

अन्तस्तोयं मरकतशिलाश्यामलस्याम्बुराशे-

र्मन्दाकिन्या इव शशिभिर्द्रावगौरः प्रवाहः ॥ २ ॥

विदूषकः—वअस्स पेक्ख, एसो खु विरहिजणहिअअमज्जण-
लग्गरुहिरलोहिओ भल्लो विअ वंमहस्स, हरिचंदणरसचच्चिदो णिडाल-
पट्टो विअ उक्कंठिअकामिणीजणस्स, विरहसिहिपढमसिहुग्गामो विअ
रहंगमिहुगाणं, जोण्हासवपाणरअणचसओ विअ चओरआणं, पुव्व-
दिसावहूसुहसमालंभणविसेसओ सोहइ सविसेसं अद्धोदिओ दाणिं

1 B C D लवङ्ग for तमाल. 2 D सेवते. 3 D विदू । विलोक्य । 4 A विदू-
षकः in stead of वयस्य. It would be better to read वयस्यः. 5 B D
प्रेक्षणीयम्. 6 B टकरिअ°. 7 A चउरआण, B O चवरआण. 8 D समाळहण.

णिसाणाहो । [वयस्य पश्य, एष खलु विरहिजनहृदयमञ्जनलम्परुधिर-
लोहितो भल्ल इव मन्मथस्य, हरिचन्दनरसचर्चितो ललाटपट्ट इवोत्कण्ठित-
कामिनीजनस्य, विरहशिखिप्रथमशिखोद्गम इव रथाङ्गमिथुनानां, ज्योत्स्नासव-
पानरत्नचर्षक इव चकोरकाणां, पूर्वदिशावधुमुखसमालम्भनविशेषकः शोभते
सविशेषमर्धोदित इदानीं निशानाथः ।]

पवनंजयः—(निर्वर्ण्य)

उन्नमति विधोर्विम्बं रदमुखमिव हस्तिमल्लस्य ।

निहतरिपुहस्तिमस्तकसरुधिरमस्तिष्कपाटलितम् ॥ ३ ॥

विदूषकः—भो वअस्स, सहिदा एव इमाए कुमुदिणीए तीर-
देसेसु कोमुइं सेविस्सम्ह । [भो वयस्य, सहितावेवास्याः कुमुद्वत्यास्तीर-
देशेषु कौमुदीं सेवावहे ।]

पवनंजयः—यथाह भवान् ।

(उभौ तथा कुरुत ।)

पवनंजयः—इतश्च ।

सपदि शिशिरधाम्ने लोलकल्लोलहस्तैः

प्रचुरमभिपतद्भिः पश्चिमेनार्णवेन ।

इह समुपहतानामर्घ्यमुक्ताफलानां

दधति वियति लक्ष्मी तारका विप्रकीर्णाः ॥ ४ ॥

विदूषकः—(पुरो निर्दिश्य) वअस्स, पैक्ख एत्थ सहअरं अण्णे-
संतिं एक्कं चक्काइअं । [वयस्य, पञ्चान्न सहचरमन्विष्यन्तीमेकां चक्रवा-
किकाम् ।]

पवनंजयः—(दृष्ट्वा) कष्टं भोः, सहचरमन्वेषमाणा शोच्यामेव
दशामनुभवति तपस्विनी । पश्य

तृतीयोऽङ्कः

मुहुश्चन्द्रं द्वेष्टि प्रविशति मुहुः कैरववनं
 मुहुस्तूष्णीमास्ते करुणकरुणं क्रन्दति मुहुः ॥
 मुहुः पश्यत्याशा निपतति मुहुः सैकततले
 मुहुर्मुह्यत्येषा विरहविधुरा कोकवनिता ॥ ५ ॥

(आत्मगतम्) आः कष्टम्, अञ्जनापि मत्प्रवासादेवंप्रायां दशां प्रपद्येत ।
 (स्तिमितस्तिष्ठति ।)

विदूषकः—कहं वअस्सो आविट्ठो विअ चिट्ठइ । वअस्स, किं
 तुण्हीको चिट्ठसि । (हस्तमाकृष्य) भो वअस्स, किं तुण्हीको^१ चिट्ठसि ।
 [कथं वयस्य आविष्ट इव तिष्ठति । वयस्य, किं तूष्णीकस्तिष्ठसि । (हस्तमाकृष्य)
 भो वयस्य, किं तूष्णीकस्तिष्ठसि ।]

पवनंजयः—(सगद्गदम्)

उदिते विनिकीर्य चन्द्रिकां शिशिरांशौ मदनैकसारथौ ।

विरहं विषहेत कामिनी ननु का नाम निकामदुःसहम् ॥ ६ ॥

विदूषकः—(आत्मगतम्) कहं उक्कंठिओ विअ वअस्सो । [कथम्
 उक्कंठित इव वयस्यः ।]

पवनंजयः—

संग्रामेषु दिने दिने द्विगुणितोत्साहेन तावन्मया

नीतोऽयं परवत्तया न गणितो दीर्घोऽपि कालो गतः ।

सेदानीं महतीं महेन्द्रतनया स्वप्नेऽप्यसंभावितां

कष्टं भो विरहव्यथामविषहां सोढुं^२ कथं पारयेत् ॥ ७ ॥

विदूषकः—भो वअस्स, कीस दाणिं तुसं एकपदे^३ कादरो होसि ।
 [भो वयस्य, कस्मादिदानीं त्वमेकपदे कातरो भवसि ।]

१ A विरहविधुराशोकवनिता, B °कोशवनिता. C °कोपवनिता. २ D तुण्हीको.
 ३ B C D वोढु. ४ C omits एकपदे.

पवनंजयः—(मदनावस्थासमिनयन्)

इतो धुन्वन्नेलां मलयपवनो याति शनकै-
रितो ज्योत्स्नापूरं कुमुदविशदं वर्षति शशी ।
इतो गाढं मुक्तैर्विषमविशिखो विध्यति शरैः
सखे निःशङ्कस्त्वं कथय कथमाश्वासयसि माम् ॥ ८ ॥

विदूषकः—कहं पउड्डो दाणिं इमस्स मअणुम्मादो । [कथं प्रवृद्ध
इदानीमस्य मदनोन्मादः ।]

पवनंजयः—अहो महदाश्चर्यम् ।

अस्य हि शराः सुमनसः प्राप्तास्ते पञ्चतां च बलम्बलाः ।

स्वयमथ तावदनङ्गः कथमयमित्थं जगज्जयति ॥ ९ ॥

विदूषकः—(आत्मगतम्) एसो खु बलिअं उक्कंठिओ, ता विलो-
हेमि दाव णं । (हस्ते गृहीत्वा) भो वअस्स, एहि दाव अब्भंतरं ।
पडिवालेन्ति खु राआणो तुसं सेविट्ठं । [एष खलु बलव्रदुक्कण्ठितः,
तस्माद्विलोभयामि तावदेनम् । (हस्ते गृहीत्वा) भो वयस्य, एहि तावद-
भ्यन्तरम् । प्रतिपालयन्ति खलु राजानस्त्वां सेवितुम् ।]

पवनंजयः—(अशृण्वन्नेव सनि श्वासमुपविगति ।)

विदूषकः—(सोपहासम्) साहु अणुड्ढिदं मे वअणं । [साध्वनु-
ष्ठितं मे वचनम् ।]

पवनंजयः—किमस्थाने प्रलपसि । निभृतमुपविश्यताम् ।

विदूषकः—का गई । [का गतिः ।] (उपविशति ।)

पवनंजयः—(सोत्कण्ठम्)

1 c वेलाम् 2 B C मणुम्मादो (=मनउन्मादः). 3 c adds the stage
direction अशृण्वन्नेव सनि श्वासम्.

प्रत्यागमौ मम किमप्युपजातलज्ज-

मुत्फुल्लगण्डफलकं स्फुरिताधरोष्ठम् ।

तस्याः कदा नु खलु भो वदनारविन्दं

द्रक्ष्यामि मद्विरहखेदभरातुरायाः ॥ १० ॥

विदूषकः—ण खु एसो अवसरो उक्कंठाए । [न खल्वेषोऽवसर उक्कण्ठायाः ।]

पवनंजयः—नायमवसरः कार्योपदेशस्य ।

विदूषकः—किं दाणिं मए एत्थ करिअदु । [किमिदानीं मयात्र क्रियताम् ।]

पवनंजयः—वयस्य, सोपकरणं चित्रफलकमानीयताम् । यावच्चित्र-
गतामपि प्रियामिदानीं पश्यामः ।

विदूषकः—का गई । जं भवं भणादि । [का गतिः । यन्नवान्
भणति ।] (उत्थाय प्रस्थित ।)

पवनंजयः—वयस्य, एहि तावत् ।

विदूषकः—(उपसृत्य) आणवेहि । [आज्ञापय ।]

पवनंजयः—

चन्द्रिकार्तपसंतप्तो मम संजातवेपथुः ।

अयमालिखितुं हस्तः क्षमते न तु किञ्चन ॥ ११ ॥

विदूषकः—तं कारीअ भवं तं दंसीअ । [तदकार्षीन्नवांस्तदद्राक्षीत् ।]

पवनंजयः—वयस्य,

विरचय कहारदलैः शयनीयमिहैव शीतलस्पर्शैः ।

कदलीदलेन वीजय मलयानिलतप्तमङ्गमिदम् ॥ १२ ॥

अथचा ।

1 D उक्कठितायाः. 2 D क्रियते. 3 D ताप for तप. 4 D तत् अङ्गरेत् ।
तदद्राक्षीत्

ज्योत्स्नेयं मलयानिलोऽयमपि मे तापाय जातो यथा
 कहारैः कदलीदलैश्च कथय प्राप्येत का वा धृतिः ।
 तद्रव्यर्थैर्वहुजल्पितैरिह कृतं वाढं महेन्द्रात्मजा-
 गाढालिङ्गनमेव केवलमहं मन्ये समाश्वासनम् ॥ १३ ॥

विदूषकः—साहु सुकरं दार्णि एअं । वेअह्णे दाव तत्तहोदी,
 तुमं उणं एत्थ अवरन्तभूमीए वट्टसे । [साधु सुकरमिदानीमेतत् ।
 विजयार्धे तावत्तत्रभवती, त्वं पुनरत्र अपरान्तभूम्यां वर्तसे ।]

पवनंजयः—वयस्य, वयमिदानीं विमानमारुह्य विजयार्धमेव गमि-
 ष्यामः । (उत्तिष्ठति ।)

विदूषकः—(उत्थाय) भो वअस्स, सुणाहि दाव । [भो वयस्य,
 शृणु तावत् ।]

पवनंजयः—स्वैरमभिधत्स्व ।

विदूषकः—एत्थ एव्व महावले तुह पडिवक्खे वरुणे ठिए
 खंधावारं उज्झिअ गमिस्ससि त्ति अजुत्तं मे पडिभाअइ । [अत्रैव
 महावले तव प्रतिपक्षे वरुणे स्थिते स्कन्धावारम् उज्झित्वा गमिष्यसीत्ययुक्तं
 मे प्रतिभाति ।]

पवनंजयः—(सकोपम्)

सद्यस्त्रैविष्टपानां चकितनिजवधूदत्तकण्ठग्रहाणां
 ज्याघोषैः श्रोत्रमार्गं नभसि वधिरयन् वर्षतां पुष्पवृष्टिम् ।
 आकर्णाकृष्टमुक्तैर्निशितशरशतैश्छादयन्दिग्विभागान्
 अद्याहं शत्रुपक्षं निखिलमपि बलादेष संचूर्णयामि ॥ १४ ॥

विदूषकः—एदं किं पल्हादणंदणस्स असंभाविदं । तहवि एसो
 ण राजधम्मो [एतत् किं प्रह्लादनन्दनस्यासंभावितम् । तथाप्येष न राजधर्मः ।]

पवनंजयः—(विहस्य) किं संग्रामो (ने?) नाम राजधर्मः ।

विदूषकः—मा मा तुवरेहि । दाणिं खु एकं दिअहं उहँअ-
वलेहि पँडिसिद्धं जुद्धं । [मा मा त्वरस्व । इदानीं खलु एकं दिवसमुभ-
यवलाभ्यां प्रतिपिद्धं युद्धम् ।]

पवनंजयः—वयस्य, साध्वनुस्मारितोऽस्मि । अहो सावशेषं
जीवितत्वं परचक्रस्य ।

विदूषकः—एवं च सव्वहा ण जुत्तं इदो दाणिं ते गंतुं ।
[एवं च सर्वथा न युक्तम् इत इदानीं तव गन्तुम् ।]

पवनंजयः—यद्येवमिदानीमेव गत्वा वयमनुदित एव दिनकृति
प्रतिनिवर्तामहे ।

विदूषकः—एदं^४ च ण जुत्तं । एआरिसं पडिवक्खं जेटुं गदो
तुमं अपरिणिट्ठिदक्खो णअरिं पविससि त्ति महाराओ पकिदी अ
किं णु खु भणंति । [एतच्च न युक्तम् । एतादृशं प्रतिपक्षं जेतुं गतस्त्व-
मपरिनिष्ठित्कार्यो नगरीं प्रविशसीति महाराजः प्रकृतयश्च किं नु खलु भणन्ति]

पवनंजयः—वयस्य, साधूक्तम् । तेन हि अविदितागर्मनाया अज्ज-
नायाः संजवनमवतरिष्यामः ।

विदूषकः—इह द्विओ सेणावई मुग्गरो किं दाणिं तुभंणअण्णेसदि ।
[इह स्थितः सेनापतिर्मुद्गरः किमिदानी त्वां नान्वेषते ।]

पवनंजयः—तेन हि मुद्गरेण विदिता एव गमिष्यामः ।

विदूषकः—ण खु एदं तस्स भणिदुं जुत्तं । [न खल्वेतत्तस्य भणितुं
युक्तम् ।]

1 None of the Mss. reads न, but the sense requires it.
2 B C अवलेहि. 3 D पदिसिद्ध. 4 0 एवं 5 B अविदितागमनाय अजनाया । 0
अविदिताया अजनायाः ।

पवनंजयः—एवमेतत् । तेन हि केनापि व्याजेन गन्तव्यम् ।
कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

शरावती—आणवेदु कुमारो । [आज्ञापयतु कुमारः ।]

पवनंजयः—शरावति, मद्बचनात्सेनापतिं मुद्रं ब्रूहि । यथा
प्रभाततः प्रभृति चतुरङ्गवलसामग्रीदर्शनानुरोधेन ममेदानीं निद्रामे-
वाभिकाङ्क्षति मनः । तदिदानीमेव सावधानेन सज्जीकर्तव्यानि सांघ्रा-
मिकाणि भवता संविधानकानीति ।

शरावती—जं कुमारो आणवेदि । [यत्कुमार आज्ञापयति ।] (प्रस्थिता)

पवनंजयः—शरावति, एहि तावन् ।

शरावती—(उपसृत्य) आणवेहि । [आज्ञापय ।]

पवनंजयः—यावद्दहमस्मिन्नेव कुमुद्वतीतीरोदेशे दुकूलपटमण्डपे
शयानो रात्रिमतिवाहयामि, त्वमपि सहैव प्रतिहारवर्गेण निपिद्धाशेष-
परिजना प्रवेशद्वारमशून्यं कुरु ।

शरावती—जं कुमारो आणवेदि । [यत्कुमार आज्ञापयति ।]
(निष्क्रान्ता ।)

पवनंजयः—वयस्य, किं परं विलम्ब्यते । (विद्या भावयित्वा) तन्वे-
तदागतं विमानम् । यावदारोहावः ।

विदूषकः—जं वअस्सो आणवेदि । [यद्वयस्य आज्ञापयति ।]

(उभावारुह्य विमानयानं निरूपयत ।)

पवनंजयः—(विमानवेगं निर्वर्ण्य)

ज्योत्स्नान्मसि व्योमपयःपयोधौ धावन्तमत्राशु विमानपोतम् ।

अद्यानुधावन्निव लक्ष्यतेऽसौ प्रालेयरोचिः परिवारपोतः ॥ १५ ॥

1 B C D omit the first क. 2 After this B C D add अ ख
प्रातरेव सग्रामाय सन्नद्धव्यम् ।

विदूषकः—पवणवेगो खु तुमं । [पवनवेगः खलु त्वम् ।]
 (पुरो निर्दिश्य) वअस्स, एसो खु रअदगिरी चंदमा रुअसारिक्खेण
 केवलं सजलजलधराअमाणविणीलाए सेणीवणराईए लक्खिज्जइ ।
 [वयस्य, एष खलु रजतगिरिश्चन्द्रमां रूपसादृश्येन केवलं सजलजलधरा-
 यमाणविनीलया श्रेणीवनराज्या लक्ष्यते ।]

पवनंजयः—

किमु शिशिरांशोर्निपतति रजतगिरेरेव किमु समुत्पतति ।

इति जनयति मम शङ्कामियमधुना कौमुदी विशदा ॥ १६ ॥

विदूषकः—एदे संपत्त म्हे रअदगिरिं । एअं खु इह द्विअं
 विमाणं, जाव ओतारेहि^३ । [एते संग्राहाः सो रजतगिरिम् । एतत्खलु
 इह स्थितं विमानं, यावदवतर ।]

पवनंजयः—यथाह भवान् । (अवतरणं नाटयति ।)

विदूषकः—वअस्स, एसो खु तत्तहोदीए चटुस्सालमज्जे कोमुदी-
 पासादो, जाव एअस्स हम्मत्तले ओदरम्हे । [वयस्य, एष खलु तत्र-
 भवत्याश्रतुःशालमध्ये कौमुदीप्रासादो, यावदस्य हर्म्यतलेऽवतरावः ।]

पवनंजयः—यथाह भवान् ।

(उभावतरत ।)

(तत प्रविशति विरहोत्कण्ठिता^१ अञ्जना, शिशिरोपचारव्यग्रा च वसन्तमाला ।)

अञ्जना—(मदनावस्था नाटयन्ती ज्योत्स्नास्पर्शं निरूप्य) हले^२, ओवा-
 रेहि एअं कोमुइं कअलीदलेण । [सखि, अपवारयैतां कौमुदी कदलीदलेन ।]

वसन्तमाला—(तथा कृत्वा) हुं किं दाणिं एत्थ करिअट्टु । एसा
 दिवा वि जोण्हं कुरसंकिणी मुणालवलअपरिकरिआ वेवदि । चंद-
 विवसंकिणी सणिदप्पणं ण पेक्खइ । मलआणिलसंकिणी कअलीदल-

I D जलधरायमाण २ D चन्द्रिका ३ D ओत्तारेति (हि?) ४ B C Omit
 आह ५ O omits आह, D यदाह. ६ A B C होत्कण्ठिका. ७ B C सखे हले.

मारुअं णिवारेइ । कुसुमाउहसरसअंसंकिणी कुसुमसअणं ण सहइ । चंदणद्ववसंकिणी चंदअंतणिससंदं परिहरइ । [हुं किमिदानीमत्र क्रियताम् । एषा दिवापि ज्योत्स्नाङ्कुरशङ्किनी मृणालवलयपरिष्कृता वेपते । चन्द्रबिम्ब-शङ्किनी मणिदर्पणं न पश्यति । मलयानिलशङ्किनी कदलीदलमारुतं निवारयति । कुसुमायुधशरशतशङ्किनी कुसुमशयनं न सहते । चन्दनद्रवशङ्किनी चन्द्रकान्तनिष्यन्दं परिहरति ।]

(उभात्राकर्णयतः ।)

पवनंजयः—नूनमितो वसन्तमाला व्याहरति ।

विदूषकः—(विलोक्य) ण केवलं वसंतमाला एव, तत्तहोदी वि तुह विरहुकंठिदा इह एव चंदअंतपासाददुवारए वट्टइ । [न केवलं वसन्तमालैव, तत्रभवत्यपि तव विरहोत्कण्ठिता इहैव चन्द्रकान्तप्रासादद्वारे वर्तते ।]

अञ्जना—(वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) अस्मो फुरँइ एअं वामच्छि । [अहो स्फुरत्येतद् वामाक्षि ।]

वसन्तमाला—भट्टिदारिएँ, अविलंविअं भट्टिणं दक्खिसिसि^० । [भर्तृदारिके, अविलम्बितं भर्तारं द्रक्ष्यसि ।]

अञ्जना—(संतापमभिनयन्ती) किंचिरं वा एअं सिसिरोवआर-दुक्खं मए सहिज्जइ । [कियच्चिरं वा एतच्छिशिरोपचारदुक्ख मया सह्यते ।]

पवनंजयः—(श्रुत्वा दृष्ट्वा च, आत्मगतम्) कथमिदानीमवस्थान्तरे वर्तते प्रिया । इयं हि

तन्वी विश्रथनीविर्वाष्पाविललोचना सनिःश्वसिता ।

आस्रस्तकेशपाशा संगम इव वर्तते विरहे ॥ १७ ॥

I C omits सअ. २ B adds वयस्य ३ B चदअचदअवपासासअघरअदुवारए, ० चदअचंदलंदवसासअघरअदुवारए, D चंदअदवासघरअदु^० (chāyā चन्द्रकान्तप्रासादगृहद्वारे) ४ B घुरइ, C घरइ ५ D ०दारिए तेण हि अं. ६ B C D दक्खिसिसि-

अञ्जना—हा अज्जउत्त, कओ मे दंसणसुहं देसि । [हा भार्यपुत्र, कदा मे दर्शनसुखं ददासि ।] (इति मुह्यति)

वसन्तमाला—(ससंभ्रमम्) समाससिहि भट्टिदारिए, समाससिहि । [समाश्वसिहि भट्टिदारिके, समाश्वसिहि ।]

पवनंजयः—(ससंभ्रममुपसृत्य) प्रिये, समाश्वसिहि ।

विदूषकः—(ससंभ्रममुपसृत्य) समाससिहुं तत्तहोदी [समाश्वसितुं तत्रभवती ।]

वसन्तमाला—(ससंभ्रमम्) कहं भट्टा । जैटु भट्टा । [कथं भर्ता, जयतु भर्ता ।]

अञ्जना—(समाश्वस्य दृष्ट्वा च सोच्छ्वासम्) कहं अज्जउत्तो । [कथम् भार्यपुत्रः ।]

(प्रत्युत्थातुमिच्छति ।)

पवनंजयः—

अलमलमतियन्नणया तत्रैव स्वैरमास्यतां तन्वि ।

साक्षात् कटाक्षसाध्ये दासजने कोऽयमुपचारः ॥ १८ ॥

(हस्ते गृहीत्वोपविशति ।)

विदूषकः—सोत्थि होदीए । वअस्ससरिसं पुत्तं लहेसु । [स्वस्ति भवत्यै । वयस्यसदृश पुत्रं लभस्व ।]

अञ्जना—(सविस्मयम्) हंजे वसंतमाले, किं एसो वि सिविणओ आदु परमत्थो । [सखि वसन्तमाले, किम् एषोऽपि स्वप्नो अथवा परमार्थः ।]

I B कहआ, D कहअ. २ B समास्ससि, A C समासासिहि, D समस्ससिहि
The reading in the text is conjectural.

वसन्तमाला—अदिउज्जुए, भट्टिणं चेअ पुच्छ । [अतिरुज्जे
भर्तारमेव पृच्छ ।]

पवनंजयः—

स्वप्नेषु विप्रलब्धा पूर्वं बहुशः समागतेन मया ।

प्रत्यागते मयि पुनर्मुग्धेयं नाद्य विश्वसिति ॥ १९ ॥

भवति वसन्तमाले, केनाप्यनुपलक्षितावावामिहागतौ । तदिदानीं
यथा न कश्चिदपि आगमनं जानीयात् तथैव प्रयतितव्यम् ।

वसन्तमाला—जं भट्टा आणवेदि । अज्जपहसिअ, एहि दुवार-
देसं रक्खिस्सस्सह् । [यद् भर्ता आज्ञापयति । आर्यप्रहसित, एहि द्वारदेशं
रक्षामः ।]

विदूषकः— जं होदी भणादि । [यन्नवती भणति ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

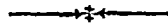
पवनंजयः—(अञ्जनां निर्वर्ण्य)

मृणालालंकृता सान्द्रचन्दनद्रवचर्चिता ।

सेयमापाण्डुवदना मन्ये ज्योत्स्नाधिदेवता ॥ २० ॥

प्रिये किमिदानीमपि विरहशमनपरिग्रहायासेन । तद्यावदिदमेव
संनिहितमणिचन्द्रकान्तवासगृहं प्रविशावः । (हस्ते गृहीत्वा) प्रिये, इत
इतः । (निष्क्रान्तौ ।)

इति श्रीहस्तिमलेन विरचितेऽञ्जनापवनंजयनामनाटके
तृतीयोऽङ्कः ।



चतुर्थोऽङ्कः ।

(तत प्रविशति वसन्तमाला ।)

वसन्तमाला—(सहर्षम्) इह जादु आगदस्स चत्तारो मासो^१ भट्टिणो । दाणिं च भट्टिदारिआए दोहलं विअ वट्टइ । तस्सां हि णीलुप्पलदलमेचआइ होन्ति थणचूचुआइ, फलिणीफलपण्डुराइ होन्ति कपोलाइ, अंजणलेहा विअ णीला परिप्फुडा होदि उअरे रोमराई । ता एअं सोहणं उत्तंतं भट्टिणीए केदुमदीए विण्णवेमि । (परिक्रम्य, पुरो विलोक्य) का उण एसा इदो अभिवट्टइ । कहं, भट्टिणीए केदुमदीए अणुअरिआ जुत्तिमदी । [(सहर्षम्) इह जात्वागतस्य चत्वारो मासा भर्तुः । इदानी च भर्तृदारिकाया दोहदमिव वर्तते । तस्या हि नीलोत्पलदलमेचके भवतः स्तनचूचुके, फलिनीफलपाण्डुरौ भवतः कपोलौ^४, अंजनलेखेर्व नीला परिस्फुटा भवत्युदरे रोमराजिः । तस्मादेतं शोभन वृत्तान्तं भट्टिन्याः केतुमत्या विज्ञापयामि । (परिक्रम्य, पुरो विलोक्य) का पुनरेषा इतोऽभिवर्तते । कथं, भट्टिन्या केतुमत्या अनुचरिका युक्तिमती ।]

(तत प्रविशति युक्तिमती ।)

युक्तिमती—आणत्त म्हि भट्टिणीए केदुमदीए । अस्सत्था विअ वहू अंजणेत्ति सुदं । तं जाव तं कुशलं पुच्छिअ आअच्छ त्ति । ता जाव सामिणीए अंजणाए चटुस्सालं गच्छेमि । (परिक्रामति) [आज्ञासाऽस्मि भट्टिन्या केतुमत्या । अस्वस्थेव वधूरज्जनेति श्रुतम् । तद्यावत्तां कुशलं पृष्ट्वागच्छेति । तस्माद्यावत्स्वामिन्या अज्ञनायाश्चतुश्शाल गच्छामि । (परिक्रामति ।)]

वसन्तमाला—एसा खु पिअसही जुत्तिमदी किं वि कजंतर-क्खित्तहिअआ विअ मं अणवेक्खिअ गच्छइ । जाव इमाए पिट्टदो

1 D इय आदु. 2 Thus A B D, it should be मासा. 3 D तिस्ता.
4 D पांडुरे कपोले. 5 D अजनरेखेव.

णिहुदं गदुअ अच्छिणी पिहाअ ओहसिस्सं । [एषा खलु प्रियसखी युक्तिमती किमपि कार्यान्तराक्षिप्तहृदयेव मामनवेक्ष्य गच्छति । यावदस्याः पृष्ठतो निभृतं गत्वाऽक्षिणी पिधायापहसिष्यामि ।] (तथा करोति ।)

युक्तिमती—(विभाव्य, सस्मितम्) का णाम अण्णा मए एवं विस्संभीकरोदि । णं पिअसहि वसन्तमाले, जाणिदा खु सि । [का नामान्या मयि एवं विस्संभीकरोति । ननु प्रियसखि वसन्तमाले, ज्ञाता खल्वसि ।]

वसन्तमाला—(मुक्तहस्ता, सहासम्) सहि, जुत्तिमदी खु तुमं । सहि, कहिं दाणिं पँडिदासि । [सखि, युक्तिमती खलु त्वम् । सखि, कुत्रे-दानीं प्रस्थितासि ।]

युक्तिमती—सहि, किञ्चि अस्सत्था द्दाणिं अंजणेत्ति भट्टिणीए केदुमदीए आणाए कुसलं पुच्छिदुं गच्छेमि । [सखि, किञ्चिदस्वस्थे-दानीमञ्जनेति भट्टिन्याः केतुमत्या आज्ञया कुशलं प्रष्टु गच्छामि ।]

वसन्तमाला—मुद्धे, ण खु सा अस्सत्था, दोहलअं खु तं । [मुग्धे, न खलु सा अस्वस्था, दोहदं खलु तत् ।]

युक्तिमती—हला, किं उम्मत्ता सि । [सखि, किम् उन्मत्तासि ।]

वसन्तमाला—सहि, सुणाहि दाव । एकदा खु णिसीहे इह पह-सिअदुइओ भट्टा आअदुअ गओ । [सखि, शृणु तावत् । एकदा खलु निशीथे इह प्रहसितद्वितीयो भर्ता आगत्य गतः ।]

युक्तिमती—सहि, कहं अम्हेहिं ण जाणिदं । [सखि, कथमस्मा-भिर्न ज्ञातम् ।]

वसन्तमाला—सहि, सो खु अपरिणिट्ठिदसंगरो णअरं पविट्ठो म्हि त्ति वीरजणोइदाए विलक्खदाए अप्पआसाअमणो रत्तिं अदि-वाहिअ पच्चसे चेअ गदो । [सखि, स खलु अपरिनिष्ठितसंगरो नगरं प्रवि-ष्टोऽस्तीति वीरजनोचित्तया विलक्षतया अप्रकाशागमनो रात्रिमतिवाह्य प्रत्यूष एव गतः ।]

युक्तिमती—सहि, जुज्जइ । तुमं दाव कहिं पत्थिदा । [सखि, युज्यते । त्वं तावत् कुत्र प्रस्थिता ।]

वसन्तमाला—एअं सोहणं वुत्तंतं भट्टिणीए विण्णेविटुं । [एतं शोभनं वृत्तान्तं भट्टिन्यै विज्ञापयितुम् ।]

युक्तिमती—सहि, जुत्तं चेअ भट्टिणीए विण्णविटुं । तहवि किंवि पज्जाउलं विअ मे हिअअं । [सखि, युक्तमेव भट्टिन्यै विज्ञापयितुम् । तथापि किमपि प्रत्याकुलमिव मे हृदयम् ।]

वसन्तमाला—किं ति । [किमिति ।]

युक्तिमती—जाणादि एव्व भट्टिणी केदुमदी सामिणीए अंजणाए अप्पडिसं चारित्तं । तहवि विसेसदो इत्थिआसु आहिजाइपरिवालणे एकंतसावहाणा भट्टिणी । ता एदं वुत्तंतं सुणिअ किं पडिवज्जदि त्ति । [जानालेव भट्टिनी केतुमती स्वामिन्या अज्जनाया अप्रतिभं चारित्रम् । तथापि विशेषतः स्त्रीषु आभिजात्यपरिपालने एकान्तसावधाना भट्टिनी । तस्मादेतं वृत्तान्तं श्रुत्वा किं प्रतिपद्यत इति ।]

वसन्तमाला—सहि, किं दाणिं मुधा संतप्पिअदि । चदुरेहि मासेहि परिसमापिअजुद्धो आअमिस्सामि त्ति खु तदा भट्टा गओ । तदो गदा चेअ चत्तारो मासा । ता सुवो वा परसुवो वा सअं चेअ भट्टा एत्थ आअच्छइ । [सखि, किमिदानीं मुधा सन्तप्यते । चतुर्भिर्मालैः परिसमापितयुद्ध आगमिष्यामीति खलु तदा भर्ता गतः । ततो गता एव चत्वारो मासाः । तस्माच्छो वा परश्वो वा स्वयमेव भर्ता अन्नागच्छति ।]

युक्तिमती—तं पि पडिहदं विअ । [तदपि प्रतिहतमिव ।]

I Thus A B D, it should be rather विण्णविटुं or विण्णवेदु. After विण्णेविटु A adds तह वि किंवि पज्जाउलं विअ मे हिअअ as forming part of वसन्तमाला's speech. २ A drops the whole of this speech of युक्तिमती.

वसन्तमाला—कहं विअ । [कथमिव ।]

युक्तिमती—ण खु एण्हिं दाव् णिरगलं वच्छेण वरुणस्स माण-
भंगो कादव्वो । जह खरदूसणादीणं मोअणं अप्पडिहदं भविस्सदि,
तह एव्व विज्जावलेण जुज्झे वट्ठिदव्वं ति सेणावइणो मुग्गरस्स महा-
राएण पच्चहं लेहो पहिअदि । एवं चिराइस्सदि विअ कुमारो ।
[न खलु इदानीं तावन्निरगलं वत्सेन वरुणस्य मानभङ्गः कर्तव्यः । यथा
खरदूषणादीनां मोचनमप्रतिहतं भविष्यति तथैव विद्यावलेन युद्धे वर्तितव्य-
मिति सेनापतेर्मुद्गरस्य महाराजेन प्रत्यहं लेखः प्रेष्यते । एवं चिरायिष्यते इव
कुमारः ।]

वसन्तमाला—तह वि किं चंदलेहा वि गरलं उगिरइ, चंदण-
लआ वा अगिं । ता अलं दाणिं भट्ठिणिं केदुमदिं अण्णहा संकिअ ।
[तथापि किं चन्द्रलेखाऽपि गरलमुद्गिरति, चन्दनलता वाऽग्निम् । तस्मादल-
मिदानीं भट्टिनीं केतुमतीमन्यथा शङ्कित्वा ।]

युक्तिमती—तेण हि गच्छतु होदी । अहं वि सामिणीए अंज-
णाए संजाददोहलरमणिज्जं रूवं दक्खिअ अच्छीणं फलं अणुहविस्सं ।
[तेन हि गच्छतु भवती । अहमपि स्वामिन्या अञ्जनायाः संजातदोहदरम-
णीयं रूपं दृष्ट्वा अक्षणोः फलमनुभविष्यामि ।]

वसन्तमाला^१—सहि, तथा । [सखि, तथा ।] (निष्क्रान्ता ।)

युक्तिमती—(परिक्रामन्ती, आकाशे लक्ष्यं वच्चा) भट्टिणि केदुमदि,
जाणामि एव दे वहुगअं असाहारणं पेम्मभरं, चारित्तं, सच्चपालणं
च । तहवि अत्तणो कादरदाए विण्णवेमि केवलं, परपरिवादसंकिणी
मा दाव अप्पणो दक्खिण्णस्स अणुइदं अणुचिट्ठेहि । [भट्टिनि केतु-
मति, जानाम्येव ते वधूगतमसाधारणं प्रेमभरं, चारित्रं, सत्यपालनं च ।

1 A drops this speech of वसन्तमाला and puts the words का-
विअ in the mouth of युक्तिमती. 2 A पहिस्सदि. 3 D om. वसन्तमाला.

तथाप्यात्मनो कातरतया विज्ञापयामि केवलं, परपरिवादशङ्किनी मा तावदात्मनः । दाक्षिण्यस्यानुचितमनुतिष्ठ ।]

(नेपथ्ये)

भवति युक्तिमति ।

युक्तिमती—(आकर्ष्य) को णु खु मं सहावेदि । (पृष्ठतो विलोक्य) कर्हं कंचुकी लद्धहूदी । [को नु खलु मां शब्दापयति । (पृष्ठतो विलोक्य) कथ कञ्चुकी लब्धभूतिः ।]

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—भवति युक्तिमति ।

युक्तिमती—(उपसृत्य) अज्ज, कीस मं सहावेसि । [आर्य, कस्मान्मां शब्दापयसि ।]

कञ्चुकी—अलमिदानीं भवत्यास्तत्र गमनेन । यावद् देव्या एव पार्श्वपरिवर्तिनी भव ।

युक्तिमती—(सगद्गम्) अज्ज, भट्टिणीए आणाए सामिणि अंजणं एसु दिअहेसु किंचि किर अस्सट्ठं कुसलं पुच्छिदुं अहं पत्थिदा । [आर्य, भट्टिन्या आज्ञया स्वामिनीमञ्जनामेषु दिवसेषु किंचित् किलास्त्रस्थां कुशलं प्रष्टुमह प्रस्थिता ।]

कञ्चुकी—स्वयमेव खलु देवी त्वामाह्वयति ।

युक्तिमती—(सविषादम् आत्मगतम्) हुं, जह मए चित्तिदं तह एव संवुत्तं । (प्रकाशम्) अज्ज, जइ एवं, भट्टिणीए पासं गमिस्सं । [हु, यथा मया चिन्तितं तथैव संवृत्तम् । (प्रकाशम्) आर्य, यद्येव, भट्टिन्या पार्श्वं गमिष्यामि ।] (निष्क्रान्ता ।)

कञ्चुकी—(परिक्रामन्) हन्त भोः ।

निरवद्यं चारित्रं ज्ञात्वाऽपि निजामिजात्यपरवत्यः ।

विभ्यति खलु कुलवनिताः परिवादलवाद्दपि प्रायः ॥ १ ॥

यावदिदानीं शाखानगरमेवं गच्छामि । (परिक्रम्यात्मानं निर्वर्ण्य च)

गिरमविशदां कृच्छ्राद् बद्ध्वा व्रजन्नपहास्यतां

कुक्कविवदहो भूयो भूयः स्वलामि पदे पदे ।

अवहितमना एव न्यस्यन् पदानि मृदून्यहं

परिणतिमपि प्राप्य प्रौढां कवेः समतां गतः ॥ २ ॥

अथवा

प्रतिनवसहकारोद्भिद्यमानप्रवाल-

प्रणयिनि सुकुमारेणाग्रहस्तेन बाला ।

किमु रचयति पर्णं कर्णमूले विशीर्णं

परिणतिरपि जाता कुत्रचिद्गर्हणीया ॥ ३ ॥

(पुरो विलोक्य) इदं गोपुरम् । यावदनेन निष्क्रम्य शाखानगरं प्रवि-

शामि । (परिक्रम्य) प्रविष्टोऽस्मि शाखानगरम् । (पुरो विलोक्य)

एष हि विद्याधरभैरवस्य क्रूरस्य चेतो हिन्तालकः प्रतीतविकसितोत्प-

लपूलबन्धनसनाथाग्रहस्तः सत्त्वरमितो धावति । तद्यावदेनमाह्व-

यामि । रे रे हिन्तालकं ।

(प्रविश्य पटाक्षेपेण यथानिर्दिष्टश्वेत)

चेतः—(दृष्ट्वा) क्वं अज्जलद्धहृदी शशं आअदुअ मं शदावेदि ।

(उपसृत्य) भट्टालअ, एशे अहगे णमइशामि । (प्रणमति ।) [कथमार्थ-

लब्धभूतिः स्वयमागत्य मां शब्दापयति । (उपसृत्य) भट्टारक, एषोऽहं नम-

स्यामि । (प्रणमति ।)]

1 B omits एव. 2 D गिरमशुभा. 3 D इदं पुरगोपुरम्. 4 Thus A B D, it should be प्रत्यग्रं. 5 D हिताल.

कञ्चुकी—हिन्ताल, मद्रचनात् क्रूरमिहैवाह्वय ।

चेटः—भट्टालअ, ण खु एशे अवशले तशश तुम्हालिशेहिं संजप्पिंदुं । [भट्टारक, न खल्वेषो अवसरस्तस्य युष्माद्देशैः संजल्पितुम् ।]

कञ्चुकी—किमिति ।

चेटः—(हस्तेन निर्दिश्य) भट्टालअ, एशे खु शुधाशूदिविंशलिशा-
पाणअकवालशणाहवामगहत्थए घग्घलिआघग्घलणिग्घोशमुह्ल-
चलणजुअले डमलुअतालणलोलदाहिणकले खंधुदेशशमप्पिअतिशूल-
दंडए लत्तचंदणतिलअशोहिअणिडालपट्टए जवाकुशुमलोहिअभीशण-
लोअणे विअ वट्टइ भेलवे विज्जाहलभेलवे । अह अ

एशे शामी कूले^५ पाऊण शुलं शुदुल्लहं शुलहिं ।

णच्चइ गायइ घुम्मइ पक्खलइ अकालणे हशइ ॥ ४ ॥

[भट्टारक, एष खलु सुधासूतिविम्बसदृशापानककपालसनाथवामाग्रहस्तो, घर्घरिकाघर्घरनिर्घोषमुखरचरणयुगलो, डमस्कताडनलोलदक्षिणकरः, स्कन्धो-
देशसमर्पितत्रिशूलदण्डो, रक्तचन्दनतिलकशोभितललाटपट्टो, जपाकुसुमलो-
हितभीषणलोचन इव वर्तते भैरवो विद्याधरभैरवः । अथ च

एष स्वामी क्रूर. पीत्वा सुरां सुदुर्लभा सुरभिम् ।

नृत्यति गायति घूर्णति^७ प्रस्खलति अकारणे हसति ॥]

कञ्चुकी—(विलोक्य) कथमुद्धृतो मदोन्मोहः^८ । तथा हि

किमप्यन्तश्चिन्तानमितवदनस्तिष्ठति मुहु-

मुहूर्तं यत्किञ्चित्किल मृगयमाणो विहरति ।

अकस्माद्विस्मेरो विहसति मिथस्ताडितकरः

करीव क्षीवोऽयं त्यजति मदिराशीकरकणान् ॥ ५ ॥

1 B भट्टालआ, D generally भट्टालआ, and in a few cases स for श.
2 D संजल्पितुं. 3 A °पाणिअ° 4 A घुग्घुलिआघुग्घुल°, D घग्घलवाघग्घुल्लणिग्घोश.
5 A B कूले 6 D chāyā निटाल for ललाट 7 The chāyā in A D निद्रायते.
8 Thus A and B. It should be मदोन्मादः.

(सत्रीभत्सम्) कष्टमुद्वेजनीया खलु परपिण्डगृध्रता, यन्मयाऽपि तावदेतादृशैरपि निकृष्टचेष्टितैः सह संभाष्यते । भो हिन्तालक, किमत्र क्रियताम् ।

चेटः—भट्टालअ, जाव इमरश मदावशाणं ताव तुम्हेहि एत्थ जिण्णुज्जाणे पडिवालेद्वं । [भट्टारकं, यावदस्य मदावसानं तावद् युष्माभिरत्र जीर्णोद्याने प्रतिपालयितव्यम् ।]

कञ्चुकी—तथा कुर्मः । (निष्क्रान्त ।)

(तत प्रविशति यथानिर्दिष्टो विद्याधरभैरव क्रूर ।)

क्रूरः—(मदं नाटयन्, सबहुमानम्)

अवि जशश णामहेयं शुलाशुला निशमिऊण वेवंति ।

एशे शे खु कूले^४ विज्जाहलभेलवे अहके ॥ ६ ॥

अह य

मंतेण व जंतेण व तंतेण व णत्थि दुक्कलं णाम ।

मह एत्तियम्मि लोए के अण्णे मालिशे पुलिशे ॥ ७ ॥

[अपि यस्य नामधेय सुरासुरा निशम्य वेपन्ते ।

एष स खलु क्रूरो विद्याधरभैरवोऽहम् ।

अथ च

मन्नेण वा यन्नेण वा तन्नेण वा नास्ति दुक्करं नाम ।

मम एतावति लोके कोऽन्यो माद्वजः पुमान् ॥]

चेटः—(उपसृत्य) शामिअ^५ एशे अहके पणवेमि । [स्वामिन्नेवोऽहं प्रणमामि ।]

क्रूरः—पियशिशशा, जावज्जीवं मं शुशशूरोहि । [प्रियाशिष्य, यावज्जीव मां शुश्रूषस्व ।]

I B D ईदृशैः. २ D wavers between जुण्णुज्जाणे and जिण्णुज्जाणे . ३ D भर्तारक. ४ D कूले. ५ B शामिआ.

चेटः—एशे दाशे अणुगहिदे । एदाइ णवुउप्पलाइ । [एष दासोऽनु-
गृहीतः । एतानि नवोत्पलानि ।]

क्रूरः—अले हिंतालअं, एत्तिअं वेलं किंति तुमे विलंबिअं ।
[अरे हिन्तालक, एतावती वेलां किमिति स्वया विलम्बितम् ।]

चेटः—शामिअ, अय्ये खु लद्धहूदी जिण्णुज्जाणएँ दाणिं तुमं
पडिवालेन्ते चिट्ठइ । तं खु दड्ढूण चिलाइदं । [स्वामिन्, आर्यः खलु
लब्धभूतिर्जोषोद्यान इदानी त्वां प्रतिपालयस्तिष्ठति । तं खलु दृष्ट्वा चिरायि-
तम् ।]

क्रूरः—किं ति एण्हि तुण्हिक्के चिट्ठशि । वाशेहि दाव उप्पलेहिं
कुंभाशवं^४ । [किमितीदानो तूष्णीकस्तिष्ठसि । वासय तावदुत्पलैः कुम्भा-
सवम् ।]

चेटः—(हास्यं निरुन्धन, आत्मगतम्) शु क्हाणं जाणिदे मए
अवशले । (प्रकाशम्) जं शामी आणवेदि । [सुष्ठु कथानां ज्ञातो मया-
ऽवसरः । (प्रकाशम्) यत् स्वाभ्याज्ञापयति ।] (यथोक्तमनुतिष्ठति ।)

क्रूरः—अले हिंतालअं, एहि दाव ।

उल्लाशंते तिशूलअं णच्चंते अ जहाशमीहिअं ।

गाअंते महुलं धुवं^६ विहिए विहलेमि शंपदं ॥ ८ ॥

[अरे हिन्तालक, एहि तावत् ।

उल्लासयंस्त्रिशूलकं नृत्यंश्च यथासमीहितम् ।

गायन् मधुरां ध्रुवां विद्यां विहरामि सांप्रतम् ॥]

(परिक्रामत ।)

क्रूरः—(सहर्षं गायति ।)

1 D एणाइ 2 D हिंतालअ 3 D जुण्णुज्जाणए. 4 D कुम्भाशव. 5 D हले
त्तितालअ. 6 A वीहिए 7 The rendering of विहिए by विद्या is obscure.
It should be विधिना or वीथ्या. The chāyā in D is वीथ्या.

शुहं पिबंतए शाहुपशण्णअं पए पए खलंते अ विशंथुलं ।
 महाणुभावए णिन्भलमत्तए शदा विजेदु विज्जाहलभेलवे ॥ ९ ॥
 अह अ

शलशं णिहिदुप्पलअं शुलअं पिविरुण मए वि घडंतशुभे ।
 विहलेमि चलेमि खलेमि अले अहके कुलुले कुलुले कुलुले ॥ १० ॥
 (स्खलन्)

अले कहां चलेदि पुढवी ।

(सहासम्)

होदि विइअं खु एदं सं वलिअं मद्भलेण णिन्भलिअं
 अशमत्था धालेदुं शच्चं खु वशुंधला चलइ ॥ ११ ॥

अले हिंतालअ, आवज्जेहि एत्थ आपाणअचशअम्मि कुंभएण
 वालुणिं । अहव तेण एव कुंभएण आअलं पिबिदशं । (तथा कृत्वा)
 अले शविशेशं खु शुलशा एसा शुला । (मद नाटयन्) कहां मं विणा
 एक्कं महापुलिशं शाम्णमाणुशं शुलोएदि वलाए लोए । ता पडि-
 बोहिदशं दाव ।

शुणुथ शुणुथ शबे शब्रहा शज्जणा ए
 मह चिअ चलणाणं शाहु शुदशूशएह ।
 पिबिअ पिबिअ हालं खेलखेलं खलंते
 विहलइ चलअंते जे शलीलं शलीलं ॥ १२ ॥

[सुखं पिबन् साधुप्रसन्नां पदे पदे स्वलंश्च विसंस्थुलम् ।

महानुभावो निर्भरमत्तः सदा विजयतु विद्याधरभैरवः ॥

अथ च ।

सरसां निहितोत्पलां सुरां पीत्वा मदेऽपि घटमानशुभे ।

विहरामि चलामि खलामि अरे अह क्रूरः क्रूरः क्रूरः ॥

(स्वलन्)

अरे कथं चलति पृथ्वी ।

(सहासम्)

भवति विदितं खल्वेतन्मां बलवन्मदभरेण निर्भरितम् ।
असमर्था धारयितुं^१ सत्यं खलु वसुन्धरा चलति ॥

अरे हिन्तालक, आवर्जयात्र पानचषके कुम्भेन वारुणीम् । अथवा तेनैव कुम्भेन आगलं पास्यामि । (तथा कृत्वा) अरे सविशेषं खलु सुरसा एषा सुरा । (मदं नाटयन्) कथं मां विना एकं महापुरुषं सामान्यमानुषं श्लोकते^२ वराको लोकः । तस्मात् प्रतिबोधयिष्यामि तावत् ।

शृणुत शृणुत सर्वे सर्वथा सज्जना ये
ममैव चरणयोः साधु शुश्रूषध्वम् ।
पीत्वा पीत्वा हालां खेलखेलं स्वलन्
चिहरति चलयन् यः शरीरं सलीलम् ॥

चेटः—(निर्वर्ण्य) कहां अदिभूमि आलूढे शामिणो मदभले ।

तह हि

गंडूशिअ शंपदं शुलं मुहु णिट्ठीवइ शीहलच्छडं ।

विज्जाहलभेलेवे शअं शशलीले शअले^४ पिहं पिहं ॥ १३ ॥

[कथमतिभूमिमारूढः स्वामिनो मदभरः । तथा हि ।

गण्डूषयित्वा सांप्रत सुरां, मुहुर्निष्ठीवति शीर्तलच्छटाम् ।

विद्याधरभैरवः स्वयं स्वशरीरे^६ सकले पृथक् पृथक् ॥]

क्रूरः—(परितोऽवलोक्य) अले कहां पलिदो वि पलावेदि शुला-
शमुहए । [अरे कथं परितोऽपि पलायते सुरासमुद्रः ।]

चेटः—कहां शुलामअभावदाए शवदो इमरश शुलाशमुहए पडि-
हाअइ । [कथं सुरामयभावतया सर्वतोऽस्य सुरासमुद्र प्रतिभाति ।]

1 D धर्तु. 2 D perhaps श्लोकयति. 3 D अहभूमि. 4 A omits शअले, B शअलि (= शअलि). 5 D शीकरच्छटाम्. 6 The chāyā in A reads स्वशरीराः which makes no sense, D सशरीरां सकला पृ०. 7 B D विलोक्य.

क्रूरः—(वीचीसंपातं नाटयति) कंहं उव्वेलआ एदे तलंगआ । अले
हिंतालअं, एहि तलिश्शम्ह । (तरणं नाटयन्)

शमुच्चलंते लहलीशदेहिं शुलाशमुदे शहश म्हि मग्गे ।

अले अले किं अहके कलिश्शं कंहं तलिश्शं अहवा पिबिश्शं ॥१४॥
(श्रमं नाटयन्) अले बलिअं खु दाणि अहके पलिश्शंते । ता एदं
पलिश्शं इमिणा संतजवेण शमइश्शं ।

शुंडा शुला पशन्ना कल्ला काअंबली महु शीहू ।

मइला मज्जं महुला मेलेई वालुणी हाला ॥ १५ ॥

(पुन. पुन. पठति ।) [कथमुद्वेला इमे तरङ्गाः । अरे हिन्तालक, एहि तरि-
ष्यावः । (तरणं नाटयन्)

समुच्चलति लहरीशतैः सुरासमुद्रे सहसाऽस्मि मग्नः ।

अरे अरे किमहं करष्यामि कथं तरिष्याम्यथवा पास्यामि ॥

(श्रमं नाटयन्) अरे बलवत् खल्विदानीमहं परिश्रान्तः । तस्मादेनं परिश्रम-
मनेन मन्त्रजपेन शमयिष्यामि ।

शुण्डा सुरा प्रसन्ना कल्या कादम्बरी मधुः शीधुः ।

मदिरा मद्यं मधुरा मैरेयी वारुणी हाला ॥

(पुन पुन. पठति ।)]

चेटः—कंहं पलिश्शंते दाणिं शामी । [कथं परिश्रान्त इदानीं
स्वामी ।]

क्रूरः—अले कुत्थं एण्हिं विश्शमिश्शं । [अरे कुत्रेदानीं विश्रमि-
ष्यामि ।]

चेटः—(आत्मगतम्) पलिश्शंते विअ शामिणो मदे । ता विण्ण-
विश्शं दाव । (प्रकाशम्) शामिआ, अज्जे खु लद्धहूदी जिण्णुज्जाणम्मि

1 D हले हितालआ. 2 A कहश्श, B कहिश्श (= कथयिष्यामि), D कहिळिळिश्शं.
3 The chāyā in A D तरिष्यावहे. 4 The chāyā in A वारयिष्यामि. 5 B D
कथ, the usual form is कहि. 6 A B विण्णमिश्श 7 D अय्ये खु.

को पाओ शमिणं पडिवालेदि । [परिश्रान्त इव स्वामिनो मदः । तस्माद् विज्ञापयिष्यामि तावत् । (प्रकाशम्) स्वामिन्, आर्यः खलु लब्धभूतिर्जीर्णो-
द्याने कः कालः स्वामिन प्रतिपालयति ।]

क्रूरः—अले हिंतालअ, किं ति खु एत्तिअं वेलं तुम्हे^१ ण भणिअं ।
[अरे हिन्तालक, किमिति खल्वेतावतीं वेलं त्वया न भणितम् ।]

चेटः—शामिआ, भणिदं खु मए पुव्वं । शामिणा मदभलपल-
वशेण ण आअण्णिदं । [स्वामिन्, भणितं खलु मया पूर्वम् । स्वामिना मद-
भरपरवशेन नाकर्णितम् ।]

क्रूरः—हुं, मे पमादे । जाव तहिं गमिइशाओ । [हु, मे प्रमादः ।
यावत् तत्र गमिष्यामिः ।]

चेटः—इदो इदो । [इत् इतः ।] (परिक्रामत ।)

चेटः—शामिआ, एअं खु जिण्णुज्जाणं । [स्वामिन्नेतत् खलु जीर्णो-
द्यानम् ।]

(उभौ प्रविशत ।)

चेटः—(अङ्गुल्या निर्दिश्य) शामिआ, एशे खु अज्जलद्धहूदी तुह
आअमणं पडिवालेदि । [स्वामिन्नेष खलु आर्यलब्धभूतिस्तवागमन प्रति-
पालयति ।]

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—चिरायते भैरवः । (दृष्ट्वा) कथमासन्न एव नृशंसः ।
य एषः

आगच्छति वपुर्विभ्रदतिमात्रभयानकम् ।

क्रूरो मूर्तिमतीवासौ वृत्तिरारभटी स्वयम् ॥ १६ ॥

क्रूरः—(उपसृत्य) किं अज्ज, मए कैज्जं । [किम् आर्य, मया कार्यम् ।]

कञ्चुकी—(सशङ्कं चेदं पश्यति ।)

क्रूरः—किं लाअलहृशं । [किं राजरहस्यम् ।]

कञ्चुकी—अथ किम् ।

क्रूरः—हिंताला, तुमं इमश जिण्णुजाणश बाहिले मं पडि-
वालेहि । [हिन्तालक, त्वमस्य जीर्णोद्यानस्य बहिर्भां प्रतिपालय ।]

चेटः—जं शामी आणवेदि । [यत् स्वाम्याज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्तः ।)

क्रूरः—विशद्वं दाणिं भणादु अज्जे । [विस्रब्धमिदानीं भणत्वार्यः ।]

कञ्चुकी—देवी केतुमती त्वामाज्ञापयति ।

क्रूरः—चिलश खु कालश देवीए केदुमदीए शुमलिदो म्हि^३ ।
[चिरस्य खलु कालस्य देव्या केतुमत्या स्मृतोऽस्मि ।]

कञ्चुकी—(सविषादम्) आः कष्टम् । मयापि तावदिदं संदिश्यते ।

क्रूरः—जं वा तं वा होदु । अणुल्लंघणिज्जा खु शामिणीशंदेशा ।
[यद्वा तद्वा भवतु । अनुल्लङ्घनीयाः खलु स्वामिनीसंदेशाः ।]

कञ्चुकी—(सबाष्पं कर्णे) एवमिव ।

क्रूरः—(सविषादं कर्णौ पिधाय) अहह का गई । [आः का गतिः ।]

(निष्क्रान्तं क्रूर ।)

कञ्चुकी—ऋथममुष्यापि नाम प्रकृतिनिष्ठुरस्य दुःश्रवमेतत् संवृ-
त्तम् । किम् इदानीमत्र स्थीयते । निष्क्रान्तश्च दुरात्मा क्रूरः । तद्या-
वन्नगरीमेव प्रविशामि । (परिक्रामन्) दिष्ट्या मोचितोऽस्मि दुर्वृत्त-
जनसंपर्कात् ।

इदं तावच्चिन्त्यं सपदि सुकृतादप्यसुकृतं

परं प्रेयः प्रायो भवति निखिलस्यापि जगतः ।

1 B विशत्य. 2 D अय्यो. 3 A B म्ह. 4 The chāyā in A स्वामिनी-
संदेशा. 5 D इति नि°.

भवत्वेवं तावत्तदिदमविवेकास्पदधिया—

मतत्त्वश्रद्धानव्यसनपरवत्ताविलसितम् ॥ १७ ॥

किं बहुना

भो भो दुश्चरितप्रसक्तमनसः शृण्वन्तु सर्वे जनाः

किं युष्माभिरयं वृथैव सुमहान् कालो जडैर्नीयते ।

तद्यावद् विनिवृत्य पाकविरसादहाय दुश्चेष्टिता—

द्वर्तव्यं पुरुषार्थसाधनपथे^१ जैनेश्वरे साधने ॥ १८ ॥

(परिक्रामति ।)

(आकाशे) हा हा हदा मंदभाआ । किं एअं पि मए दक्खिअदि । सवाओ देवआओ, सरणं खु तुम्हे । ममं पिअसहीए भट्टा पवणंजअ, रक्ख दे पदिणिं^२ । हा अज्ज पहसिअ, दक्ख दे पिअसहपदिणिं । हा महालाअ पडिसूर, रक्ख रक्ख एआरिसिं भाइणेइं । हा महालाअ महिंद, एअं पि तुह दुहिआं अणुहवेदि । हा कुमार अरिंदम, हा पसण्णकित्तिं, पेच्छह तुम्हाणं लालणिज्जं एवंभूअं कणीयासि भइणीअं । [हा हा हताऽस्मि मन्दभागा । किम् एतदपि मया दृश्यते । सर्वा देवताः, शरणं खलु यूयम् । मम प्रियसख्या भर्तः पवनंजय, रक्ष ते पत्नीम् । हा आर्य प्रहसित, पश्य ते प्रियसखपत्नीम् । हा महाराज प्रतिसूर्य, रक्ष रक्ष एतादृशीं भागिनेयीम् । हा महाराज महेन्द्र, एतदपि तव दुहिता अनुभवति । हा कुमार अरिन्दम, हा प्रसन्नकीर्तं, पश्यतं युवयोर्लालनीयाम् एवंभूतां कनीयसीं भगिनीम् ।]

1 Thus ABD. The form वर्तव्यम् makes no sense, unless it is taken to stand for वर्तितव्यम्. 2 B पते, D पदे 3 Thus A and B, we should have म्हि after हदा (हद म्हि). 4 D मह for मम. 5 D पणशणि. 6 B धूआ. 7 A B D किते°

कञ्चुकी—(श्रुत्वा, सविषादं कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम् । कष्टं भोः
कष्टम् । एष हि तपस्विन्या वसन्तमालाया आर्तविलापः । फलित-
मेव क्रूरहतकस्य क्रौर्येण । तदितो वयम् । (परिक्रामन्) अये परि-
णतम् अहः । तथा हि

एकपद् एव संप्रति हतविधिना चक्रवाकमिथुनमिदम् ।

किमपि विवशं विघटितं परस्परप्रेमगुणबद्धम् ॥ १९ ॥

(निष्क्रान्त ।)

इति श्रीहस्तिमल्लेन विरचिते^१ अञ्जनापवनंजयनामनाटके
चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः ।

पञ्चमोऽङ्कः ।

(तत प्रविशति सेनापति ।)

सेनापतिः—अहो नु खलु भोः पवनंजयस्य पराक्रमशालिता ।

सर्वत्राप्यनिवार्यशौर्यमहतः प्रायो वयं केवलं

प्राप्ता यस्य परिच्छेदेषु गणनामात्रेण संभावनम् ।

उद्दामारभटीभटो^२ निजभुजः संग्रामरङ्गाङ्गणे

साहाय्यं तु पुनः करोत्यसिलतालास्योपदेशोत्सुकः ॥ १ ॥

ह्यस्तु तावत् कुमारो निजयशोराशिशुभ्राभ्यां दन्तपरिघाभ्याम्
उभयतःप्रक्षरद्विशदनिर्झरासारमिवाञ्जनाचलं, पुञ्जीभूतमिव निःशेषं
मदभरं गन्धगजवरम्, अतिमात्रलोहिततया कोपाग्निमिव नयनद्व-
येनोद्गिरन्तं, मदामोदलुब्धैरपि भीतभीतैर्दूरत एव मधुव्रतैः परिहृतम्,
अविरलविगलन्मदजलासारदुर्दिनं कालमेघमारुह्य खरदूपणादिमोच-
नाय कृतसंगरः संगराङ्गणमवतीर्णः । ततश्च सरभसविघटमानमद-

१ D विहचितमजनापवनजय नाम नाटकं चतुर्थोऽध्यायः ॥ * ॥ ४ ॥ * ..
२ D om. this. ३ B D नदो.

गजघटाबन्धानि चकितहस्तस्रस्तशस्त्रवीरपुरुषाणि लघुपलायनमनो-
निश्च्रयानि संभ्रान्तसारथिपरिवर्तितरथकद्यानि, क्षणादिव दुर्विभे-
द्यानि^१ निर्भरं मिन्दता व्यूहसहस्राणि, राजीवप्रमुखेष्वपि वरुणनन्द-
नेषु संत्रासविस्मृतयुद्धव्यतिकरेषु यत्र कापि द्रुतविद्रुतेषु, स्वयमपि
गन्धसिन्धुरमधितिष्ठन्नभियुक्तः कुमारेण वरुणः ।

अत्रान्तरे स्वयमुदाहृतसाधुकारै-

निष्पातिता सुरवरैरपि पुष्पवृष्टिः ।

विद्याधरैर्विरचिताञ्जलिभिः समन्ता-

दुद्धोषितो जयजयेति जयोत्सवोऽ^४पि ॥ २ ॥

अनन्तरं च पराक्रमावर्जितमना मुहूर्तमिव स्तिमितं^६ स्थित्वा
निषिद्धयुद्धं कुमारमाभाषत वरुणः । यथा

कुमार प्रीताः स्मस्तव सुबहुभिर्विक्रमरसै-

रमीभिर्विस्मेरास्त्यज समरसंरम्भमधुना ।

किमन्यैरालापैरिह ननु जिता एव भवता

वयं, तत्सौहार्दं भवतु दृढमद्य प्रभृति नः ॥ ३ ॥

अपि च ।

यैरन्योन्यमनेन वापि समरव्याजेन संपादिता

दिक्ष्या प्रेमरसार्द्रवद्धृदया भैत्री कुमारेण नः ।

शंसन्तः प्रमदेन कीर्तिविभवं रक्षोवरेभ्यस्तव

स्वैरं ते खरदूषणप्रभृतयो गच्छन्तु लङ्कापुरीम् ॥ ४ ॥

1 A °निश्च्रयानि, B °मनोश्च्रियानि; D पलायमानाश्च्रियानि 2 A D °कह्यानि;
sense obscure 3 D दुर्विभेदानि. 4 B जयोत्सवो ज (= जयोत्सवश्च). 5 B
D पराक्रमरसावर्जितमना. 6 A स्तिमितस्थितौ निषिद्ध कुमारमभाषत वरुणः।
7 A °विस्मेरस्त्यज

इति । एवं च समाकर्ण्य कुमारः सौहार्दसंशब्देन परित्यक्तसमर-
संरम्भो वरुणमभाषत । यथा

तत्त्वेनानवगाह्य हन्त भवतो निर्व्याजरम्यान् गुणान्
यन्मुग्धाः खलु केवलं वयमितः पूर्वं वृथा वञ्चिताः ।
तद्विस्त्रम्भसुखान्ममाद्य सुदिनं संवृत्तमित्थं चिरात्
क्षन्तव्योऽयमतिक्रमश्च समरव्यापारसंघर्षजः ॥ ५ ॥

किं च ।

वैराय कल्पते युद्धमिति नैकान्तिकं वचः ।

यत्संजातमनेनैव सौहार्दमिदमावयोः ॥ ६ ॥

इति । इत्थं च परस्परप्रणयरसावर्जितमनसोः पवनंजयवरुणयो-
र्बलवती समजायत मैत्री । प्रेषिताश्च मया ह्य एव, 'निर्वृत्तो विज-
योत्सवः, श्व एव चागन्तव्यः कुमारः' इति महाराजाय निवेदितुं^१
लेखहस्ता दूताः । अद्य पुनर्वरुणः सहैव राजीवप्रमुखेण पुत्रशतेन
स्वयमेवात्रागत्य पश्चिमार्षवसंभूतान्यनर्घाणि रत्नान्युपायनीकृत्य यथो-
चितसुखसंलापप्रसंगेन मुहूर्तमिव स्थित्वा कुमारमापृच्छ्य गतः ।
खरदूषणप्रभृतयश्च निशाचरवराः समुचितसत्कारपुरस्सरं लङ्कापुरीं
प्रविसर्जिताः कुमारेण । आज्ञप्तं च कुमारेण विजयार्धमेव गन्तुं
सज्जीकर्तव्यमिति । अनुष्ठिता च मया कुमारस्याज्ञा । संप्रति हि

वेलोपान्तवनानि सस्पृहममून्यापृच्छ्य संप्रेक्षितै-

नेत्रैकान्तविलोभनानि सुलभैस्तैस्तैर्विशेषैः सदा ।

आरोहन्ति वियोगखेदमखिलं संहर्तुकामा इमे

कान्तासंगमसत्त्वरेण मनसा यानानि विद्याधराः ॥ ७ ॥

1 Thus A B; the correct form should be निवेदयितुम् 2 D
स्वयमेवागत्य

सदिदानीं वयमपि कर्तव्यशेषं निर्वर्तयिष्यामः । (निष्क्रान्तः ।)

शुद्धविष्कम्भ ।

(तत प्रविशति पवनंजयो विदूषकश्च ।)

पवनंजयः—संपादिता दृढतरा वरुणेन मैत्री

मुक्ता निशाचरवराः खरदूषणाद्याः ।

संधारितो दशमुखस्य च मानभङ्ग-

स्तातस्य चेयमधुना विहिता मयाज्ञा ॥ ८ ॥

तदिदानीमञ्जनामेव द्रष्टुमुत्कण्ठते मनः । रथस्तावत् ।

(प्रविश्य रथेन)

सूतः—विजयतामायुष्मान् ।

पवनंजयः—सूत, रथमुपश्लेषय ।

सूतः—यथाज्ञापयत्यायुष्मान् । (यथोक्तमनुतिष्ठति ।)

पवनंजयः—वयस्य, एहि तावत् । आरोहामः ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । [यद् भवानाज्ञापयति ।]

(उभावारोहतः ।)

पवनंजयः—सूत, गगनमार्गेण चोदयाश्वान् ।

सूतः—यथाज्ञापयत्यायुष्मान् । (तथा कृत्वा) आयुष्मन्, आरूढ
एव मेघपदवी स्यन्दनः । अत्र हि ।

अधितिष्ठता रथमिमं गगनाङ्गणमध्यवर्तिनं भवता ।

साक्षात् सहस्ररश्मेरारूढा सांप्रतं पदवी ॥ ९ ॥

पवनंजयः—सूत, तूर्णं चोदयाश्वान् ।

1 A सदारितः. (standing perhaps for संवारितः. ?) 2 D यदा
शाप°. 3 B D आरोहावः. 4 A B आयुष्मान्. 5 D om. एव.

सूतः—यथा आयुष्मान् आह । (तथा कृत्वा, रथवेगं निरूप्य)
आयुष्मन्, पश्य ।

मूर्च्छन्नस्य रथस्य सांप्रतमसौ वेगानिलोऽपि स्वयं
हुंकारं कुरुते रथानुसरणक्लेशाभिषङ्गादिव ।
स्तब्धेयं मणिकिङ्किणीकरचना किञ्चिन्न शब्दायते
निष्पन्दप्रसृतोऽप्ययं ध्वजपटो धत्ते वितानश्रियम् ॥ १० ॥

अपि च ।

पार्श्ववर्तिभिरच्छिन्नं दृश्यमानो रथो जवी ।
दृश्यते गगनाम्भोधेः सेतुबन्ध इवायतः ॥ ११ ॥

पवनंजयः—(निर्वर्ण्य)

मनोरथः पूर्वमसौ रथाच्च मनोरथात्पूर्वमसौ रथश्च ।
अन्योन्यसंघर्षविवृद्धवेगौ प्रधावतो द्वावपि नूनमेतौ ॥ १२ ॥

सूतः—आयुष्मन्, अदूरं एव लक्ष्यते विद्याधरलोकः ।

पवनंजयः—(दृष्ट्वा)

किं धावत्येष रथः स्वयमभिधावति^१ किमेष विजयार्धः ।
इति निर्णेतुमिदानीं नयने न कुतोऽपि जानीतः ॥ १३ ॥

अये प्राप्ता एव विजयार्धम् ।

विदूषकः—मां मा एवं । ण दे विजयडुंपत्ती । [मा मा एवम् ।
न ते विजयार्धप्राप्तिः ।]

पवनंजयः—(स्वगतम्) हन्त सान्तरायेवास्य वचसा विजयार्ध-
प्राप्तिः ।

विदूषकः—संपुण्णो खु तुए विजओ पत्तो । [संपूर्णः खलु त्वया विजयः प्राप्तः ।]

सूतः—(पुरो निर्दिश्य) आयुष्मन् एषा विजयार्धदक्षिणश्रेणि-
वनराजिः । इदं च प्रच्छायसंतानवृक्षसनाथं राजतशिखरम् ।

पवनंजयः—सूत, इहैव रथमवस्थापय यावद् विलम्बितमपि
बलं प्रतिपालयामः ।

सूतः—यथा आयुष्मान् आह । (यथोक्तमनुतिष्ठति ।)

पवनंजयः—वयस्य, यावदवतरावः ।

विदूषकः—जं भवं भणादि । [यज्ञवान् भणति ।]

(उभावतरतः ।)

विदूषकः—(अग्रतो निर्दिश्य) भो वअस्स, एसा खु जुक्तिमदी
अंतंबंसिअजणसहिआ तुसं पच्चागमेदुं इदो अभिवट्टइ । [भो वयस्य,
एषा खलु युक्तिमती अन्तर्वंशिकजनसहिता त्वां प्रत्यागन्तुमितोऽभिवर्तते ।]

(तत प्रविशति यथानिर्दिष्टा युक्तिमती ।)

युक्तिमती—आणत्त म्हि भट्टिणीए केदुमदीए पच्चागमणमंगलं
करेहि कुमारस्स त्ति । (पुरो विलोक्य) एसो आअदो कुमारो ।
जाव उवसप्पिअ जहोइदं अणुचिट्ठेमि । (उपसृत्य, तथा कुर्वती) जेट्टु
कुमारो । [आज्ञप्तास्मि भट्टिन्या केतुमत्या प्रत्यागमनमङ्गलं कुरु कुमारस्येति ।
(पुरो विलोक्य) एष आगतः कुमारः । यावदुपसृत्य यथोचितमनुतिष्ठामि ।
(उपसृत्य, तथा कुर्वती) जयतु कुमारः ।]

पवनंजयः—अथे युंक्तिमति, अपि कुशली तातः सहाम्बया ।

युक्तिमती—एवं, कुसली । वड्ढेइं महाराओ तुह विजएण ।
[एव, कुशली । वर्धते महाराजस्तव विजयेन ।]

विदूषकः—होदि, किंति बम्हणो ण पणमिअदि । [भवति, किमिति ब्राह्मणो न प्रणम्यते ।]

युक्तिमती—(सस्मितम्) अलं दाणिं इमिणा अलीअसंलावेण^१ । [अलमिदानीमनेन अलीकसंलापेन ।]

विदूषकः—होदि, कुदो मं उवालहेसि । [भवति कुतो मामुपालभसे ।]

युक्तिमती—अज्ज, कोमुदीपासादं आअदेण वि तुमे ण खु अहं सुमरिदा । [आर्य, कौमुदीप्रासादम् आगतेनापि त्वया न खल्वहं स्मृता ।]

विदूषकः—(सहासम्) वअस्स, दासौए दुहिआं वसन्तमाला अवरद्धा खु रहस्सभेदेण । [वयस्य, दास्या दुहिता वसन्तमाला अपराद्धा खलु रहस्यभेदेन ।]

पवनंजयः—(सस्मितम्) युक्तिमति, अलमिदानीं वयस्यव्याजे-
नास्मानुपालभ्य । न खलु स तावदस्सदागमनं प्रकाशयितुं समयः ।

युक्तिमती—अज्ज, तेण हि वंदामि । [आर्य, तेन हि वन्दे ।]

विदूषकः—सत्थि । [स्वस्ति ।]

सूतः—भवति, न केवलं युष्माकमेव कुमारस्यागमनमविदितम्^५ ।
अस्माकमपि तावदितः पूर्वं न विज्ञातम् ।

पवनंजयः—(सस्मितम्) युक्तिमति, कच्चित् कुशलिनी ते
प्रियसखी वसन्तमाला ।

युक्तिमती—(सविषादम् आत्मगतम्) हुं किं दाणिं भणामि मन्द-
भाआ । होदु । एवं दाव । (प्रकाशम्) एवं, कुशलिणी पिअसही
वसन्तमाला सह एव सामिणीए अंजणाए । [हुं किमिदानीं भणामि
मन्दभागा । भवतु । एवं तावद् । (प्रकाशम्) एवं, कुशलिनी प्रियसखी
वसन्तमाला सहैव स्वामिन्या अञ्जनया ।]

१ A °संलावेण (=°संलापेन) २ B D दूआ [=धूआ]. ३ D अञ्ज.
४ D सोत्थि. ५ A विदितम्. ६ A विज्ञातम्.

विदूषकः—(सस्मितम्) होदि, साहु ओर्गाहिअं तुए अत्तहोदो
हिअअं । [भवति साध्ववगाहितं त्वया अत्रभवतो हृदयम् ।]

युक्तिमती—अत्थि अण्णं विण्णविद्वं । [अस्त्यन्यद् विज्ञपयितव्यम् ।]

पवनंजयः—किमिव ।

युक्तिमती—सामिणी खु अंजणा अंतवदिणी भविअ वसंत-
मालाए सह महिंदउरं गआ । [स्वामिनी खल्वज्जना अन्तर्वती भूत्वा
वसन्तमालया सह महेन्द्रपुरं गता ।]

विदूषकः—(सपरितोषम्) भो दिट्ठिआ वड्डुसि । [भो दिष्ट्या वर्धसे ।]^३

पवनंजयः—युक्तिमति, गृह्यतां पारितोषिकम् ।

(खहस्तात् कटकमादाय यच्छति ।)

युक्तिमती—(आदाय) अणुगगहिद म्हि । [अनुगृहीतासि ।]

पवनंजयः—तेन हि वयं प्रियया सहैवागत्य तातमम्बां च
द्रक्ष्यामः ।

युक्तिमती—(आत्मगतम्) हुं किं दाणिं मए कदं । (प्रकाशम्)
कुमार, इद आअदुअ महाराअं भट्टिणि च अददुण तुह गमणं
अजुत्तं मे पडिभाअइ । [हुं किमिदानीं मया कृतम् । (प्रकाशम्) कुमार,
इत आगत्य महाराजं भट्टिनीं चादृष्ट्वा तव गमनमयुक्तं मे प्रतिभाति ।]

सूतः—युक्तमुक्तं युक्तिमत्या ।

पवनंजयः—आगतमेव मां विद्धि । न खलु मुहूर्तमपि
विलम्बिष्ये । तद् यावदिदानीमेवागच्छति पवनंजय इति तातमम्बां
च विज्ञापय ।

I A B D ओवाहिअ, cf. p 17, Act I ३ D After विदूषक's speech सूत
आयुष्मन् दिष्ट्या वर्धसे । पव 1. ३ D प्रतिभासते.

युक्तिमती—जं कुमारो आणवेदि । (सविषादम् आत्मगतम्) हुं
किं णु खु एअं परिणमिस्सदि । [यत् कुमार आज्ञापयति । (सविषादम्
आत्मगतम्) हुं किं नु खल्वेतत् परिणमिष्यति ।]

(इति निष्क्रान्ता ।)

पवनंजयः—सूत, त्वमप्यत्र स्थित्वा मद्वचनात् सेनापति मुद्गरं
ब्रूहि । यावदहं महेन्द्रपुरं गत्वा प्रियया सहैवागत्य तातमम्बां च
पश्यामि । भवतां पुनरत्रैव सकलेन सह प्रतिपालितव्यम् ।

सूतः—आयुष्मन्, क इदानीम् आनुयात्रिकाः ।

पवनंजयः—ननु सहैवागच्छति वयस्यः । एष हि
कार्येषु तावत्सकलेषु मन्त्री मित्रं परं नर्मसु तेषु तेषु ।

खड्गद्वितीयश्च भुजो रणेषु दुःसाधमेतेन न किञ्चिदस्ति ॥ १४ ॥

सूतः—तेन हि गम्यताम् । (रथेन सह निष्क्रान्त ।)

पवनंजयः—(पार्श्वतो विलोक्य) अये अयमागतः कालमेघः ।
यावदिममेवारुह्य गच्छामः । (आरोहणं नाटयित्वा) वयस्य, एहि
तावद् आरोह ।

विदूषकः—वअस्स, ण खु अहं सक्कुणोमि । एसो खु महाजवणो ।
[वयस्य, न खल्वहं शक्नोमि । एष खलु महाजवनः ।]

पवनंजयः—काममस्तु, मा भैषीः ।

विदूषकः—तह होदु । [तथा भवतु ।]

1 D परिणमदि, the chāyā परिणमिष्यति. 2 Thus A B, the correct form would be परिणस्यति. 3 A B भवताशु 4 Thus A B D; the correct form would be प्रतिपालयितव्यम्. 5 D पार्श्वतोऽवलोक्य. 6 B adds एव after आगतः. 7 A B D इदमेव. 8 A महाराजवणो (chāyā महाराजवनः); B महाजवणाइ.

पवनंजयः—

मदाम्बुवर्षीं गगनं विगाह्य प्रचोद्यमानः पवनेन वेगात् ।

गजो घनश्यामलमूर्तिरेष सत्यं सखे संप्रति कालमेघः ॥ १५ ॥

(पुरो विलोक्य) वयस्य, नातिदूरे पूर्वसागरस्य लक्ष्यते नाभिगिरिः ।

य एषः

क्षरन्मदाम्भःसृतिनिर्झरान्मुहुश्चलैः सपक्षानिव कर्णपल्लवैः ।

विभर्ति दन्ती वनगन्धदन्तिनो नितम्बभागे तनयानिवात्मनः ॥ १६ ॥

विदूषकः— भो वअस्स, णिवारेहि गअराअं । [भो वयस्य, निवारय गजराजम् ।]

पवनंजयः—(गजेन्द्रमवस्थाप्य) वयस्य, किमिति ।

विदूषकः—तुह विजाबलेण ठिरासणो वि अहं बलिअं खु परिस्संतो इमस्स जवेण । ता इह एव हिट्ठमिं भूधरवाटवीहीए एसा सरोवणसरसी दीसइ, जाव इमाए तीरुद्देसे मुहुत्तअं विस्समिअ गच्छामो । [तव विद्याबलेन स्थिरासनोऽप्यहं बलवत् खलु परिश्रान्तोऽस्य जवेन । तस्मादिहैवाधो भूधरवाटवीथ्याम् एषा सरोवणसरसी दृश्यते, यावदस्यास्तीरोद्देशे सुहूर्तं विश्रम्य गच्छावः ।]

पवनंजयः—यत्ते रोचते । (गजमवतारयन्)

ये दुर्विभावाः प्रथमं पदार्था दूरे लघीयांस इव प्रतीताः ।

सतां स्वभावा इव ते समेत्य दृष्टा महीयांस इमे भवन्ति ॥ १७ ॥

विदूषकः—इअं सरसी । [इयं सरसी ।]

पवनंजयः—यावदवतरांसः ।

(अवतरणं नाटयत ।)

पवनंजयः—अहो कालमेघ, विश्रमार्थमवगाह्यतामियं सरसी ।

1 D गजमहेन्द्रमं 2 D हेट्ठमि 3 B भूधरवाटविहीए, D corrupt, the chāyā in A भूधरवाटवीथ्या 4 B D अवतराव .

विदूषकः—भो पेक्ख, तुह वअणादो ओगाहइ सरं वि हत्थी ।
[भोः पश्य, तव वचनादवगाहते सरोऽपि हस्ती ।]

पवनंजयः—वयस्य पश्य ।

करोन्मुक्तैस्तोयैः करटतटकण्डूरपनयन्
मृणालीकाण्डानि प्रसभमयमुन्मूल्य रसयन् ।
तरन्नुत्क्षिप्तास्यः करिमकरलीलामनुभवन्
निमज्जन्नुन्मज्जन्निह सरसि कामं विहरति ॥ १८ ॥

विदूषकः—भो वअस्स, सल्लईरुक्खस्स तले उवविसम्ह । [भो
चयस्य, सल्लकीवृक्षस्य तल उपविशामः ।]

पवनंजयः—यथाह भवान् । (उपविशत. ।)

विदूषकः—किं^३ णु खु अंजणा अंतव्वदिणी भविअ महिन्दउरं गद
त्ति भणंती किं वि^४ सुण्णहिअआ विअ जुत्तिमदी जादा । ता ण
एत्तिअं एदं । [किं नु खल्वञ्जना अन्तर्वत्नी भूत्वा महेन्द्रपुरं गतेति भणन्ती
किमपि शून्यहृदयेव युक्तिमती जाता । तस्मान्नैतावदेतत् ।]

1 A B D ओवाहइ, cf. supra page 73 2 Thus A and B; it
should be सरसि. 3 B D read the whole passage as follows:—

विदूषकः—(सविचारम् आत्मगतम्) किं णु खु अजणा अतव्वदिणी भविअ महिद-
उर गद त्ति भणती सुण्णहिअआ विअ जुत्तिमदी जादा । ता महंत खु एअ अपाअट्टाणं ।

पवनंजय—वयस्य किमपि चिन्ताकुल इव दृश्यसे (D दृश्यते) ।

विदूषक—णु किञ्चि ।

पवनंजय—किं ममापि प्रच्छाद्यते ।

विदूषकः—वअस्स सणेहो खु पाव संकइ ।

पवनंजय—कथमिव ।

विदूषक—सामिणी अजणा अतव्वदिणी भविअ महिदउर गद त्ति भणंती किंपि
सुण्णहिअआ विअ जुत्तिमदी जादा । ता ण एत्तिअ एदं ।

पवनंजय—वयस्य मयापि चिन्तितमिदम् । अथ च etc
4 D omit किं वि.

पवनंजयः—वयस्य, मयापि चिन्तितमिदम् । अथ च
आभिजात्यपरिपालने रताः सर्वतोऽपि परिवादभीरवः ।

संगृहीतपतिदेवताव्रताः श्लाघनीयचरिताः कुलाङ्गनाः ॥ १९ ॥

विशेषतस्तावदत्राप्यम्बा ।

विदूषकः—एवं एदं । अण्णं च । जइ दाव महिंदउरे तत्तहोदी
वट्टइ तदो एत्तिअस्स कालस्स विजादा अंजणं त्ति अम्हाणं ण खु ण
आअच्छइ वाचिअं । ता एत्थ महिंदउरे ण वट्टइ त्ति तक्केमि ।
[एवमेतत् । अन्यच्च । यदि तावन्महेन्द्रपुरे तत्रभवती वर्तते, तत् एतावतः
कालस्य विजाता अङ्गनेत्यस्माकं न खलु नागच्छति वाचिकम् । तस्मादत्र
महेन्द्रपुरे न वर्तत इति तर्क्यामि ।]

पवनंजयः—युज्यत एतत् । (विचिन्त्य) यदि तावदङ्गना महेन्द्रपुरं
प्रति न गता, कथं तर्हि न युक्तिमती महेन्द्रपुरगमनोत्सुकान्निवारये-
दस्मान् ।

विदूषकः—अत्थि एदं । तह्वि जइ महिंदउरे वट्टइ तदो एत्ति-
अस्स कालस्स विजादा अंजणं त्ति अम्हाणं आअच्छइ वाचिअं ति
सो दोसो तदवत्थो एव । [अस्त्येतत् । तथापि यदि महेन्द्रपुरे वर्तते तत्
एतावतः कालस्य विजाता अङ्गनेति अस्माकमागच्छति वाचिकमिति स दोष-
स्तदवस्थ एव ।]

पवनंजयः—सेयमुभयतःपाशा रज्जुः ।

विदूषकः—कुदो खु दाव एदं परमत्थदो उवलहम्म । [कुत
खलु तावदेतत् परमार्थत उपलभावहे^३ ।]

1 A अजणे त्ति. 2 A B D read न But the sense points to the
necessity of its omission 3 The chāyā in A उपलक्ष्याम (=उपलक्षयाम.)

(तत प्रविशति प्रियासहितो वनचर ।)

वनचरः—ले ले लवलिए, शोहणं खु वणवाशशोक्खं ।
एत्थं हि

घलआ सेलगुहाओ भक्खाइ कलीलकंदमूलाइ ।
वणभूमीसु विहाले आहाले वेणुतण्डुलआ ॥ २० ॥

[रे रे लवलिके शोभनं खलु वनवाससौख्यम् । अत्र हि
गृहाणि शैलगुहा भक्ष्याणि करीरकन्दमूलानि ।
वनभूमीषु विहार आहारो वेणुतण्डुलकाः ॥]

लवलिका—अले चमूलअं, शुट्टु भणिअं । तह हि
णवकिसलआइ वशणं^५ सुलही कथूलिआ अ आलेवे ।
कक्कोले मुहवासे हाला गअकुंभमोत्ताओ ॥ २१ ॥

अवि अ

ओदंसिअसिहिबहिणा ताले कण्णेशुं दंतपत्ताइ ।
कवलीभलंमि चर्मलीवालाइ भलंति शवलीओ ॥ २२ ॥

अले चमूलअं, बलिअं वणविहालेण पलिइंशंत म्हि । [अरे चमूरक
सुष्ठु भणितम् । तथा हि

नवकिसलयानि वसनं सुरभिः कस्तूरिका च आलेपः ।
कक्कोलो मुखवासो हारा गजकुम्भमुक्ताः ॥

अपि च

1 D सोहण 2 B D यत्थ हि. The ohāyā in A D यत्र हि. 3 B तिणु-
तण्डुलआ 4 B D चमूलआ. 5 A B वसण, the Mss write व even in Māga-
dhī If all the Mss agree स is retained, otherwise श is written
in these Māgadhi passages. 6 A B कण्णेषु 7 A B चमूली°. 8 A पळिस्संत
म्हि; B पळिस्संत म्ह, D पळिस्सत म्हि

अवतंसितशिखिवर्हास्तालः कर्णेषु दन्तपत्राणि ।

कवरीभरे चमरीवालानि विश्रति शबर्यः ॥

अरे चमूरक, बलवद्वनविहारेण परिश्रान्ताऽस्मि ।]

चमूरकः—तेण हि एहि दाव । शलोवलतीले शलईशंडए
विश्रमिइशम्ह । [तेन हि एहि तावत् । सरोवरतीरे सलकीषण्डे
विश्रमिप्यावः ।]

(परिक्रामत ।)

विदूषकः—(दृष्ट्वा) हे वअस्स, एसो खु एको वणअरो सह-
चरीएँ सह इदो आअच्छइ । [हे वयस्य, एष खल्वेको वनचर. सहचर्या सह
इहागच्छति ।]

पवनंजयः—(दृष्ट्वा) महाभागः खल्वेतादृशो जनः । कुतः ।

अननुभूतवियोगकथामपि प्रियतमां प्रणयादुपलालयन् ।

भवति यः परिपूर्णमनोरथो युवजनः सुकृती स हि कामिनाम् २३

चमूरकः—(विलोक्य) कहं इह शलईतले दुवे पुलिशा
अच्छंति । एशे अ पएशे ण शामणमाणुशेहि पवेशिटुं शके । ता
एशे शवर्हा खेअरजणे । ता जाव उवशप्पिअ पणमेम्ह । [कथमिह
सलकीतले द्वौ पुरुषावासाते । एष च प्रदेशो न सामान्यमनुष्यैः प्रवेष्टुं
शक्यः । तस्मादेव सर्वथा खेचरजन । तस्माद् यावदुपसृप्य प्रणमिष्यावः]

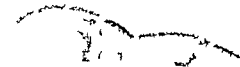
लवलिका—जं चमूलओ भणादि । [यच्चमूरको भणति ।]

(उभावुपसृप्य प्रणमत ।)

पवनंजयः—इहैव विश्रम्यताम् ।

चमूरकः—जं शामी आणवेदि । [यत् स्वाम्याज्ञापयति ।]

1 The châyā in A वर्हान् 2 D सहचरीए 3 D शव्वह 4 The châyā
in A सामान्यजनैः . 5 Thus the châyā in A D The correct form would
be प्रणस्याव . पणमेम्ह in the original Prākṛit should be rendered
by प्रणमाव .



(उपविशतः ।)

लवलिका—(स्मृति नाटयित्वा) अले चमूलआ, एअं उद्देशं दद्वूण शुमलाविद म्हि । तइआ एत्थ एव खु शलईतले दिट्ठाओ दुवे अपुवाओ इत्थिआओ । [अरे चमूरक, एतमुद्देशं दद्व्वा स्मारितास्मि । तदा अत्रैव खलु सल्लकीतले दृष्टे द्वे अपूर्वे स्त्रियौ ।]

चमूरकः—अले शुट्टु शुमलिदं । [अरे सुष्ठु स्मृतम् ।]

विदूषकः—भदे, क्कहं दिट्ठाओ एत्थ इत्थिआओ, कीरिसीओ वा ताओ । [भद्रे, कथं दृष्टे अत्र स्त्रियौ, कीदृश्यौ वा ते ।]

लवलिका—अज्जं, महंतं खु तं शोअणिज्जं च अवय्यं^१ । [आर्य, महत् खलु तच्छोचनीय चावद्यम् ।]

पवनंजयः—भद्रमुख, कथ्यतां तावत् ।

चमूरकः—शुणादु शामी । [शृणोतु स्वामी ।]

पवनंजयः—अवहितोऽस्मि ।

चमूरकः—कदाइ खु णिशामुहे एत्थ एव अहके इमाए शह आअंदे । [कदाचित् खलु निशामुखे अत्रैवाहमनया सहागतः ।]

पवनंजयः—ततस्ततः ।

चमूरकः—तदो अ एक्केण भेलववेशेण पुलिशेण अहिद्विअं अब्भंतलशंठिअइत्थिआजुअलं णहादो ओदिण्णं^४ याणं । [ततश्चैकेन भैरववेशेण पुरुषेणाधिष्ठितम् अभ्यन्तरसंस्थितस्त्रीयुगलं नभसोऽवतीर्णं यानम् ।]

पवनंजयः—ततस्ततः ।

चमूरकः—तदो अ खणं अदिक्कमिअ तेण वि पुलिशेण, 'इदो एहि इत्थिए, किं दाणिं एत्थ कज्जं, गच्छम्ह जाव तुह जम्मभूमि' त्ति पुणो वि तं णिब्बंघिज्जमाणा अवला इत्थिआ 'ण खु दाव एआ-

पञ्चमोऽङ्कः

लिशी¹ तादं अंबं च दक्खिउं पालेमि' त्ति शवाहं भणंती एत्थं शंलई-
तले ठिआ । [ततश्च क्षणमतिक्रम्य तेनापि पुरुषेण 'इत् एहिं खि, कथमिदा-
नीमत्र कार्यं, गच्छामो यावत्तव जन्मभूमिः' इति पुनरपि तं निर्बध्यमाना अपरा
स्त्री, 'न खलु तावदेतादृशी तातमम्बां च द्रष्टुं पारयामि' इति सबाष्पं भणन्ती
अत्र सल्लकीतले स्थिता ।]

पवनंजयः—(आत्मगतम्) कथमिदानीमापतिष्यति ।

विदूषकः—(आत्मगतम्) णूणं तह एव परिणिट्ठिअं । [नूनं तथैव
परिनिष्ठितम् ।]

चमूरकः—तदो शा किं बहुणा ण खु इमादो वणादो णिग्ग-
च्छामि त्ति वअणं दाऊण तुण्हिका ठिआ । तदो अ अवलाए
इत्थिआए 'शहि, तुमं एवं अंतवदिणी, कहं दाणिं वणंमि अच्छिउं
अज्जवस्ससि, मुंचेहि इमं दुप्पडिणं, जाव महिदंउरं गच्छम्ह'त्ति
भणिअं । शा वअणं अशुण्णंती लोइदुं पउत्ता । [ततः सा किं बहुना
न खल्वस्माद्द्वान्निर्गच्छामीति वचनं दत्त्वा तूष्णीका स्थिता । ततश्च अपरया
स्त्रिया 'सखि त्वमेवमन्तर्वली, कथमिदानीं वने स्थातुमध्यवस्यसि, मुञ्चेमां
दुष्प्रतिज्ञां, यावन्महेन्द्रपुरं गच्छाव' इति भणितम् । सा वचनमशृण्वती रोदितुं
प्रवृत्ता ।]

पवनंजयः—कष्टं भोः कष्टम् । अज्जनैव संवृत्ता । पवनंजयमर्तैः-
परं श्रोष्यति ।

विदूषकः—(स्वगतम्) कहं तत्तहोदी एव संवुत्ता । [कथं तत्र-
भवत्येव संवृत्ता ।]

चमूरकः—तदो अ तेण वि पुलिसेण 'होदि, शामिणीए केदु-
मदीए आणाए जम्मभूमिं पावेदुं तुमं गण्हिअ आअदे, कहं दाणिं
तुमं मग्गमज्जे वणगहणे पलित्तजिअ गच्छामि' त्ति भणिअं । तदो

1 A B एआरिसी, D एआळिशी. 2 A शे आ, B D शे अ 3 D पव । आत्म ।
4 D मित पर श्रोष्यसि ।

ताए वि 'किं दाणिं बहुजप्पिंदेणं, जन्मभूमिं चैअ मए शा पाविअ त्ति तुह शामिणीए भणाहि, अम्हे पुणं जह कहां पि शअणशआशं गमि-
रसम्ह' त्ति भणिअं । [ततश्च तेनापि पुरुषेण 'भवति, स्वामिन्याः केतुमत्या
आज्ञया जन्मभूमिं प्रापयितुं त्वां गृहीत्वा आगतः, कथमिदानीं त्वां मार्गमध्ये
वनगहने परित्यज्य गच्छामि' इति भणितम् । ततस्तथापि 'किमिदानीं बहु-
जल्पितेन, जन्मभूमिमेव सा मया प्रापितेति तव स्वामिन्यै भण, आवां पुनर्यथा
कथमपि स्वजनसकाशं गमिष्यावः' इति भणितम् ।]

पवनंजयः—ततस्ततः ।

चमूरकः—तदो अं तेण वि 'का गई । तुमं वि खु एक्का मम
शामिणी । ता तुह वि आणा ण मए उल्लंघिअवा । अण्णं अ । एव्व-
मेअ तुह जन्मभूमिं पावेदुं अहके वि णिग्घणे ण पालेमि । ता
शबहां तुम्हेहिं शअणशआशे ओशप्पिदवे । खंतवे अ मए पल-
णिओअपलवंतेण कए ण मे अदिकमे' त्ति भणिअ 'शबाओ देवदाओ
लक्खह एअं पअत्तेण' त्ति मंतिअ णहं उप्पडिअं । [ततश्च तेनापि 'का
गतिः । त्वमपि खल्वेका मम स्वामिनी । तस्मात्तवाप्याज्ञा न मयोल्लङ्घितव्या ।
अन्यच्च । एवमेव तव जन्मभूमिं प्रापयितुम् अहमपि निर्धृणो न पारयामि ।
तस्मात् सर्वथा युवाभ्यां स्वजनसकाशं उपसर्पितव्यः । क्षन्तव्यश्च मया पर-
नियोगपरवर्ता कृतो न मे अतिक्रम इति भणित्वा 'सर्वा देवता रक्षत एतां
प्रयत्नेन' इति मन्त्रयित्वा नभ उत्पतितम् ।]

पवनंजयः—(सविषादम्) ततः ।

चमूरकः—तदो अ इमादो भूधरवाडवीहिदो इमं चैअ पाअ-
शत्तशअशंकिण्णं माअंगमालिणिं णाम वणगहणं एशा पाअपदणल्लंभं-
तीए शह शहीए पविट्ठा । [ततश्च इतो भूधरवाटवीथित इदमेव पार्क-

1 D जप्पिएण 2 D उणो 3 obscure, D पाअपडण लं. 4 The word
पाअ in the original Prākṛit could be better rendered [by पाप
(dangerous, ferocious).

सत्त्वशतसंकीर्णं मातङ्गमालिनी नाम वनगहनम् एषा पादपतनलम्बमानया सह सख्या प्रविष्टा ।]

पवनंजयः—(साक्रोशम्) प्रिये,^२ केदानीं वर्तसे । (मुह्यति ।)^३

विदूषकः—(सवाष्पम्) तत्तहोदि, णिड्डुरा खु सि संवुत्ता ।

[तत्रभवति, निष्ठुरा खल्वसि संवृत्ता ।]

चमूरको लवलिका च—अज्जं, के शे । [आर्यं, कः सः ।]

विदूषकः—एसो खु तिस्से भट्टा । [एष खलु तस्या भर्ता ।]

उभौ—हद्धि । [हा धिक् ।]

विदूषकः—समस्ससिहि वअस्स, समस्ससिहि । [समाश्वसिहि वयस्य, समाश्वसिहि ।]

पवनंजयः—(समाश्वस्य)

यो मासैरविलम्बितं त्रिचतुरैः प्रत्यागतं विद्धि मा—

मित्यापृच्छथ गतस्तदाहमियता कालेन चास्यागतः ।

इत्थं तन्वि तवैक एव महतः कृच्छ्रस्य हेतुः स्वयं

निर्लेज्जः परिदेव्य एव स कथं प्राणप्रियः संप्रति ॥ २३ ॥

विदूषकः—अहो देवस्स दुब्बिलसिअं । [अहो दैवस्य दुर्विलसितम् ।]

पवनंजयः—

निरर्गलं क्रूरमृगैरधिष्ठिता वनान्तभूमीरवगाहमानया ।

अयं जनः संप्रति कान्दिशीकतामनीयत प्रेयसि खण्डितस्त्वया ॥२४॥

चमूरकः—अज्ज, का एत्थ पडिबत्ती । [आर्यं, कात्र प्रतिपत्तिः ।]

विदूषकः—कहं विअ एअं समस्सासेमो । [कथमिवैनं समाश्वसयामः ।]

I obscure २ D हा प्रिये ३ D omits मुह्यति and विदूषक ४ D अ३अ (अय्य). ५ A B D दव्वस्स.

पवनंजयः—

प्रसह्य विद्याधरसुन्दरीभिरहं न जातो हृतपूर्णपात्रः ।

कथं प्रसूतासि मृगाङ्गनाभिः सास्रं वने तन्वि निरीक्ष्यमाणा ॥ २५ ॥

(सविशेषकरुणम्) अयि महेन्द्रराजपुत्रि,

क मनो मयि सक्तमात्मनः क च दाक्षिण्यमयि स्वभावजम् ।

कथमेकपदे त्वया वयं शिथिलीभूतमनोरथाः कृताः ॥ २६ ॥

किम् अपरमिह स्थीयते । यावदहमप्यञ्जनामनुसरामि ।

(उत्तिष्ठति ।)

विदूषकः—(ससंभ्रममुत्थाय) अविह । कहां विअ साहसं काउं अज्झवससि । अवस्सं खु तत्तहोदिं वणवासिणीओ देवदाओ रक्खंति । एसा अरण्याणी ण खु तुम्हे एक्केण अगोउं सक्का । ता वेअडुं गदुअ सध्देण वि विज्जाहरजणेण सह आअदुअ अण्णेसिअव्वं । [अवत । कथमिव साहसं कर्तुम् अध्यवस्यसि । अवश्यं खलु तत्रभवती वनवासिन्यो देवता रक्षन्ति । एषा अरण्यानी न खलु त्वया एकेन मार्गितुं शक्या । तस्माद् विजयार्थं गत्वा सर्वेणापि विद्याधरजनेन सहागत्यान्वेषितव्यम् ।]

पवनंजयः—नैतत् समीचीनम् ।^३

अशरण्यमिदमरण्यं मम तावत् प्राणवल्लभा याता ।

चेतःसंमोहकरं गरमिव नगरं कथं सेवे ॥ २७ ॥

विदूषकः—तह वि जइ कदाइ तत्तहोदी अंजणा, अप्पणो कारणादो अत्तहोदो असहाअस्स अणपेक्खिअजीविअस्स वणप्पवेसं सुणइ तदो अत्ताणं मोइस्सदि । ता ण हु जुत्तो तुह एत्थ माअंगमालिणीपवेसो ।

1 D वणणिवा° (and also chāyū वननिवा°). 2 A तुम्हेण. 3 D adds पश्य. 4 D अप्पाणं

[तथापि यदि कदाचित् तत्रभवती अञ्जना, आत्मनः कारणाद् अत्रभवतोऽ-
सहायस्यानपेक्षितजीवितस्य वनप्रवेशं शृणोति, तत आत्मानं मोचयिष्यति ।
तस्मान्न युक्तस्तवान्न मातङ्गमालिनीप्रवेशः ।]

पवनंजयः—

प्रियायाः संदिग्धं प्रियसखमयं जीवितमपि
क तावद् वृत्तान्तं मम समधिगन्तुं च समयः ।
कदाचिज्जीवेत् सा यदि तु विधिना जीवितरुचिं
बलान्तस्या मन्ये नियमयति मद्दर्शनरतिः ॥ २८ ॥

विदूषकः—दाणिं खु तुमं मर्हिंदउरं गमिस्सामि त्ति भणिअ
पत्थिदो । [इदानीं खलु त्वं महेन्द्रपुरं गमिष्यामीति भणित्वा प्रस्थितः ।]

पवनंजयः—अथ किम् ।

विदूषकः—एवं च महाराओ किं ति चिराअदि वच्छो त्ति मर्हिंद-
उरे वओहरजणं पट्टावइस्सदि । तदो तर्हिं वि तुइ अदिट्टे किं पडि-
वज्जस्संति महाराअपल्हादो, मर्हिंदराओ, अंबा केदुमदी, तत्तहोदी
मणोवेआ सबा वि अण्णहासंकिणीओ । [एवं च महाराजः किमिति
चिरायति वत्स इति महेन्द्रपुरे वचोहरजनं प्रस्थापयिष्यति । ततस्तत्रापि
त्वय्यदृष्टे किं प्रतिपत्स्यन्ते महाराजप्रह्लादो, महेन्द्रराजो, अम्बा केतुमती, तत्र-
भवती मनोवेगा, सर्वा अपि अन्यथाशङ्किन्यः ।]

पवनंजयः—(विदूषकं हस्ते गृहीत्वा) वयस्य, अनुलङ्घितपूर्वं भवता
मद्वचनमिति किंचिद् वक्तुकामोऽस्मि ।

विदूषकः—विस्सद्धं भणाहि । [विस्रब्धं भण ।]

पवनंजयः—वयस्य, विजयार्थमेव गत्वा त्वरितम् अञ्जनान्वेषणाय
भवता विद्याधरजनैः सहागन्तव्यम् ।

विदूषकः—(सावज्ञम्) अलं दाणि अदो वरं सुदेण । [अलमिदानी-
मत. परं श्रुतेन ।]

पवनंजयः—वयस्य, अलमस्मद्विरहकातरतया, कार्यमेव पर्या-
लोचय ।

विदूषकः—वणमञ्जे वअस्सं मोत्तूण क्हं किर णअरं गच्छेमि ।
[वनमध्ये वयस्यं मुक्त्वा कथं किल नगरं गच्छामि ।]

पवनंजयः—मच्छरीरस्पृष्टिकर्यां शापितोऽसि । गच्छेदानीं कार्य-
निष्पत्तये । अहमपि यावद्भवदागमनम् अत्रैव प्रतिपालयिष्यामि ।

विदूषकः—(सास्रम्) का गई । (स्वगतम्) होदु । जाव अहं
पि तत्तहोदिं अण्णेसिटुं सबं पि विज्जाहरजणं इहं आणेमि । [का
गतिः । (स्वगतम्) भवतु । यावदहमपि तत्रभवतीमन्वेष्टुं सर्वमपि विद्याधर-
जनमिहानयामि ।]

(निष्क्रान्तं ।)

पवनंजयः—(उत्थाय) यावदञ्जनामन्वेष्टुं मातङ्गमालिनीं गच्छामि ।

चमूरको लवलिका च—(उत्थाय) जाव बंधुजणो आअमिदग्दि
दाव किं ण शामिणा पडिवालेद्वं । [यावद्धन्धुजन आगमिष्यति तावत्
किं न स्वामिना प्रतिपालयितव्यम् ।]

पवनंजयः—विद्याधरजनोऽपि प्रवेक्ष्यत्येव मातङ्गमालिनीम् ।
तेषां चास्मत्प्रवेशनिवेदनाय भवताप्यत्रैव आसितव्यम् ।

चमूरकः—शच्छंदर्चालिणो खु पहुणो होंति । [स्वच्छन्दचारिणः
खलु प्रभवो भवन्ति ।]

(प्रणम्य निष्क्रान्त सह लवलिकया ।)

पवनंजयः—(परिक्रामन्, पृष्ठतो विलोक्य) कथमिदानीमपि मामनु-
सरति कालमेघः ।

1 D स्पृष्टिकतया. 2 D इध 3 D इति निष्क्रान्तः । 4 A B D प्रेक्षत्येव
which makes no sense and is ungrammatical. 5 D शच्छंदर्चालिणो
हु प°.

भद्र त्वं नवसल्लकीकिसलयान्यास्वादयन् कानने
 भूयः पद्मसरोऽवगाहनसुखैरात्मानमाराधयन् ।
 सार्धं प्राप्य करेणुभिश्च कलभैः स्वेच्छाविहारोत्सर्वान्
 कामं निर्विशं गन्धसिन्धुरपते यूथाधिराज्यश्रियम् ॥ २९ ॥
 कथम् असावसाधारणेन प्रेम्णा मामेवानुवर्तते । तेन हि इतस्तावत् ।
 (परिक्रम्य, पुरो विलोक्य)

यत्र याता प्रिया सेयं प्राप्ता मातङ्गमालिनी ।
 यावदत्र परिभ्राम्यन् मृगये मृगलोचनाम् ॥ ३० ॥

(निष्क्रान्तः ।)

इति श्रीहस्तिमलेन विरचिते अञ्जनापवनंजयनामनाटके
 पंचमोऽङ्कः समाप्तः ।

षष्ठोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशतो वीणा वादयन् गन्धर्वो मणिचूड सहचरी च रत्नचूडा ।)
 मणिचूडः—

नवतोयविन्दुपतनेन मीलिते
 सरसीरुहे सहचरीं तिरोहिताम् ।
 प्रथमोदये जलमुचां मधुव्रतो
 विरहातुरो मृगयते समन्ततः ॥ १ ॥

रत्नचूडा—जलदसमए वहू पिअविरहिआ विअ उअ पदुमिणी
 इमा इह परिमिलाअदि । [जलदसमये वधूः प्रियविरहितेव पश्य पद्मिनी
 इयमिह परिम्लायति ।]

I D °विरचितमञ्जनापवनजय नाम पंचमोऽङ्कः ॥ ५ ॥ २ D om, षष्ठोऽङ्कः.

उभौ—

उद्दामपञ्चबाणे पयोदकाले सुदुस्सहे के वा
धीरा विहाय जायासमागमं केवलं च जीवन्ति ॥ २ ॥

रत्नचूडा—अंमो णेण एव गीद्वत्थूवग्घादेण सुमरिद्व म्हि किं वि
उम्मत्तो सो राअउत्तो जो तारिसिं पि तं पिअं अंजणं विरहिअ एत्तिअं
कालं वट्टइ । [अहो अनेनैव गीतवस्तूपोद्घातेन स्सारितास्सि किमपि उन्मत्तः
स राजपुत्रो यस्तादृशीमपि तां प्रियामज्जनां विरहस्य एतावन्तं कालं वर्तते ।]

मणिचूडः—

विहाय विरहकान्तामियन्तं कालमज्जनाम् ।

स्थितः स खलु यत्सत्यमुन्मत्तः पवनंजयः ॥ ३ ॥

रत्नचूडा—सव्वहा णिड्डुरा खु पुरिसा । [सर्वथा निष्ठुरा. खलु पुरुषाः ।]

मणिचूडः—प्रिये, मैवं वादीः । विधिरेवात्रोपालम्भनीयः ।

अन्यथा

क्रासौ महेन्द्रतनया केदं मातङ्गमालिनीगहनम् ।

अनुभाव्य एव वाढं जन्मान्तर एव कर्मपरिपाकः ॥ ४ ॥

रत्नचूडा—एवं एदं । अण्णहा तारिसीए विणा सहअरीए कहं
किरं सो एत्तिअं कालं वट्टिटुं पव्वदि । जं अहं वि णाम अइरपरि-
इदा एत्तिअं वि कालं अपेक्खंती दिढं ^३म्हि उक्कंठिदा । सव्वहा महा-
णुभावो खु सो पुत्तो जस्स जम्मेण ताए वणवासदुक्खं अदिवाहिअं ।
[एवमेतत् । अन्यथा तादृश्या विना सहचर्या कथं किल स एतावन्तं कालं
वर्तितुं प्रभवति । यदहमपि नाम अचिरपरिचिता एतावन्तमपि कालमपश्यन्ती

1 A सुमरदम्ह, B सुमराधम्ह. - It should be सुमराविद म्हि. 2 A कहं
कीरिसो (chāyā—कथ कीदृशः). 3 A दिढं हि (chāyā—दृढासि).

दृढमस्मि उत्कण्ठिता । सर्वथा महानुभावः खलु स पुत्रो यस्य जन्मना तस्या
वनवासदुःखमतिवाहितम् ।]

मणिचूडः—एवमेतत् । (स्पर्श रूपयित्वा)

संप्रति सुदति प्रतिनवजलकणिकारेणुहारिणा मरुता ।

तिम्यति वीणातन्त्रीरियं शनैः प्रावृषेण्येन ॥ ५ ॥

तदितो गच्छावः ।

रत्नचूडा—जं अज्जउत्तो आणवेदि । [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।]

(उत्थाय निष्क्रान्तौ ।)

मिश्रविष्कम्भः ।^२

(तत प्रविशत्युन्मत्तवेषः पवनंजय ।)

पवनंजयः—(सकोपम्) आः पापे, मत्प्रभावानभिज्ञे निकारशालिनि
मातङ्गमालिनि

इतश्चेतश्चैवं मयि मृगयमाणेऽपि सुचिरं

न चोरि^३ त्वं धार्ष्ट्यान्मम सहचरीं दर्शयसि चेत् ।

कृतं संदेहेन प्रसभमधुना त्वामयमिषु-

मुखोद्गीर्णज्वालाजटिलदवचह्विर्ज्वलयति ॥ ६ ॥

(ज्यामास्फाल्य शर सधातुमिच्छति^४ । विहस्य) न भेतव्यम् । कथमस्थान
एवायमस्माकमावेगः । इत्थमस्थिरप्रकृतेः कुतोऽस्याश्चोरयितुं च
प्रागल्भ्यम् । अस्मज्जयाघोषमात्रेणैव सर्वतोऽपि व्याकुलितेयमर-
ण्यानी । तथा हि ।

गुहामुखविसर्पिभिः प्रतिरवैरसौ दुःश्रवैः

स्फुटस्फुटितकन्दरः सपदि भूधरः क्रन्दति ।

1 ताए in the original Prākṛit could also be rendered by तथा
२ D om. मिश्रविष्कम्भः । ३ B हेरि ४ B मुखोदीर्णं. ५ B इच्छत्, D इच्छन्.

अमी च भयविह्वला वनमपोह्य कण्ठीरवाः
सहैव शरभैरितः कचन विद्रवन्ति द्रुतम् ॥ ७ ॥

(पुरो विलोक्य) अये, अयं च पुनरस्मदीयः कालमेघः ।

प्रवृद्धमदनिर्झरः स्तिमितकर्णतालः क्रुधा
दहन्निव दिशो दशाप्यसकृदेव नेत्रार्चिषा ।
विलोकयति सत्वरोन्नमितसव्यदन्तार्गला-
निवेशितकरः पुरः समरशङ्कया संग्रति ॥ ८ ॥

अहो गन्धसिन्धुरवर, अलमलमविपय एवामुना समरसंरम्भेण । अन-
पराधैव खल्वेषा तपस्विनी मातङ्गमालिनी । पश्य ।

चलकिसलयहस्तैरादरादाह्वयन्ती
नतरुविटपाग्रप्रश्रयप्रह्वमेषा ।
उपहरति पुरस्तादुच्छ्वसन्मालुधानी-
कुसुमनिकरपातैरर्घ्यलाजाञ्जलिं नः ॥ ९ ॥

तदिदानीमस्माभिरनन्विष्टपूर्वेषु वनोद्देशेष्वन्वेषणीयम् । एहि तावत् ।
तव खलु कराकारावूरु गतिर्गतिरेव ते
तव मदमषीरेखा रोमावलिं तुलयत्यलम् ।
स्तनतटयुगं यस्याः कुम्भस्थलेन समं तव
द्विप मृगवधूनेत्रां तां भो वयं मृगयामहे ॥ १० ॥

(परिक्रम्य, अग्रतो विलोक्य च सशोकम्)

कष्टं भोः कष्टमियं वनस्थली दर्भसूचिकण्टकिता ।

कथमिव हन्तं गता स्यादिह दयिता पादचारेण ॥ ११ ॥

(विचिन्त्य) नैव तावदेतादृशेषु मार्गेषु सख्यागमनं सहते वसन्त-

माला । तर्दितो व्रयं विचिनुमः । (परिक्रम्य विलोक्य च सहर्षम्) दृष्ट एव मया प्रियाया मार्गः । तथा हि

नातिदूरे मया तस्या लक्ष्यते गतिशंसिनी ।

पादपङ्क्तिरितः सेयमलक्तकरसाङ्किता ॥ १२ ॥

तद्यावदिदानीं तेनैव मार्गेण गच्छामि । (उपसृत्य, निरुह्य च सखेदम्) कथममी

कदम्बपुष्पप्रकरणानुकारिणो धृतेन्द्रचापद्रवविन्दुबन्धुराः ।

महेन्द्रगोपाः खलु मन्मथानलस्फुलिङ्गभङ्गा घनकालशंसिनः १३ तत्प्रवृत्त एवायं विरहिजनसक्षोभवैशसदुर्ललितो वर्षासमयः । (नभो विलोक्य)

गर्जन्नुच्चैः पर्जन्योऽयं वर्षत्याराद्वारां धाराः ।

विद्योतन्ते विद्युन्माला हा हा धिग्धिक्रष्टं कष्टम् ॥ १४ ॥

(परिक्रम्य, विलोक्य च सहर्षम्) लक्षित एव मानिन्या मार्गः । इह हि मयि प्रवासेन कृतापराधे रूपा खलन्त्या गतिषु प्रियायाः ।

दृष्टो मया मौक्तिकहार एष संरम्भविच्छिन्नगुणो विशीर्णः ॥ १५ ॥

(निर्वर्णयन् विलोक्य) कथमसौ पार्श्वतः प्रत्यग्रमौक्तिकप्रसवोपशोभितां शङ्खकुटुम्बिनीं विडम्बयन्ती गजदन्तार्गला । एतान्यपि तावदस्माकं विपर्यस्तभागधेयतया गजदन्तमुक्ताफलानि संवृत्तानि । तदन्यतो विचिनुमः । (परिक्रम्यावलोक्य च) एष खलु पादपेषु संभावनीयो रक्ता-

I Thus A B D. पदपङ्क्तिः would be better. *2* B विकीर्णः. *3* B adds before this stage direction, the following:—अये एष युगपत्प्रवर्तमान-सर्वर्तुविभवसुभगो निपतितसुखोपसेव्यवर्षातप. प्रेक्षणीयो वनदेवताविहारोद्यानदेशो वनो-देश । विशेषतो विविक्तविहारोत्सुकाश्च विद्याधरस्त्रियः । तदेनमेव तावदवगाहिष्ये !; D also has this passage (which begins with (परिक्रम्य पुरो विलोक्य च) and ends with (परिक्रम्यावलोक्य च).

शोकः । भवतु, एनमभ्यर्थयिष्ये । अङ्ग महीसूह महत्तर रक्ताशोक,
 नितम्बिनीं तां मम दर्शय त्वं संभावयिष्यामि ततो भवन्तम् ।
 अकालपुष्पोद्गमदायिना ते वामेन तस्याश्चरणाम्बुजेन ॥ १६ ॥
 (विचिन्त्य, सोद्वेगम्)

शोच्यां दशां प्रपन्ने मयि शोकपराङ्मुखो निभृतम् ।

सोऽयं प्रकाशयति निजमन्वमर्थशोक इति नाम ॥ १७ ॥

तदितो वयम् । (अन्यतो गत्वा विलोक्य च) एष खलु कामिनीजनवदन-
 मदिरागण्डूपरसदोहली बकुलः । तद्यावदेनमभ्यर्थये । अयि भोः
 केसर,

मम प्रियां त्वं नवपुष्पमेखलागुणप्रियां तां यदि दर्शयिष्यसि ।

वितारयिष्यामि ततोऽहमेव ते ध्रुवं सखे तन्मुखवासदौहृदम् ॥ १८ ॥

(निहृय) कथमसावस्मानविदिताञ्जनावृत्तान्ततया दलाग्रनिष्यन्दिभि-
 र्वर्षाग्रविन्दुभिः कृताश्रुमोक्षस्तूष्णीक एव शोचति । तेन हि वि-
 सर्जिताः स्मः । (परिक्रम्यावलोक्य च सोत्कण्ठम्)

एष श्यामाविटपः प्रत्यग्रशिरीषमालिकाश्यामः ।

स्मरयति तदञ्जनाया बाहुलतायुगलमंसौ मे ॥ १९ ॥

(पुरो विलोक्य) अये, इयमितस्तमालपादपस्याधस्तादिन्द्रनीलशिलापट्ट-
 मधिज्ञेते चमरी । यावदेनां पृच्छामि । अयि चमरि,

पृच्छामि त्वां मम दयितया ब्रूहि संभावितः किं

पादन्यासैः स्वलितविपसैः काननोदेश एषः ।

शोकायासाद्विरहगुणितं विश्रुथं केशपाशं

कान्त्या यस्याः स्फुटमनुकरोत्येष ते बालभारः ॥ २० ॥

1 B वर्णयिष्यसि. 2 A दौहदम् (=दोहदन्?) 3 A omits वर्षाग्रविन्दुभिः.
 4 A श्यामो विटपः.

कथमसौ नवजलकणिकासेकभयादस्यैव पार्श्ववर्तिनः पर्वतस्य दरीगृहं
प्रविष्टा । सर्वत्रापराधी खलु जाल्मो जलदकालः । (विचिन्त्य) भवतु ।
अनन्विष्टपूर्वां चाहमेनां पर्वतोपत्यकां यावद्विचिनोमि । (परिक्रम्याव-
लोक्य च)

एष हि स पञ्चवाणो^१ धनुर्धरो वर्तते पुरो रुन्धन् ।

संरब्धः संहर्तुं प्रोषितजनधैर्यसर्वस्वम् ॥ २१ ॥

तदिदानीमभियोक्ष्ये ।

पूर्वं तावद्नङ्ग इत्यविरतामारोप्य रूढि परां

विध्यन् वञ्चितकेन सायकशतैः प्रच्छन्नचारी स्थितः ।

अद्य त्वेवमिहागतोऽसि सहसा सज्जः स्वयं मूर्तिमान्

किं त्वं दुर्मद मन्मथापसद् मामन्यादृशं मन्यसे ॥ २२ ॥

(विचिन्त्य) सर्वथा नैष तावदस्माकमेतादृशमुपालम्भमर्हति । कुतः ।

चिरतरं विधिना प्रतिवन्धिना विघटितानि मिथो मिथुनान्यपि ।

घटयितुं प्रभवत्यचिरादिव स्वयमसौ भगवान् रतिबल्लभः ॥ २३ ॥

तदिदानीमेनमनुयोक्ष्ये । अहो मकरध्वज,

कथय कथय या ते दर्पसर्वस्वभूमिः

किसलयसुकुमारं मूर्तिमज्जीवितं मे ।

स्वयमिव वनलक्ष्मीः संचरन्ती वनान्ते

चकितहरिणनेत्रा सा त्वया दृष्टपूर्वा ॥ २४ ॥

(विभाव्य, सहासम्) उन्मत्तः खल्वहम् । न त्वयं हन्त कुसुमधन्वा ।

इदं हि पर्वतनितम्बभागावष्टम्भिन्यां स्फाटिकशिलाभित्तौ संक्रान्तम्

अस्मत्प्रतिविम्बम् । तदन्यतो विचिनोमि । (परिक्रम्य विलोक्य च,

सोत्कण्ठम्)

संप्रति शुचिस्मितायाः समुच्छ्वसद्विशदकुसुमरमणीया ।

मामिह कुन्दलतेयं स्मरयति मन्दस्मितं तस्याः ॥ २५ ॥

एषा हि तावदिहैव संनिहिता रम्भा । तदेनामेव प्रक्ष्यामि । अयि रम्भे,

जातामप्सरसां कुले सुविदिते त्वां साधु जानीमहे

पृच्छामः प्रणयात्तदत्रभवतीं दत्तावधाना भव ।

लावण्येन भवेत यूयमपि यां दृष्ट्वा स्वयं विस्मिताः

सा विद्याधरसुन्दरी नयनयोः किं ते गता गोचरम् ॥ २६ ॥

(विचिन्त्य) अयं रम्भासाम्येन कदलीमेव खल्वहमप्सरोगुग्धो व्याह-
रामि । भवतु । एनामनुयोक्ष्ये ।

ऊरुद्वयोपमां यस्याः प्राप्य त्वं श्लाघ्यसे भृशम् ।

रम्भोरूः किमितो याता सा मम प्राणवल्लभा ॥ २७ ॥

अथवा नैतदपि सुसंगतम् । कुतः ।

अद्यापि शीतलोऽयं रम्भास्तम्भो लभेत नैव मनाक् ।

ऊरुद्वयेन साम्यं वर्षासु सुखोष्मणा तस्याः ॥ २८ ॥

तत् कथमिवैनां प्रक्ष्यामि । (विचिन्त्य) सर्वथा नैव तावदस्याः पार्श्व-
गता^१ दयिता । अन्यथा हि ।

विरहानलतापमञ्जनाया ननु नामापनयेद्वसन्तमाला ।

शिशिरैः कदलीदलैर्गृहीतैरिह शय्यां रचयेच्च वीजयेच्च ॥ २९ ॥

अलूनदलैव चैयं कदली । तदन्यतो विचिनोमि । (परिक्रम्य, स्पर्श
रूपयित्वा) इममेव तावद्वनविहारव्यसनिनं पुरोवातं प्रक्ष्यामि । अयि
भोः समीरण, शृणु तावत् ।

अत्रैव पत्नी किमु वत्स्यतीर्थमस्यास्त्वमाकेकरलोचनायाः ।

रतिश्रमाशंसिकपोललेखास्वेदोदविन्दूनपनेतुमीशः ॥ ३० ॥

(गन्धमाग्राय सहर्षम्)

एष खलु गन्धवाहो दयितानिःश्वासपरिमलोद्गन्धिः ।

अवचनमाह पुरस्तादियं प्रिया ते स्थितैवेति ॥ ३१ ॥

तदस्यैव गन्धवाहस्य प्रतीपमधुना गच्छामि । (परिक्रम्य दृष्ट्वा च)
कथमसौ कर्पूरतरोरधस्तादचिरविरूढशैलेयपटलं शिलातलमधितिष्ठन्
कस्तूरिकामृगः । भवतु । एनमपि तावदनुयोक्ष्ये । अयि वनलक्ष्मी-
समालंभन कस्तूरिकामृग,

मम प्रिया मद्विरहेण दीर्घ निःश्वस्य निःश्वस्य किमत्र याता ।

निर्व्याजमेवानुकरोति यस्या निःश्वासगन्धं तव नाभिगन्धः ॥ ३२ ॥

(सैरोषम्)

धिग् ग्रन्थिपर्णकवलं स्वैरमसौ रसयितुं समारभते ।

तदितो वयं किममुना स्वकार्यमात्रैपिणा कार्यम् ॥ ३३ ॥

(अन्यतो गत्वा विलोक्य च) एष हि सर्वतः समुद्भिद्यमानकोरकाङ्कुर-
सुकुमारः सहकारः । यावदेनमनुयुञ्जे ।

ललिता सहकारमञ्जरीयं तव यस्याः श्रवणावतंसयोग्या ।

क गता गजखेलगामिनी सा श्रवणान्तायतलोचना नतभ्रूः ॥ ३४ ॥

(सहर्षम्) अये, समुच्चलितेनैव किसलयहस्तेन पश्चिमां दिशमसौ निर्दि-
शति, तदित एव खलु प्रस्थिता । यावदहमनेनैव मार्गेण गच्छामि ।
(परिक्रमति ।)

.. I B किमवर्त्यतीर्थम्; D अत्रैकपत्नी वर्त्सते मे यस्या°; the first Pāda is
obscure, २ B D add विलोक्य before सरोषम्.

(आकाशे)

धारेमि मंदभाआ अत्ताणं केत्तिअं पुणो कालं ।

[धारयामि मन्दभागा आत्मानं कियन्तं पुनः कालम् ।]

(इत्यर्धोक्ते)

पवनंजयः—(परिक्रान्तेन कर्णं दत्त्वा) कथं प्रियाया इव स्वरयोगः ।

(पुनराकाशे)

पिअसहि वसन्तमाले उवेक्खिआ अज्जउत्तेण ॥ ३५ ॥

[प्रियसखि वसन्तमाले उपेक्षिता आर्यपुत्रेण ॥]

पवनंजयः—(सहर्षम्) अये प्रियैव संवृत्ता । यावदुपसर्पामि ।

(उपसर्पन्)

प्राणसमामयि भवतीमयं जनः कथमुपेक्षितुं क्षमते ।

इत्थं यो विरहार्तस्त्वामेकमपेक्षते शरणम् ॥ ३६ ॥

(उपसृत्य, परितो विलोक्य, ससभ्रमम्) क नु खलु तिरोहिता स्यात् ।

(आकाशे लक्ष्यं वद्ध्वा)

त्वदर्शनोत्सवसमुत्सुकचेतसि त्वं

प्रत्यागते मयि किमन्तरिताद्य चण्डि ।

अस्थान एव कुपिता विरहात्तथा मां

खिन्नं पुनः किमसि खेदयितुं प्रवृत्ता ॥ ३७ ॥

भवति वसन्तमाले, किमिदानीं त्वमपि प्रियसखीं न प्रसादयसि ।

(पुनरप्याकाशे धारेमि मंदभाआ इति पूर्वोक्तमेव पठ्यते ।)

पवनंजयः—(श्रुत्वा दृष्ट्वा च) कथमयं फलापीडभरविनम्रां दाडि-
मीं यष्टिमधितिष्टञ्जु शुको व्याहरति । अनेन खलु दयितास्वरानुकृतिणा
कलमधुरेण वयमालापेन विप्रलब्धाः स्मः । (विचिन्त्य) अथवा

सुमहदुपकृतमनेन । यदनया जातिस्वभावनिसर्गपाण्डित्यबलेनावधा-
रितया गाढया वसन्तमालया सहितायाः प्रियाया इहैव स्थितिः
सूचिता । तदेनमेव विदिताञ्जनावृत्तान्तं शुक्रं प्रक्ष्यामि ।

यस्यास्त्वं शुक चारुरत्नवलये वामप्रकोष्ठे स्थितः

शोभां प्राप्य मदंसभागसुहृदि प्रीतिं परां लप्स्यसे ।

वाचा मञ्जुलया ययासि तुलितो यस्या नखानां रुचिं

धत्ते चञ्चुरियं च ते कथय सा कान्ता क मे वर्तते ॥ ३८ ॥

कथमसौ परिपाकविदलितं दाडिमीफलमास्वादयितुं प्रवृत्तः । मुहुर-
स्मत्परिप्रञ्जनिर्वन्धेन मा भूदस्य स्वाभिलाषभङ्गो येनेदानीमिहैवोद्देशे
प्रियायाः स्थितिरावेदिता । (कर्णं दत्त्वा सहर्षम्)

इतः किञ्चित्काञ्चीगुणरणितमाकर्णितमिदं

पृथुश्रोणीभारालसगमनशंसि श्रुतिसुखम् ।

भवद्दुःखं ध्वस्तं हृदय, विरता ते विधुरता

नतभ्रूरत्रैव स्वयमुपनता सा तव पुरः ॥ ३९ ॥

यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य) कथमिदं सारसविरुतम् ।

मदमन्थरमुच्चरता रशनाक्वणितानुकारिणा तस्याः ।

दूरं विलोभयति मां सारसविस्तेन सरसीयम् ॥ ४० ॥

(विचिन्त्य) इहापि तावदागतया भवितव्यमञ्जनया । शिशिरोपचार-
सत्वरं हि विरहिता गवेषयन्ति प्रायः संतापनिर्वापणक्षमाणि सरसी-
तीराणि । तद्यावदेनां पृच्छामि । अयि भोः सरसि, श्रूयताम् ।

भ्रूलेखे लहरी, भुजौ विसलता, चेतः प्रसन्नं पयः

श्रोणी सैकतमाननं सरसिजं, नेत्रे च नीलोत्पलम् ।

I B inserts जन्म before स्वभाव, D inserts जन्म between स्वभाव
and निसर्ग.

यस्यास्ते तुलयन्ति यां प्रियतमां पद्मोदरस्थायिनी -

लक्ष्मीश्चानुकरोति सा किमबला याता तवोपान्तिकम् ॥ ४१ ॥
किमियमदत्तोत्तरा यथापुरमेव स्थिता सरसी । दर्शिता खल्वनया
सांप्रतमात्मनो जडात्मता । यावदिमामेव तीरोपान्तस्थितां केतकीं
पृच्छामि ।

अयि केतकि किं नु कामिनां ते सुमनःपत्रमनङ्गलेखयोग्यम् ।

अकरोत् स्वकपोलपाण्डु कर्णे प्रणयिन्या मम दन्तपत्रलीलाम् ॥ ४२ ॥
(विचिन्त्य) मा तावद्भोः । अस्मद्विरहखेदिताया महेन्द्रदुहितुः क
इव नाम प्रसाधनावसरः । (विलोक्य) इतस्ततोऽयं कुसुमासवलंपटः
परिभ्रमति भ्रमरः । यावत् पृच्छामि । अहो^१ मधुकरीजीवितेश्वर^२

अपि किल कलकण्ठ्याः शून्यगानस्वनस्ते

श्रुतिमरमयदस्मत्संगमोत्कण्ठितायाः ।

अनुगुणनमनुचैरुच्चरन् यस्य लब्धुं

प्रभवति भवतोऽयं हारिझंकारनादः ॥ ४३ ॥

कथमनवस्थितो न मुञ्चति चञ्चरीकभूयम् । (विहस्य) किं वासौ
मधुपः पृष्टः प्रतिब्रूयात् । इतो वयम् । (परिक्रान्तकेनावलोक्य) अये,
स्वैरविहारार्हमिदं रजतगिरिशिखरतलपुलिनम्^३ । (सोत्कण्ठं प्रत्यक्षवदा-
काशे लक्ष्यं वद्ध्वा)

मम समवलम्ब्य हस्तं निजघनजघनस्थलोपमं शनकैः ।

आरोह वरारोहे नलिनसरस्तीरपुलिनमिदम् ॥ ४४ ॥

(पुरो विलोक्य, निर्वर्यं च) इदमेव पुलिनतलविरूढस्थलकमलिनीसान्द्र-
च्छायानिषण्णं चक्रवाकमिथुनं प्रक्षयामि ।

1 D हहो for अहो. 2 A मधुकरीश्वर 3 A हारिझकारिनादः. 4 A पृष्टं.
5 B 'धवलपुलिनम्, D 'धवलं पुलिनं.

अलं तुलयितुं यस्याः स्तनद्वयमिमौ युवाम् ।

किं तथा कान्तया दत्तो युवयोर्नयनोत्सवः ॥ ४५ ॥

कथामिमौ

परस्परप्रेमरसोपनीतं मृणालमास्वादयितुं प्रवृत्तौ ।

चिस्रम्भलीलासुखमेवमेतौ यथेप्सितं^१निर्विशतां चिराय ॥ ४६ ॥

(सान्त.खेद नि.श्वस्य, आकाशे लक्ष्यं वङ्का) प्रिये महेन्द्रराजपुत्रि,

मुक्ताञ्जनं मा स्म कृथाः सवाष्पं नेत्रद्वयं ते पवनंजयं च ।

सानन्दवाष्पं विरहान्तपूर्णेर्मनोरथै रञ्जय तच्च मां च ॥ ४७ ॥

(परिकामन्) हन्त किमिदम् ।

इदानीमङ्गानि स्वयमलघु सीदन्ति विवशं

धनुः स्रस्तं हस्ताच्चकितचकितादत्र सशरम् ।

गतिः खिन्ना पादौ स्वलयति वचो गद्गदमभूद्

दृशौ वाष्पारुद्धे किमपि हृदयं क्षुभ्यति मम ॥ ४८ ॥

(पुरो विलोक्य)^४ तदिममेव प्रच्छायचन्दनतरुसनाथं नवविकसित-

वनसरसीकुसुमसैकरन्दपरिचयसुरभिणा मन्दानिलेन समासेवितं

लतामण्डपं प्रविश्य, स्वयंविगलितवासन्तीकुसुमरचितप्रस्तरे चन्द्र-

कान्तमणिशिलापट्टे चन्द्रनट्टुममेवावप्रभ्य कंचित्कालं विश्रमिष्यामि ।

(तथा कृत्वा)

दशान्तरमहं नीतो विरहव्यथयाऽनया ।

महेन्द्रराजदुहितुः कः प्रवृत्ति निवेदयेत् ॥ ४९ ॥

1 B adds सकौतुक before यथेप्सित, disturbing the metre. 2 A सान्तर्भेदम्, B सान्तमेदम्. 3 D पुरोव लोक्य. 4 A omits all the words from मकरन्द upto रचित It reads नवविकसितवनसरसीकुसुमरचितास्तरे चन्द्रकान्त etc.

(ततः प्रविशति प्रतिसूर्यः ।)

प्रतिसूर्यः—आदिष्टोऽस्मि दूतमुखेनाहं राजर्षिणा प्रह्लादेन यथा विजयार्धात्रिगत्य दन्तिपर्वतं प्रति गच्छन् विश्रमाय सरोवणसरसी-मवतीर्णो भूधरवाटनिवासिनो वनचरादञ्जनाया मातङ्गमालिन्यां प्रवेशमुपलभ्य नाहमवश्यमञ्जनामपश्यन्नितो गमिष्यामीति तत्रैव बलवता मन्युना स्थितः पवनंजय इति प्रहसितादुपलभ्य सर्वेऽपि वयं सरोवणतीरमवतीर्णाः । ततश्च तत्रत्येन वनचरेण मातङ्गमालिनीमेवाञ्जनामन्वेष्टुमसौ प्रविष्टं इत्यादिष्टम् । एवं च वत्सामञ्जनां पवनंजयं चान्वेष्टुं भवताप्यागन्तव्यमिति^१ । सया चेयं प्रविष्टा मातङ्गमालिनी । यावदिदानीं कुमारपवनंजयमन्विष्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) अये इन्द्रचापभङ्गचित्रितं गगनतलम् । इन्द्रगोपपटलकृतोपहारं महीतलम् । ककुभकेसरधूसराः ककुभः । प्रस्फुटितकेतकीपरागपांसुलो मन्दानिलः । नवविदलितकन्दलीमुकुलशवला वनस्थली । केकारवावाधैर्निपतितेन्द्रधनुःखण्डविभ्रसं विभ्राणैस्ताण्डवचुञ्चुभिश्चन्द्रकितानि शिखण्डिभिर्गन्धशैलशिखराणि । इत्थं च मन्ये कष्टमेव दशामिदानीमनुभवति पवनंजयः । परितश्च निरीक्षिता मातङ्गमालिनी । तदस्यैव गन्धर्वराजमणिचूडावासभूतस्य रत्नकूटशैलस्य पादोपवनोपशल्यवनराजि वनमालामन्विष्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) अये, इयं सिकतिलतलेषु मत्तङ्गजपदपङ्क्त्यनुसृतस्खलितविपमा पदपद्धतिः । (निरूप्य)

1 A प्रविशति. 2 B कुमारपवनजय. 3 भवताप्यागन्तव्यमिति. 4 B भक्ति.
5 D ककुभकुसुमकेसर°. 6 A omits कन्दली 7 B केकारवावाधै. 8 B मातङ्गज-
पदपङ्क्त्या. The sense is मत्तङ्गजपदपङ्क्त्यनुसृता स्खलितविपमा पदपद्धतिः.
After °पदपङ्क्त्या B has a lacuna extending upto कथ सापि पदपद्ध-
तिरिह etc. infra.

इमानि विद्याधरराजलक्ष्मीसाम्राज्यचिह्नानि परिस्फुटानि ।

तत्साधु दृष्ट्वा पदपङ्क्तिरेषा प्रह्लादसूनोः पवनंजयस्य ॥ ५० ॥

एतानि नूनं तत्सहचारिणः कालमेघस्य पदानि । तदिदानीमिमा-
मेव पदपङ्क्तिमनुसरन् गच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) कथं सापि
पदपद्धतिरिह जगति संस्थिते शिलातले न दृश्यते । तत् क इवा-
त्रोपायः । (विलोक्य) अये, अयं मकरन्दवापिकातीरोपान्ते पवनं-
जयस्य प्रियसखनिर्विशेषो गजवरः कालमेघस्तिष्ठति । तद् दृष्ट एव
पवनंजयः । (उपसृत्य)

भद्रं भद्रगजप्रवेक भवते किं त्वं सुखं वर्तसे

कच्चित्ते कुशली स च प्रियसखः प्रह्लादराजात्मजः ।

यत्स्नेहादनुगच्छतात्रभवता कृच्छ्रानुभूता दशा

केदानीं पवनंजयः स दयिताविश्लेषदुःखी स्थितः ॥ ५१ ॥

(कर्णं दत्त्वा) अये, मन्दंस्निग्धेन कण्ठगर्जितेन तिर्यगावलितकन्धरो
मद्वचनमसौ प्रतिगृह्णाति, तदासन्नवर्तिना भवितव्यं पवनंजयेन ।
यावदिहैव मकरन्दवापिकातीरोद्देशे विचिनोमि । (परिक्रम्य, पुरो,
विलोक्य च सशङ्कम्)

कस्येदं सशरं धनुर्निपतितं (निरूप्य) नामाक्षराणि स्फुटं

दृश्यन्ते पवनंजयस्य विशिखेष्वेतानि (सशोकम्) तत् किं न्विदम् ।

(विभाव्य) मन्ये प्राणसमावियोगविवशात्तस्याग्रहस्तादिदं

स्रस्तं तत्कुसुमायुधेन स कथं कष्टं दशां नीयते ॥ ५२ ॥

(पुरो विलोक्य, सशङ्कम्)

कोऽयं भोः कुसुमास्तरे कमलिनीतीरे लतामण्डपे

ध्यानैकाग्रमना निमील्य नयने रोमाञ्चमामुञ्चति ।

1 B D पर्वतजगति. 2 D मद्रं for मद. 3 B D insert before स्रस्त the
stage direction सविषादम्. 4 D विलोक्य दृष्ट्वा सशङ्कम् ।

आं ज्ञातं विरहे मनोरथशतप्रत्याक्षितप्रेयसी-

गाढालिङ्गनसंगमोत्सवरसव्यापारपारंगतः ॥ ५३ ॥

(निरूप्य) कथमयं पवनंजय एव संवृत्तः ।

एतन्मातङ्गकण्ठे गुणकषणकिणोद्भासि जङ्घाद्वयं तत्
सोऽयं ज्याघातशंसी कृतबहुसमरंश्यामितार्धः प्रकोष्ठः ।

ऊर्णां सेयं ललाटे कथयति विजयार्धैकसाम्राज्यलक्ष्मीं
तेजश्चैतत्तदेव प्रतिहतनिखिलारातिचक्रप्रभावम् ॥ ५४ ॥

(साक्षम्) तत् कथमेनमाश्वासयिष्यामि । (विचिन्त्य)

प्राप्तस्यैवं शोचनीयामवस्थां प्रत्याश्वासायास्य नान्योऽस्त्युपायः ।

अर्हत्येका सा समाश्वासनायामित्थंभूतस्याञ्जना वह्नभस्य ॥ ५५ ॥
तदिदानीं किमपरं विलम्ब्यते । भवतु । एवं तावत् । (इति निष्क्रान्तः
प्रतिसूर्यः ।)

(ततः प्रविश्यञ्जना वसन्तमाला च ।)

अञ्जना—हला वसन्तमाले, अत्तणो मंदभाअत्तणं जाणंतीए अज्ज
वि अज्जउत्तदंसणसंभावरणं ण पत्तिआअदि मे हिअअं । [सखि
वसन्तमाले, आत्मनो मन्दभागत्वं जानन्त्या अद्याप्यार्यपुत्रदर्शनसंभावनं न
प्रत्याययति मे हृदयम् ।]

वसन्तमाला—असंपत्तिं^१ए, किं महाराअपडिसूरो अण्णहा कहेइ ।
ता तुवरदु भट्टिदारिआ । [असंप्रत्यये, किं महाराजप्रतिसूर्यो अन्यथा
कथयति । तस्मात् त्वरतां भर्तृदारिका ।]

(उमे परिक्रामतः ।)

वसन्तमाला—(पुरो निर्दिश्य) भट्टिदारिए, एअं चंदणलआवरअं
जाव पविसम्ह । [भर्तृदारिके, एतच्चन्दनलतागृहं यावत्प्रविशावः ।]

(उभे प्रविशत ।)

अञ्जना—(दृष्ट्वा, सविषादं सहसोपसृत्य कण्ठे गृह्णाति)

वसन्तमाला—(सवाष्पम्) हुं किं एदं । [हु किमेतत् ।] (पादयो-
पतति)

पवनंजयः—(यदृच्छया परिष्वजन् स्पर्शं रूपयित्वा सोच्छ्वासम्)

एतत्तावत्कुसुमसदृशं बाहुयुग्मं तदेव

प्रेयस्या मे स्तनतटयुगं पीनमेतत्तदेव ।

किं संकल्पा मम परिणताः किं मनोभ्रान्तिरेषा

किं स्वप्नोऽयं भवतु नयने नाहमुन्मीलयामि ॥ ५६ ॥

अञ्जना—(साक्षम्) अधष्णाए मए एआरिसं दसं णीदो
अज्जउत्तो । [अधन्यया मयैतादृशीं दशां नीत आर्यपुत्रः ।]

पवनंजयः—(सोत्कण्ठम्) प्रियादर्शनकुतूहलि त्वरयति मामिदं
मनः । भवतु । शनैरुन्मील्य पश्यामि । (तथा दृष्ट्वा, सहर्षं सविस्मयं च)
कथं दिष्ट्या स्वयमेव प्रिया संवृत्ता । (आत्मानं प्रति)

त्वत्संकल्पैरग्रतो वर्तमाना या बाहुभ्यां गाढमालिङ्गिताद्य ।

आत्मन्दिष्ट्या वैर्वसे सा स्वयं ते साक्षाद्देशा प्राणनाथैव जाता ॥ ५७ ॥

(उत्थाय परिष्वजते ।)

अञ्जना—(सवाष्पम्) जेटु अज्जउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

वसन्तमाला—जेटु भट्टा । [जयतु भर्ता ।]

पवनंजयः—(सस्मितम्) वसन्तमाले, कथमिदानीं युवामिहागतौ ।

वसन्तमाला—भट्टा, एत्तिअं कालं महाराअपडिसूरो इमादो
वणादो पसूदाए भट्टिदारिआए तुह महाभाएण पुत्तेण सह अन्हे
घेत्तूण अप्पणो अणूरुहदीवं गदुअ तहिं चेअ ठाविअ ठिओ । [भर्तः,

1 Thus A B. The word पवनजयं is to be expected before कण्ठे.
2 A वर्तसे. 3 B D सविस्मयम्. 4 A omits इह. 5 B इणूरुहदीवं.

एतावन्तं कालं महाराजप्रतिसूर्योऽस्माद्द्वन्वात्प्रसूतायां भर्तृदारिकायां तव महा-
भागेन पुत्रेण सहास्मान् गृहीत्वा आत्मनोऽनूरुहद्वीपं गत्वा, तस्मिन्नेव स्थाप-
यित्वा स्थितः ।]

पवनंजयः—(सहर्षम्) क्वेदानीमाञ्जनेयः ।

वसन्तमाला—भट्टा, वेअङ्घ्रिअं गटअ महूसवपुरस्सरं पुत्तप्पढम-
दंसणं कादव्वं ति दाणिं महाराअपडिसूरेण जादो ण आणीदो ।
दाणिं च महाराअपडिसूरेण तुह उत्तंतणिवेदणपुरस्सरं भट्टिदारिअं
गण्हिअं इध आअदेण णिदिट्ठं चंदणलआघरअं अम्हेहि पविट्ठं ।
[भर्तः, विजयार्धं गत्वा महोत्सवपुरःसरं पुत्रप्रथमदर्शनं कर्तव्यमितिदानीं
महाराजप्रतिसूर्येण जातो नानीतः । इदानीं च महाराजप्रतिसूर्येण तव वृत्तान्त-
त्तिवेदनपुरःसरं भर्तृदारिकां गृहीत्वा इहागतेन निर्दिष्टं चन्दनलतागृहमस्माभिः
प्रविष्टम् ।]

पवनंजयः—(सहर्षम्) क्व नु खलु तत्रभवान् प्रतिसूर्यः ।

वसन्तमाला—अम्हाणं एत्थ पुव्वोवआरिणं गंधव्वराअमणिचूडं
तुह दंसणत्थं सद्दावेदुं इमं चेअ तेसं^३ आवासं रअणऊडगिरिं आरुढो ।
[अस्माकमन्न पूर्वोपकारिणं गन्धर्वराजमणिचूडं तव दर्शनार्थं शब्दापयितुमिम-
मेव तेषामावासं रत्नकूटगिरिमारूढः ।]

(पुरो निर्दिश्य)

एसो अ सह एव्व तेण आअच्छदि । [एप च सहैव तेनागच्छति ।]

पवनंजयः—

प्रत्यवस्थापितो येन नमिवंशो महात्मना ।

तमिदानीं वयं तन्वि द्रक्ष्यामस्तव मातुलम् ॥ ५८ ॥

(निष्क्रान्ता सर्वे ।)

इति श्रीहस्तिमलेन विरचितेऽञ्जनापवनंजयनाम नाटके
पष्ठोऽङ्कः समाप्तः ।

1 A गेण्हा, B गण्हेअ 2 A omits तेस. 3 A B D तदिरानी. 4 D *नाम-
जनापवनजय नाम नाटक पष्ठोङ्कः ।

अथ सप्तमोऽङ्कः ।

(तत प्रविशत्यलङ्कृतो विदूषक ।)

विदूषकः—(आत्मानं निर्वर्ण्य) कस्स खु एदाणि भूसणरअणुम्भेस-
दुप्पेक्खाइ अंगाइ मे दंसिअ सलाहेमि । (पुरो विलोक्य) एसा
खु वसंतमाला इदो आअच्छदि । जाव इमाए दंसेमि [कस्य खल्वे-
तानि भूषणरत्नोन्मेषदुप्पेक्ष्याणि अङ्गानि मे दर्शयित्वा श्लाघयामि । (पुरो
विलोक्य) एषा खलु वसन्तमाला इत आगच्छति । यावदस्या दर्शयामि ।]

(प्रविश्य)

वसन्तमाला—^१अंमो, एसो खु विसंघडिअभूसणप्पहाविअडंगो
आगच्छइ अज्जपहसिओ । [अहो, एष खलु विसंघटितभूषणप्रभाविकटाङ्ग
आगच्छति आर्यप्रहसितः ।]

विदूषकः—(उपसृत्य) होदि वसंतमाले, दक्ख मे रूअसोहग्गं ।
[भवति वसन्तमाले, पश्य मे रूपसौभाग्यम् ।]

वसन्तमाला—(सस्मितम्) अज्ज, केण खु सि एवं पसाहिओ ।
[आर्य, केन खल्वस्येवं प्रसाधितः ।]

विदूषकः—होदि, अअं खु अरिदमपसण्णाकित्तिपमुहेहि तत्तहो-
दीए अंजणाए भाउजणेहि वअस्सस्स जोवरज्जाभिसेअकल्लाणे जामा-
दुणो पिअवअस्सो त्ति करिअ एवं पसाहिओ । [भवति, अयं खल्व-
रिंदमप्रसन्नकीर्तिप्रमुखैस्तत्रभवत्या अज्जनाया आतृजनैर्वयस्यस्य यौवराज्याभि-
षेककल्याणे जामातुः प्रियवयस्य इति कृत्वा एवं प्रसाधितः ।]

वसन्तमाला—जुज्जइ । [युज्यते ।]

विदूषकः—कहिं दाणिं तुमं^३ सत्तरं पत्थिदा । [क्वेदानीं त्वं
सत्तरं प्रस्थिता ।]

I D has श्रीमत्प्रभेदुमुनये नम. and omits अथ सप्तमोऽङ्कः, B adds तयम-
दारिणे (?) before this stage direction, २ D अहो. ३ D तुवं.

वसन्तमाला—अञ्ज, दाणिं खु महाराअपडिसूरो अणूरुह-
दीवादो वच्छं हणूमंतं गण्हिअ आअमिस्सदि । ता मिस्सकेसिपुर-
स्सरेण सह सहीअणेण वच्छं हणूमंतं पञ्चागमिदुं गच्छेमि ।
[आर्य, इदानीं खलु महाराजप्रतिसूर्योऽनूरुहद्वीपाद्वत्सं हनूमन्तं गृहीत्वा
आगमिष्यति । तस्मान्मिश्रकेठीपुरःसरेण सह सखीजनेन वत्सं हनूमन्तं प्रत्या-
गन्तुं गच्छामि ।]

विदूषकः—सब्रो वि खु मिस्सकेसिपमुहो तुह सहीअणो अन्ते-
उरमहत्तराए जुत्तिमदीए सह पञ्चागमणसत्तरो को कालो णिग्गओ ।
ता एहि, वअस्सस्स पासं गमिअ तेण एव सह वच्छं हणूमंतं
पेक्खिस्सम्ह । [सर्वोपि खलु मिश्रकेठीप्रमुखस्तव सखीजनोऽन्तःपुरमहत्त-
रया युक्तिमत्या सह प्रत्यागमनसत्वरः कः कालो निर्गतः । तस्मादेहि, वयस्यस्य
पार्श्वं गत्वा तेनैव सह वत्सं हनूमन्तं पश्यावः ।]

वसन्तमाला—जइ एवं, एहि तहिं गच्छम्ह । [यद्येवम्, एहि
तत्र गच्छावः ।] (परिक्रम्य निष्क्रान्तौ ।)

प्रवेशकः ।

(तत. प्रविशति कृताभिषेक. पवनंजय. सहाञ्जनया, विदूषको वसन्तमाला च ।)

विदूषकः—इदो इदो (सर्वे परिक्रामन्ति ।) एसो अत्थाणमंडवो ।
जाव पविसदु वअस्सो (सर्वे प्रविशन्ति ।) (पुरो निर्दिश्य) वअस्स एअं खु
सज्जिअं मोत्तिअविआणस्स अधोतले सीहासणं । जाव अलंकरिज्जउ ।
[इत इतः । (सर्वे परिक्रामन्ति ।) एव आस्थानमण्डपः । यावत्प्रविशतु वयस्यः ।
(सर्वे प्रविशन्ति ।) (पुरो निर्दिश्य) वयस्यैतत्खलु सज्जितं मौक्तिकवितानस्या-
धस्तले सिंहासनम् । यावदलंक्रियताम् ।]

पवनंजयः—प्रिये, उपविश्यताम् ।

(सर्वे यथोचितमुपविशन्ति ।)

अञ्जना—हला वसन्तमाले, ण खु दुक्करं¹ णाम दव्वस्स, जं अम्हे वि णाम सव्वलोअसंभावियं अञ्जउत्तपासं पुणो वि आअदा ।
[सखि वसन्तमाले, न खलु दुक्करं नाम दैवस्य यदावामपि नाम सर्वलोकसं-
भावितमार्यपुत्रपार्श्वं पुनरप्यागते ।]

वसन्तमाला—भट्टिदारिए, जं सच्चं जम्मंतरं विअ एअं मे पडि-
भाअइ । [भर्तृदारिके, यत्सत्य जन्मान्तरमिवैतन्मे प्रतिभाति ।]

पवनंजयः—

एको विधिः कृतदयः प्रतिसूर्य एकः

सत्यं सखीसहचरो मणिचूड एकः ।

एते पुनः परिणता मम भागधेयात्

त्वदर्शनाय ननु गाँत्रनिबन्धनानि ॥ १ ॥

चिरायते खलु वत्सं हनूमन्तमानेतुं गतो महाराजप्रतिसूर्यः ।

वसन्तमाला—(विलोक्य) जह एसो हरिसुप्फुल्लवअणो समंतदो
परिब्भमइ जणो, तह तक्केमि आअदो वच्छं हणूमंतं गण्हिअ महा-
राअपडिसूरो त्ति । [यथैष हर्षोत्फुल्लवदनः समन्ततः परिभ्रमति जनः,
तथा तर्कयामि, आगतो वत्सं हनूमन्तं गृहीत्वा महाराजप्रतिसूर्य इति ।]

पवनंजयः—(विलोक्य) वसन्तमाले सम्यगुपलक्षितम् । इह हि

संरम्भात् कवरीभरे विशिथिले विन्यस्य वामं करं

नीवी विश्लथमेखलां करतलेनान्येन संधार्य च ।

अंसादुच्छ्वसितां स्तनांशुकदशां धृत्वा कपोलेन च

ग्रीत्या धावति सर्वतोऽपि सहसा शुद्धान्तकान्ताजनः ॥ २ ॥

अपि च

भूयो यष्टिमितस्ततः क्षितितले न्यस्यन् पुरश्चञ्चलं

संभ्रान्तः शिरसाऽऽकुलाकुलमसावुष्णीषपट्टं दधत् ।

1 D दुक्कर. 2 obscure, B नात्र निबन्धनानि.

उद्धृत्यैव च लम्बलम्बसधुना प्रेङ्खोलितं कञ्चुकं
हृष्यन्नेष पुराणकञ्चुकिजनः कृच्छ्रादितो धावति ॥ ३ ॥

वसन्तमाला—अंमो, सअलं वि राअउलं हरिसणिभ्रं लक्खिज्जइ ।

[अहो, सकलमपि राजकुलं हर्षनिर्भरं लक्ष्यते ।]

पवनंजयः—(अञ्जनां विलोक्य)

दृशौ हर्षोद्घ्राष्ये विगणितनिमेषव्यतिकरे
कृतार्थीकुर्वाणः शिरसि मुहुराघ्राय च मुदा ।
भुजाभ्यामाश्लिष्यन् घनपुलकिताभ्यां तव सुतं
हनूमन्तं कुर्या सुतनु पदभाशासनगिराम् ॥ ४ ॥

विदूषकः—(सहर्षं, पुरो निर्दिश्य) वअस्स, दक्ख । एसो खु
महाराअपडिसूरो वच्छं हणूमतं गण्हअ दंतवलहिवट्टिणो महेन्द्राअ-
पमुहेहि सहिअस्स महाराअस्स सआसादो णिग्गमिअ इहं आअच्छइ ।
[वयस्य, पश्य । एष खलु महाराजप्रतिसूर्यो वत्सं हनूमन्तं गृहीत्वा दन्तवलभि-
वर्तिनो महेन्द्रराजप्रमुखैः सहितस्य महाराजस्य सकाशाञ्जिर्गत्य इहागच्छति ।]

(सर्वे दृष्ट्वा सहर्षमुत्तिष्ठन्ति ।)

पवनंजयः—(निर्वर्ण्य)

प्रभातरम्यामुदयाचलस्य लक्ष्मीं विभर्ति प्रतिसूर्य एषः ।
उद्यन्निवासौ तरुणो विवस्वान् वत्सो हनूमान्मिवंशकेतुः ॥ ५ ॥

(तत. प्रविशति हनूमन्तमादाय प्रतिसूर्यं ।)

प्रतिसूर्यः—वत्स हनूमन् पश्य ते पितरं, य एष

प्रभावमहतो विश्वजगदाह्लादकारिणः ।

सतो गुणगणस्यापि प्रभवो भवतोऽपि च ॥ ६ ॥

हनूमान्—(विलोक्य सहर्षम्) एसो अ आउओ । [एष च जावुकः ।]

1 A D दक्खिज्जइ, D chāyā लक्ष्यते 2 A B D इद (=इध). 3 A B
प्रभातमहतः. 4 A B असो अअपउवि(?), D chāyā एष आवुक, corrected
as आर्यपुत्रः.

विदूषकः—(उपसृत्य) जेदु महाराओ । [जयतु महाराजः ।]

अञ्जना—(उपसृत्य) माउल, वंदामि । [मातुल, वन्दे ।]

प्रतिसूर्यः—वत्से, कल्याणिनी भव ।

पवनंजयः—महाराज, एष प्राह्लादिः प्रणमति ।

प्रतिसूर्यः—युवराज, चिरं जीव । वत्स हनूमन्, अभिवन्दस्व ते पितरम् ।

हनूमान्—आउअ, वंदामि । [आवुक, वन्दे ।]

पवनंजयः—(सन्नेहम्) वत्स, आयुष्मान् एधि । (परिष्वजते ।)

वसन्तमाला—एअं भद्दासणं जाव अलंकरेदु महाराओ । [एतद्भद्रासनं यावदलं करोतु महाराजः ।]

प्रतिसूर्यः—युवराज, आसनमलंक्रियताम् ।

(सर्वे यथोचितपमुविशन्ति ।)

पवनंजयः—हनूमन्, वन्दस्व ते पितृसखम् ।

हनूमान्—(उत्थायोपसृत्य) ताद, वंदामि । [तात, वन्दे ।]

विदूषकः—(सन्नेहं परिष्वज्य, अङ्कमारोप्य च) वच्छ, दिग्घाऊ होहि । वच्छ, पणसेहि अत्तहोदि । [वत्स, दीर्घायुर्भव । वत्स, प्रणमात्र-भवतीम् ।]

हनूमान्—(उत्थायोपसृत्य च) अंव, वंदामि । [अम्ब, वन्दे ।]

अञ्जना—जाद, दिग्घाऊ होहि । [जात, दीर्घायुर्भव ।]

वसन्तमाला—जाद, उपविसेहि । (आत्मनोऽङ्क उपवेश्य) अंमो, सच्चं खु तं, जीअंतो भदं पावेइ त्ति । जं अम्हे अपदाणसदाणं भाअणं जादा । [जात, उपविश । (आत्मनोऽङ्क उपवेश्य) अहो, सत्वं खल्लु तत्, जीवन् भद्रं प्राप्नोतीति । यद्वयमपदानशतानां भाजनं जाताः ।]

विदूषकः—होदि वसन्तमाले, भणाहि दाच तुम्हाणं माअंगमालिणी-
उत्तंतं । [भवति वसन्तमाले, भण तावसुपयोर्मातद्रमालिनीवृत्तान्तम् ।]

वसन्तमाला—अज्ज, कहं विअ भणामि तं अइदारुणं उत्तंतं जं
दाणिं वि सुमरंतीण वेवदि मे हिअअं । अज्ज किं ति गअं पि तं
सुमरावेध^१ । [वार्यं, फणमिअ भणामि तमनिद्रारुणं वृत्तान्तं यमिदंतीमपि
स्मरन्त्या वेपते मे तदयम् । अज्ज किमिति गतमपि तं सारयथ ।]

प्रतिसूर्यः—तेन हि श्रूयताम् ।

विदूषकः—अवहिदो स्मिह । [अवहितोऽस्मि ।]

प्रतिसूर्यः—ततः खलु तावत्सरोवणसरस्तीरान्निरुद्धापि सुहुः
साम्प्रमियमप्लना महेंद्रपुरमवगन्तुं प्रोत्साहयन्त्या वसन्तमालया,
जीवितनिरपेक्षत्वाद्, व्यामुग्धत्वाच्च स्त्रीप्रकृतेः, तादृग्विधत्वाच्च
भवितव्यस्य, तद्वचनमप्यनभ्युपगच्छन्ती, प्रेर्यमाणेव प्रतीपवर्तिना
विधिना, तामेव क्रूरमृगदूपितां, दुःसंचरस्थपुटपापाणशकलशर्कराचि-
ताम्, आमूलकण्टकितव्रततिकच्छवृताममानुपगोचरां मातङ्गमालिनीं
ग्रीषिष्यत् ।

विदूषकः—तदो । [ततः ।]

प्रतिसूर्यः—ततस्तामेव मातङ्गमालिनीमदृष्टमार्गतया निर्लेक्ष्यं सम-
न्ततः परिभ्रमन्तीभ्यां यदृच्छया गन्धर्वराजमणिचूडावासस्य रत्नकूट-
गिरेः पादोपशल्यभूमिरुत्पत्तिस्थानमिव कुसुमसमयस्य, विहारोद्देश
इव गन्धवहस्य, प्रणयिनीव नन्दनवनस्य, वनमाला समासादिता ।

पवनंजयः—ततः ।

1 A सुमरापिध, chāyā सारयिध (=सारयथ). 2 A chāyā यदिदानीमपि-
3 B प्राविशत् 4 B D add before this the following विदूषकः—गिहुरा खु
तत्तहोदी । पवनंजयः—दुरतिक्रमा हि भवितव्यता ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च किञ्चिदिव समुच्छ्वसितेन हृदयेन तत्रैव निवासयोग्यप्रदेशं मार्गयन्त्याविमे चिरात्तस्यैव गिरेः पूर्वदिग्भाग-
श्रितं विविक्तरमणीयं गुहामुखमासीदताम् ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च तत्रैव समेताभ्यामाभ्याम्

आत्मन्येकमकल्मषं निशमयन्नात्मानमेवात्मना

निर्ग्रन्थो मुनिपुङ्गवो नियमिताशेषेन्द्रियोपप्लवः ।

पर्यङ्कासनमास्थितोऽमितगतिस्त्रैलोक्यदर्शी^१ तपः

साक्षान्मूर्तिमद्ग्रतः स भगवान् दिष्ट्या समालोकितः ॥ ७ ॥

पवनंजयः—नमो भगवते त्रिज्ञानचक्षुषे ।

प्रतिसूर्यः—ततश्चैते तद्दर्शनसौख्येन सहसाविस्मृतवनगहनपरि-
भ्रमणायासे परितुष्टेन मनसा भगवन्तममितगति विधिवत्परीत्य भक्त्या
कृतप्रणामे नातिसंनिकृष्टमुपविष्टे ।

अञ्जना वसन्तमाला च—णमो तस्स आवण्णसरण्णस्स ।
[नमस्तस्सा आपन्नशरणाय ।]

प्रतिसूर्यः—ततश्च स भगवानमितगतिस्तत्काल एव परिनिष्ठा-
पितयोगः करुणार्द्रचक्षुषा मुहूर्तमेव निरीक्ष्य प्रशान्तगम्भीरया गिरा
समभाषत । यथा । वत्से अञ्जने, मा स्म शोच । इदं हि ते
जन्मार्जितं कर्म यद्भर्तृविरहोऽनुभूयते । पर्यवसितप्रायं च तत्कर्म ।
अचिरेणैव च महाभागं पुत्रं प्रसविष्यसे । ततश्च कियत्यपि गते
काले भर्तारं च ते द्रक्ष्यस्येव पवनंजयमिति । एवं च श्रुतिसुखमा-
कर्ण्य मुनेर्वचः प्रत्यक्षेणैव सर्वमप्यनुभवन्त्याविव तं वृत्तान्तमुपरचित-
प्रणामाञ्जली भगवन्तमवन्देताम् ।

1 D *त्रैलोक्यदर्शी. 2 After एव च B D add सविस्मयं सहर्षं च.

पवनंजयः—दिव्यचक्षुषो हि महर्षयः ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च कंचित्कालं कृतयथोचितसुखसंभाषणः स्थित्वा स सूनृतवाक्, 'भद्रे युवाभ्यामस्यामेव गुहायां यावत्प्रसूतिसमयं स्थातव्यम्' इत्युक्त्वा स्वयमन्तर्धिसगात् ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च तस्यामेव भगवतो मुनेरमितगतेः पर्यङ्केण कृतयथार्थनाम्नि पर्यङ्कगुहायामिमे चिरमावसताम् ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—अथ कदाचिद्वतरति सवितरि पूर्वतरं दिशो भागं स्वावासोन्मुखेषु च वनमृगेषु समन्ततः संचरत्सु

दंष्ट्राचन्द्रफलाकरालवदनः संक्षोभयन्काननं
विस्फूर्जद्धनगर्जितप्रतिभयस्तां भूमिमभ्यापतत् ।

हेलादारितगन्धसिन्धुरशिरोनिष्ठधूतरक्तच्छटा-

चर्चाभ्यर्चितभूरिकेसरभरः पञ्चाननः क्रोधनः ॥ ८ ॥

अञ्जना—(ससाध्वसम् अक्षिणी निमील्य) कहां पञ्चकखं विअ दक्खिअदि दाणि पि सो भीसणो पंचाणणो । [कथं प्रत्यक्षमिव दृश्यते इदानीमपि स भीषणः पंचाननः ।]

वसन्तमाला—भट्टिदारिए, दाणि वि केसरिहृदअं सुमरन्तीए वेवदि मे हिअअं । [भट्टिदारिके, इदानीमपि केसरिहतकं स्मरन्त्या वेपते मे हृदयम् ।]

पवनंजयः—

वसन्तमालासहितां सजीवितामिहाञ्जनां मे पुर एव पश्यतः ।

मनो न विश्वासमुपैति कातरं वने हरिं कः किल वारयेदिति ॥ ९ ॥

1 A कृतयथार्थनाम्नीं पर्यङ्कगुहामिमे चिरमावसताम्. 2 D हेलोदारित°.

विदूषकः—(सविषादम्) अत्तहोदीपासं सीहो आअदो त्ति सुणं-
तस्स वि मे वलिअं संखुहिअं हिअअं । किं पुण पच्चक्खं दक्खंतीए
वराईए वसंतमालाए । [अत्रभवतीपाश्वं सिंह आगत इति शृण्वतोऽपि मे
बलवत्संभ्रुभितं हृदयं, किं पुन. प्रत्यक्ष पश्यन्त्या वराक्या वसन्तमालाया. ।]

प्रतिसूर्यः—ततश्चैषा वसन्तमाला ससंभ्रमं 'परित्रायध्वं परित्रा-
यध्वमिमां केसरिसकाशाद्वनवासिन्यो देवता भर्तृदारिकाम्' इत्युच्चैर्वि-
लपन्ती, बलवतस्तस्मात् कृच्छ्रादमानुषगोचरे परित्रातारमपश्यन्ती,
भगवतो मुनेरमितगतेरपि वचनमन्यथाकारं शङ्कमाना तस्यैव हस्तत्रय-
मात्रप्रकृष्टस्य केसरिणः पुरस्तादपतत् ।

पवनंजय.—कष्टम्, अतिदुःश्रवं संवृत्तम् ।

विदूषकः—तारिसो खु सहीसिणेहो । [तादृशः खलु सखीस्नेहः ।]

प्रतिसूर्यः—ततश्च तद्विरिनिवासिनो गन्धर्वराजमणिचूडस्य देवी
रत्नचूडा स्त्रीजनार्तविलापश्रवणेन किमिदमिति तत्रैव दृष्टिमितस्ततो
निपातयन्ती सम्यग् दृष्ट्वा ससंभ्रमम् 'आर्य', परित्रायस्व त्वरितमिमै
अग्रणे स्त्रियौ त्वत्प्रतिवासवर्तिन्यौ कृतान्तसदृशादमुष्मान्मृगरिपोः'
इति न्यवेदयत् ।

अथ स च मणिचूडस्तत्र गन्धर्वराजो

विकृतशरभरूपस्त्रातुकामो निपत्य ।

मृगपतिमभियातं तदक्षणं तं गृहीत्वा

विवुर्धर्पथमुपेतो नीतवान् कापि दूरम् ॥ १० ॥

I B D पेक्खतीण. 2 A omits कृच्छ्रात्. 3 A B D अपि, perhaps for अति.
4 D आर्यपुत्र. 5 B °पदन् 6 B दूरे.
षव० नाट० 8

पवनंजयः—इयं महतां शैली ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च शरभव्यापारदर्शनाधिकतरसंजातसंत्रासविक्रुवे पुनरेते समाश्वासयितुं तत्कालसंनिहिता रत्नचूडा, 'सख्यौ मा स्म भैष्टम्' इति समवस्थापयन्ती, यथावन्निवेदितस्ववृत्तान्ता, के युवां, कुतो वा पुनरागते, किं वा युवयोरिहागमनस्य कारणमित्यपृच्छत् ।

अञ्जना—णिज्जणे वि अरण्णे तारिसं समस्सासं लंभिअ एआ-रिसभाअवेआ अहं पुणो वि अज्जउत्तं दक्खिस्सं ति समुच्छसिदं तह हिअअं । [निर्जनेप्यरण्ये एतादृशं समाश्वासं लब्ध्वा एतादृशभागधेयाहं पुनरप्यार्यपुत्रं द्रक्ष्यामीति समुच्छ्वसितं तथा हृदयम् ।]

प्रतिसूर्यः—ततश्च यथावद्वसन्तमालानिवेदिताञ्जनावृत्तान्ता रत्न-चूडा संजातसखीस्नेहा संवृत्ता । अनन्तरं च स्वयंमागत्य गन्धर्व-राजमणिचूडो रत्नचूडानिवेदिताञ्जनावृत्तान्तः संजातसौहार्देन मनसा, वत्से मा स्म शोच, अहं हि ते महाराजमहेन्द्रनिर्विशेषः, तत् स्वामिमां भूमिमनुप्रविष्टासि स्वैरमिहैव स्वीयतामित्यभ्यधात् ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—इत्थं च रत्नचूडया प्रतिदिनप्रवर्धमानविस्मम्भतया सुखेन गच्छति काले कदाचित्

बालार्कमिव माहेन्द्री दिक् परं तेजसां निधिम् ।

इमं वत्सं हनूमन्तं प्रासविष्ट्रेयमञ्जना ॥ ११ ॥

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च यदृच्छया विमानमारुह्य तत्रैव गच्छता मया वत्साया अञ्जनाया वनगहनाभ्यन्तरे प्रसवं शोचन्त्याः श्रुतो वसन्त-मालाया विलापध्वनिः ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च तस्मिन्नमानुषगोचरे विपिने स्त्रीजनपरिदेवना-कर्णनेन किमिदमिति रणरणकेन तामेव पर्यङ्कगुहामवातरम् ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च महर्शनादेते संजातप्रत्याश्वासे अपि स्त्रीजन-सुलभया कातरतया पुना रोदितुं प्रवृत्ते ।

पवनंजयः—अनुभूतं हि शोकं द्विगुणयति बन्धुजनसांनिध्यम् ।

प्रतिसूर्यः—ततश्चाहं वसन्तमालानिवेदिताञ्जनावृत्तान्तोऽनूरुह-द्वीपमेव वत्सामञ्जनां नेतुं व्यवसितमनास्तत्रैव रत्नचूडया सह वत्सा-मेव कुशलं प्रष्टुमायातेन गन्धर्वराजमणिचूडेन कृतसमुचितसंभाषणः क्षणमतिष्ठम् ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ताभ्यां दर्शितस्नेहानुबन्धाभ्यामनुमोदितगमना वत्सा क्रथंकथमपि विसर्जिता ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च प्रथममेव विमानमारुह्य रत्नकूटकटकस्थिताया वसन्तमालाया हस्ताभ्यामानेतुकामस्य मम हस्तावप्राप्यैव विमाना-

I D adds तत्रैव after यदृच्छय . 2 A B सान्निध्ये . 3 B 'प्रेम' for स्नेह.

हितरत्नकिरणोन्मेषतिरोहितः समादित्सुरिव रविविम्बमुत्प्लवन् सहसा
शिलातले न्यपतत् ।

पवनंजयः—(सविषादं, कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम् ।

विदूषकः—(सशोक, कर्णौ पिधाय) अहह । [अहह ।]

अञ्जना—(सास्रम्) अंभो णिट्टुरदा मे^४ जीविअस्स, जं तदा
पच्चक्खं एव वच्छं हणूमंतं सिलोच्चए पडंतं दक्खिअ णिट्टुरं एव
ठिअं । [अहो निष्ठुरता मे जीवित्तस्य, यत् तदा प्रत्यक्षमेव वत्सं हनूमन्तं
शिलोच्चये पतन्तं दृष्ट्वा निष्ठुरमेव स्थितम् ।]

वसन्तमाला—(हनूमतोऽङ्गानि स्पृशन्ती) वच्छ, दिग्घाऊ होहि ।
[वत्स, दीर्घायुर्भव ।]

विदूषकः—महाराज, अदो संगडादो परं सिग्घं कहेहि ।
[महाराज, अतः संकटात्परं शीघ्रं कथय ।]

प्रतिसूर्यः—ततश्च शोकावेगावष्टब्धयोरेतयोः स्थितयोरहमप्यन्तः-
शुष्कहृदयः सुसंभ्रमम् इमे आ स्म विभीर्तमिति समाश्वासयन्

तां वज्रपातादिव तत्क्षणेन शिलामपश्यं कणशो विशीर्णाम् ।

मध्ये शयानं च महानुभावं तर्वात्मजं बालमबालकृत्यम् ॥१२॥

पवनंजयः—(हनूमन्तमादाय परिष्वज्य च) वत्स, चिरं जीव ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च सविस्मयं सहर्षं च तमेनं हनूमन्तं चरम-
देहोऽयमिति सबहुमानमादाय वयं विमानमारोप्य अनूरुहद्वीपमेव
गताः ।

1 A विमानाहितप्रत्नरत्न etc. 2 B °विलोहित. (? विलोभितः?), D °न्मेष-
विलोहितस्य. 3 B उत्प्लुतो वत्स.- 4 A omits मे. 5 A omits स्थितयोः.- 6 A
विभेताम्, B D विभीताम्. 7 B तदात्मजम्.

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ततस्त्रैव यथावदनुष्ठितजातकर्मादिक्रियेष्वस्मासु गच्छति काले महाराजप्रह्लादेन महेन्द्रराजेन च भवद्भृतान्तनिवेदन-पुरःसरमाहूतो भवन्तमेवान्वेषुं मातङ्गमालिनीमवगाह्य समन्तादन्वि-च्छन् रत्नकूटगिरेर्वनमालामध्यवर्तिन्या मकरन्दवापिकायास्तीरे चन्दनलतागृहे वर्तमानं कल्याणाभिनिवेशनमुपलभ्य सहैव वत्सया अञ्जनया तत्रैव पुनरहमागतः ।

विदूषकः—महाराज, किं बहुणा सबे वि अम्हे तुँए पञ्चुजीविद म्ह । [महाराज, किं बहुना सर्वेऽपि वयं त्वया प्रत्युजीविता. स्तः ।]

प्रतिसूर्यः—आर्यं प्रहसित, भैवं वादीः । सर्वमेवैतद्बन्धर्वराजमणि-चूडस्य प्रसादविलसितम् ।

(तत प्रविशत्याकाशादवतीर्णो गन्धर्वराजो मणिचूड ।)

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति ।)

मणिचूडः—

सोऽयमस्मत्प्रियसखः कुमारपवनंजयः ।

अभ्युत्तिष्ठति मामद्य साञ्जनोऽपि निरञ्जनः ॥ १३ ॥

यावदुर्पसर्पामि । (उर्पसर्पति ।)

(सर्वे प्रणमन्ति ।)

मणिचूडः—महाराज प्रतिसूर्य ।

प्रतिसूर्यः—आज्ञापय ।

मणिचूडः—संभावितसौहार्देन वरुणेन पूर्वोपकृतिचोदितेन च लङ्केश्वरेण विजयार्धाधिराज्यलक्ष्मीमस्मिन्नेव यौवराज्याभिपेकमहो-

त्सवे कुमारपवनंजयाय विश्राणयितुमहमिदानीमभिहितः । इत्थं च महाराजप्रह्लादेन महेन्द्रराजेनान्यैश्च श्रेणिद्वयगतैर्विद्याधरमहत्तरैरभ्यनुज्ञातः स्वयमिहागतोऽस्मि । तद्भवताप्येतदनुमन्यताम् ।

प्रतिसूर्यः—(सहस्रम्) अनुमतमेव नः । संजातसौहार्दे भवति किं नाम जगति दुरवापम् ।

विदूषकः—(सहस्रम्) वअस्स, कल्लाणपरंपराए वड्ढेस्सि । [वदस्य, कल्याणपरंपरया वर्धसे ।]

मणिचूडः—

दत्ता तुभ्यमसौ नभश्चरगिरेः साम्राज्यरक्ष्मीर्मया
भो विद्याधरराजवंशतिलक प्रह्लादराजात्मज ।

पवनंजयः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

मणिचूडः—(पुरो निर्दिश्य)

पश्य प्रश्रयनम्रमौलिशिखरन्यस्तप्रणामाञ्जलि-
स्त्वां विद्याधरलोक एष परितः पर्युत्सुकः सेवते ॥ १४ ॥

प्रतिसूर्यः—सुसदृशमेवैतद्भवतोऽनुग्रहस्य ।

मणिचूडः—

त्वय्यासक्तं मुखरयति मामद्य सौहार्दमेतत्
किं ते भूयः प्रियमुपहराम्यन्यदाचक्ष्व सौम्य ।

पवनंजयः—

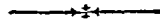
प्राप्ता कान्ता तनयसहिता खेचरश्रीश्च लब्धा
का दुष्प्रापा भवति सुमुखे श्रीस्तथाप्येतदस्तु ॥ १५ ॥

भूपालाः पालयन्तु प्रशमितनिखिलोपप्लवां भूतधात्री
काले काले पयोदा जगदभिलषितामेव वर्षन्तु वृष्टिम् ।
स्थेयासुः काव्यवन्धा बहुमतिमुचितां प्राप्य सैद्भिः कवीनां
भव्यानां जैनमार्गप्रणिहितमनसां शाश्वतं भद्रमस्तु ॥ १६ ॥

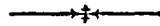
(निष्क्रान्ता सर्वे^१ ।)

इति श्रीगोविन्दभट्टारकस्वामिनः सूनुना श्रीकुमारसत्य-
वाक्यदेवरवल्लभोदयभूषणानामार्यमिश्राणामनुजेन,
कवेर्वैर्धमानस्याग्रजेन कविना हस्तिमल्लेन
विरचितेऽञ्जनापवनंजयनामनाटके
सप्तमोऽङ्कः ।

॥ समाप्तं चेदम् अञ्जनापवनंजयं नाम नाटकम् ॥



1 Thus A B D, better सद्भय 2 B D omit this After this
A B D add the following two stanzas श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरे निजभुजा-
दण्डावल्कीकृतं कर्णाटावनिमण्डलं पदनतानेकावर्नाशेऽवति । तत्प्रीत्यानुसरन् स्ववन्दु-
निवहैर्विद्वद्भिरासैः समं जैनागारसमेतसततगमे (D समेतसत्वनिगमे) श्रीहस्तिमल्लोऽ-
वसत् ॥ १ ॥, (A D add here निष्क्रान्ताः सर्वे) इति हस्तिमल्लकविचक्रवर्तिन-
कविसत्यवाक्यसदृशानुजन्मनः । रचनागुणाभिरमणीयमञ्जनापवनंजय जयति नाटकं
महत् ॥ २ ॥ 3 A विरचिताञ्जनापवनजयनामनाटके, B विरचितम् अञ्जनापवनंजय
नाम नाटक सप्तमोऽङ्कः . 4 After this A reads समाप्तं चेदमञ्जनापवनजयनाम-
नाटकम् । श्रीरस्तु । शुभ भवतु लेखकपाठकयोश्च श्रीरस्तु ।, B समाप्तं चेदम् अञ्जनापव-
नंजय नाम नाटकम् । कृतिरिय भद्रहस्तिमल्लस्य । श्रीचन्द्रप्रभाय नमः । श्रीमत्प्रमेन्दुमुनये
नमः ।, D विरचितं अञ्जनापवनंजयं नामनाटक सप्तमोऽङ्कः ॥ ७ ॥ समाप्तं चेदमञ्जनाप-
वनंजय नाम नाटक । कृतिरिय भद्रहस्तिमल्लस्य ॥ ... ॥ श्रीमते नमः ॥



नटीः—अय्य, कदमो उण पओओ परिसदो आराहइत्तओ तुह पडिभाइ । [आर्य, कतमः पुनः प्रयोगः परिपद आराधयिता तव प्रतिभाति ।]

सूत्रधारः—आर्ये, किमन्यत् । ननु भट्टारगोविन्दस्वामिसूनोर्भट्ट-हस्तिमल्लस्य कृतिर्नाटिका सुभद्रा ।

नटीः—अइ भरतकुलत्तंस, -कुदो खु स एव तुह रोअदि । [अयि भरतकुलोत्तंस, कुतः खलु स एव तव रोचते ।]

सूत्रधारः—

सुकुमारभावरम्या कान्तिमसाधारणीमसौ दधती ।

आवर्जयति सुभद्रा भरतस्य समुत्सुकं चेतः ॥ ३ ॥

(निष्कान्तौ ।)

(प्रस्तावना ।)

(तत प्रविशति राजा विदूषकश्च ।)

राजा—

अभ्येतो निधिरम्भसापचलितः कलयन्तवातैरपि

प्राप्तश्च प्रथमः कुलक्षितिभृतां व्योमापगाजन्मभूः ।

दृष्टोऽसौ रजताचलश्च वसतिर्विद्याधराणां मया

द्रष्टव्यं ननु दृष्टमेव सकलं दिग्जैत्रयात्राच्छलात् ॥ ४ ॥

विदूषकः—णाणादेशपरिभ्रमो णाम एकं सोकखं पुरिसस्स ।

[नानादेशपरिभ्रमो नामैकं सौख्यं पुरुषस्य ।]

राजा—सम्यग्गाह भवान् । यतोऽस्मामिः

आसादितां जनपदा बहुदर्गनीया

भाषान्तराणि सकलानि सुशिक्षितानि ।

देशोचितं परिचितं परिकर्म पुंसां

ज्ञातं च तत्तदनुवर्तनमङ्गनानाम् ॥ ५ ॥

विदूषकः—किं अण्णं आसंघीअदु । भुत्तं खु तेसु तेसु देसेसु सुमिद्धं तं तं भोअणं । पीआणि अ ताणि ताणि रंसायणाणि पाण-आणि । खादिआ अ अणिहविआ मोदआ । लीढो अ सो सो दुलहो लेहो । [किमन्यदाशास्यते^१ । भुक्तं खलु तेषु तेषु देशेषु सुमृष्ट तत्तद् भोजनम् । पीतानि च तानि तानि रसायनानि पानकानि । खादिताश्चानेकविधा मोदकाः । लीढश्च स स दुर्लभो लेहः ।]

राजा—आस्ताभयमौदारिकसल्लापः ।

विदूषकः—भो राअ, किं अण्णं पलवेमि । [भो राजन्, किमन्यत् प्रलपामि ।]

राजा—अस्ति वा परमप्यस्माकं द्रष्टव्यम् ।

विदूषकः—किं अण्णं दद्वं । दिद्धं दाव पुढमं वि दूरादो अभिगमणिज्जं^५ गंगासागरं । [किमन्यद् द्रष्टव्यम् । दृष्टं तावत् प्रथमपि दूराद्भिगमनीयं गङ्गासागरम् ।]

राजा—दृष्टम् । यत्र

क्षोणीभृतो हिमवतः कटकादुपेतां

दूरं प्रसारिततरङ्गभुजः स्वलन्तीम् ।

उच्च्वांसिविद्भुमलतांशुकमेत्य गङ्गाम्

आलिङ्गतीव सरितां पतिरादरेण ॥ ६ ॥

विदूषकः—दिद्धो अ सुलहतंवूली-कमुअ-वाडरमणिज्जो दक्खिणावहो । [दृष्टश्च सुलभताम्बूलीकमुकवाटरमणीयो दक्षिणापथः ।]

1 B अणेहिविआ, the reading should be अणेअविहा. 2 Thus A B, it should be आशास्यताम्. 3 A लेह, B मोदक (?). 4 B औदारिक°. 5 A अभिगमणिज्जपाद, chāyā in A however अभिगमनीयम्. 6 A उच्चासि°.

राजा—दृष्टः । यत्र हि

पर्यन्तपर्यस्ततरङ्गभङ्गस्तनांशुकामाकुलमीननेत्राम् ।

अम्भोधिरालिङ्गति ताम्रपर्णीं संमर्दविच्छिन्नविकीर्णमुक्ताम् ॥७॥

विदूषकः—दिट्टो अ पच्छाअचंदणवणराइपरिभिण्णणिअंबो
मलआअलो । [दृष्टश्च प्रच्छायचन्दनवनराजिपरिभिन्ननितम्बो मलयाचलः ।]

राजा—यतः खलु

बहन्ननङ्गस्य पुरःसरोऽसौ मन्दो मरुच्चन्दनगन्धसान्द्रः ।

रतिश्रमं हन्ति समागतानां ददाति मूर्च्छामसमागतानाम् ॥ ८ ॥

विदूषकः—दिट्टा अ सुहोपसेव्वदेशा अपरंतभूमि । जहिं खंडिअ-
एलाथवएहिं संधारिअणिउत्तरीअपच्छदासु सरसलवंग्गाअरुपाअव-
पुलिणअलसेज्जासु सोवंतेहिं सेविओ तुह सेणिएहिं संचरंतकत्थूरिआ-
हरिणणाहिगंधसुरही वेलावणवाओ । [दृष्टा च सुखोपसेव्वदेशा
अपरान्तभूमिः । यत्र खण्डितैलास्तवकेः संस्तारितनिजोत्तरीयप्रच्छदासु सरस-
लवङ्गागरुपादपपुलिनतलशय्यासु स्वपद्भिः सेवितस्तव सैनिकैः संचरत्कस्तूरिका-
हरिणनाभिगन्धसुरभिर्वेलावनवातः ।]

राजा—

एलालतानद्धलवङ्गराजीपरिष्कृतां तामपरान्तभूमिम् ।

सकौतुकं स्यान्मृगनाभिगन्धि वेलावनं वीक्ष्य न कस्य चेतः ॥९॥

विदूषकः—तदो अ अणुगअसिधुतीरेहिं समासादिअवेअड्ढेहिं
अत्तहोदो दंडरअणप्पहारुग्घाडिअवज्जकवाडउडं ओवाहिरुण
तमिस्सगुहं उत्तिण्णो अम्हेहिं दुत्तरो उम्मग्गजलाणिमग्गजलाणई-

1 A सुहोपसेव्वदेशा. B सुहोपसेव्वदेशा (chāyā in A B सुखोपसेव्वदेशा).
Reading in the text is conjectural. 2 A उगयजला, B उरमग्गजलाणई-
सघादसकडो.

संपादसंकटो । [ततश्च अनुगतसिन्धुतीरैः समासादितविजयधेरत्रभवतो
दण्डरत्नप्रहारोद्घाटितवज्रकपाटपुटामवगाद्य तस्मिन्नगुह्यामुत्तीर्णोऽस्माभिर्दुस्तर
उन्मग्नजलानिमग्नजलानदीसंपातसंकटः ।]

राजा—यत्र हि

उन्नमयति सिन्धुपयः सरिदेका युवमनः प्रियेव नवा ।

अवन्तमयति तु तदेव प्रतीपगा वल्लभेव परा ॥ १० ॥

विदूषकः—पविट्टो अ पुण तुम्हारिसाणं पिटुप्पदेसो^१ उत्तरभरहो ।
[प्रविष्टश्च पुनर्युष्मादृशानां पितृप्रदेश उत्तरभरतः ।]

राजा—यत्र खलु

मेघमुखैरुपजनितां प्रावृषमापातुकामतिक्रम्य ।

शरदिव हंसेन मया विलातराजात्मजा प्राप्ता ॥ ११ ॥

विदूषकः—अए अ अत्तहोदीए विलादराअउत्तीए उवहरिअं
वेवाहिअं सत्थिवाअणअं । [मया चात्रभवत्या विलातराजपुत्र्या उपहृतं
वैवाहिकं स्वस्तिवाचनकम् ।]

राजा—(सस्मितम्) असुलभो लम्भः ।

विदूषकः—दिट्टो अ तदो कुलाअलाणं पढमो तत्तहोदो विजअ-
वावारुत्तरसीमा हिमवंतो । [दृष्टश्च ततः कुलाचलानां प्रथमस्तत्रभवतो
विजयव्यापारोत्तरसीमा हिमवान् ।]

राजा—दृष्टः ।

कुलाचलानां प्रथमस्य यस्य मन्दाकिनी मूर्तिमतीव कीर्तिः ।

स्ववत्यजस्रं शुचिनिर्झरश्रीरासागरं व्याप्रुवती धरित्रीम् ॥ १२ ॥

विदूषकः—दिट्टा अ तदो हिमवंतसिहरादो णिवडंती भअवदी-
हेमवदी । [दृष्टा च ततो हिमवच्छिखरात् निपतन्ती भगवती हैमवती ।]

राजा—दृष्टा ।

त्रिमार्गगां यां विदुरापतन्तीं सुरालयाद् व्योम ततो धरित्रीम् ।

या पुण्यतोयेति जनस्य मान्या स्वयं पतन्ती पतितं पुनाति ॥१३॥

विदूषकाः—दिट्टो अ पुण एस मंदाइणीवेअड्डुसंगमो दाणिं
सिविरसंणिवेसीकदो । [दृष्टश्च पुनरेष मन्दाकिनीविजयार्धसंगम इदानीं
शिविरसंनेवेशीकृतः ।]

राजा—

सुरस्रवन्तीमपरेण क्लृप्तो विद्याधरणां गिरिमुत्तरेण ।

तैस्तैर्विहारैः सविशेषरम्यः श्लाघ्योऽयमन्तःपुरसंनिवेशः ॥ १४ ॥

यश्च

अस्मिन्नभूदुपवनं विजयार्धपाद—

वेदीवनं कुलगृहं सकलर्तुलक्ष्म्याः ।

लीलासरित् सुरनदीसुभगावगाहा

क्रीडाचलोऽपि रजताचल एष रम्यः ॥ १५ ॥

विदूषकः—एवं । [एवम् ।]

राजा—किमन्यद् द्रष्टव्यं पश्यसि ।

विदूषकः—दिट्ठं दाणि अण्णं द्दुड्ढं । [दृष्टमिदानीमन्यद् द्रष्ट-
व्यम् ।]

राजा—किं तत् ।

विदूषकः—एत्थ खु मंदाइणीवेअड्डुसंगमे कंडअपवादगुहा ण
दिट्ठपुष्वा । जाव सा अज्ज दीसउ । [अत्र खलु मन्दाकिनीविजयार्ध-
संगमे काण्डकप्रपातगुहा न दृष्टपूर्वा । यावत्साद्य दृश्यताम् ।]

राजा—तथास्तु ।

विदूषकः—तेण हि उट्टेदु भवं । [तेन हि उत्तिष्ठतु भवान् ।]

(उत्तिष्ठत ।)

विदूषकः—(पुरो निर्दिश्य) एदं खु अंतेउरणिवेसपासवट्टि पमद-
चणीकदं वेदीवणं । जाव ओवाहिज्जउ । [एतत् खलु अन्तःपुरनिवेशपा-
श्वंवातिं प्रमदवनीकृतं वेदीवनम् । यावदवगाह्यताम् ।]

राजा—अग्रतो भव ।

विदूषकः—इदो इदो । [इत इतः ।]

(परिकामत ।)

विदूषकः—पविट्ट म्हे वेदीवणं । [प्रविष्टौ स्त्रो वेदीवनम् ।]

राजा—(निर्वर्ण्य)

चुम्बन्वायुः स्तवकवदनं दक्षिणश्रूतयथ्याः

पौष्पं चूर्णं विकिरति हठाकृष्टभृङ्गालकायाः ।

अन्तर्गुञ्जन्मधुपवलयः पल्लवो वेपतेऽसौ

हस्तस्तस्या धुत इव मुहुर्दृष्टपुष्पाधरायाः ॥ १६ ॥

विदूषकः—इदो दक्खीअट्टु कुलणई गंगा । [इतो दृश्यतां कुल-
नदी गङ्गा ।]

राजा—अहो जाह्ववीपरिसरे कापि शोभा वासरारम्भस्य ।
अत्र हि

विमिश्रयन्नम्बुजिनीदलेषु शनैरवश्यायकणान् विकीर्णान् ।

व्याधूनयन्वाति विभातवायुर्व्याकोशकोशानि कुशेशयानि ॥ १७ ॥

(निर्वर्ण्य) असाधारणं च रामणीयकमस्याः । यतः

मन्दाकिनीतीरलतागृहेषु मन्दारपुष्पास्तरणाञ्चितेषु ।

सुराः सदैव त्रिदिवं विहाय समं रमन्ते सुरसुन्दरीभिः ॥ १८ ॥

विदूषकः—एसो अ इदो अत्तहोदो विजअस्स अद्धभूदो जह-
त्थणामा विजयद्धाअलो । [एप चेतोऽत्रभवतो विजयसार्धभूतो यथार्थ-
नामा विजयार्धाचलः ।]

राजा—(निर्वर्ण्य)

हिरण्यगर्भप्रथमाभिषेककल्याणपीठस्य तनोति गोभाम् ।

क्षीरोदपूरस्नपितस्य गौरो स्नान्याचलोऽयं कनकाचलस्य ॥ १९ ॥

विदूषकः—इदो अ एसा गंगापवेशदुवारभूदा कंडअपवाद्-
गुहा । [इतश्च एषा गङ्गाप्रवेशद्वारभूता काण्डकप्रपातगुहा ।]

राजा—(निर्वर्ण्य)

व्योभापगामुपगतां द्रुतचन्द्रकान्त-

निष्यन्दनिर्मलजलां रजताचलोऽयम् ।

पीत्वेव दूरविवृतेन गुहामुखेन

तद्वासनोपरचितां शुचितां विभर्ति ॥ २० ॥

विदूषकः—भो वअस्स, इदो सुलहदंसणिज्जासु रयदायलत्थ-
लीसु विहरंता दिट्ठीओ विलोहइस्सम्ह । [भो वयस्य, इतः सुलभदर्शनी-
यासु रजताचलस्थलीषु विहरमाणौ दृष्टीर्विलोभयावः ।]

राजा—यद्भवते रोचते ।

(परिक्रामतः ।)

राजा—(विलोक्य) कथमसौ वालाशोकतले सरसालक्तकाङ्का
पदपङ्क्तिः । (निर्वर्ण्य)

चर्चेव कुङ्कुमकृता प्रततेयमग्रे

सन्ध्येन्दुखण्डरुचिरा च पदस्य मध्ये ।

पश्चाद्भुचं वहति यावकपङ्क्तिराद्री

गोरोचनाविरचितस्य विशेषकस्य ॥ २१ ॥

विदूषकः—भो वयस्य, इतो दक्खीअदु वालासोअपाअव-
चखंधणिहित्तं वि एकं अलत्तयरसोल्लियं पअं । [भो वयस्य, इतो दृश्यतां
वालाशोकपादपस्कन्धनिक्षिप्तमपि एकम् अलक्तकरसाद्रित्त पदम् ।]

राजा—(दृष्ट्वा) कस्याः खल्वयमशोकताडने यत्नः ।

विदूषकः—पाअसो एत्थ विज्जाहरीओ विहरंति । ता नूनं
एक्काए विज्जाहरसुन्दरीए सहत्थसंवड्डुणलालिअस्स इमस्स वालासो-
अस्स आआलियं कुसुमुग्गमं पेक्खिदुकामाए समप्पिअं तक्खण-
रंजिअपिंडालत्तरसणिन्भरिअराअं एअं पअं । [प्रायशोऽत्र विद्याधर्यो
विहरन्ति । तस्मान्नूनमेकया विद्याधरसुन्दर्या स्वहस्तसंवर्धनलालितस्य अस्य
वालाशोकस्य आकालिकं कुसुमोद्गमं द्रष्टुकामया समर्पितं तत्क्षणरंजितपिण्डा-
लक्तकरसनिर्भरितरागम् एतत्पदम् ।]

राजा—सुसंगतस्तरुः । (अशोकं प्रति, सवहुमानम्) अयि भोः
पादपराज,

शिरसा प्रार्थनीयेन पुलकौद्भवदारिणा ।

संभावितो नितम्बिन्या पादेन सुकृती भवान् ॥ २२ ॥

(निर्वर्ण्य) वयस्य, दृश्यतामनेनैवायममन्दभाग्यसुलभेन विद्याधरीचरण-
ताडनेन अतिव्यक्तरागसंलक्षितकोरकोद्भेदः संवृत्तः ।

विदूषकः—(विलोक्य) क्वहं एस कुप्पंतो विअ कुंभदासीअण-
पाअप्पहारेण राअं^२ संदंसेइ । [कथमेष कुप्यन्निव कुम्भदासीजनपाद-
प्रहारेण रागं संदर्शयति ।]

राजा—(अशोकं प्रति) शोभनफलञ्च ते कुसुमोद्भेदः । येन

वत्सयन्तीं सरसं^३ प्रवालमुत्सयन्तीं स्तवकं विनिर्द्रम् ।

विन्यस्तंपुष्पाग्रविशेषकान्तामाराधयिष्यस्यचिरेण कान्ताम् ॥ २३ ॥

1 A पाथिवराज. 2 A B राअस दंसेइ (,olhāyā राअे दर्शयति). But evident-
ly it is equal to. राज संदंसेइ=रागं संदर्शयति. 3 B सरसप्रवालम्. 4 B
विनिर्द्रः. 5 B विन्यस्य.

किंतु सापवादं ते वैदग्ध्यम् । कुतः

अङ्कुरान् किसलयानि कोरकान् कुङ्कुलानि कुसुमानि च क्रमात् ।
स्त्रीपदाहतिमपेक्ष्य चेद्भवान् दर्शयेन्ननु परा विदग्धता ॥ २४ ॥

विदूषकः—इदो दक्खीअदु संताडिअवालासोआए तिस्से
णिग्गमपअपंती । [इतो दृश्यतां संताडितवालाशोकायास्तस्यां निर्गमपद-
पङ्क्तिः ।]

राजा—यावदेनामनुसरामः । (परिक्रम्य विलोक्य च) नूनमस्मि-
न्नेव प्रच्छायसहकारच्छायातले मुहूर्तमीषदुद्यतैकहस्तावलम्बितप्र-
लम्बशाखायष्टिरसौ विश्रमाय स्थिता । तथा हि

श्रोणीविम्बोद्वहनजनितक्लान्तिमाश्रासहेतो-

दीर्घोच्छ्वासां पद्युगमिदं शंसतीह स्थितां ताम् ।

एकं भूमौ स्थिरविनिहितं सान्द्रलाक्षारसाङ्कं

पार्श्वे स्रस्तार्पितमवहलालक्तकं च द्वितीयम् ॥ २५ ॥

अयं च

ब्रवीति तस्याः सरसो नतभ्रुवः

कपोलघर्माम्बुकणापमार्जनम् ।

समुच्छ्वसत्पत्रलतोपमर्दना-

द्विभिन्नवर्णः सहकारपल्लवः ॥ २६ ॥

हन्त श्लाघनीयः शोचनीयश्चायं पल्लवः । (पल्लवं प्रति)

स्पृष्टोऽसि तस्याः करपल्लवेन कपोलयोः सादरमर्पितोऽसि ।

आदाय यत्त्वं न कृतोऽसि कर्णे तत्सर्वथा पल्लव वञ्चितोऽसि ॥ २७ ॥

विदूषकः—(विलोक्य) वअस्स, एदाणि इदो वि णिग्गमणपआणि ।
[वयस्य, एतानि इतोऽपि निर्गमनपदानि ।]

राजा—तेन हि ततो गम्यताम् ।

(परिक्रामत ।)

(ततः प्रविशति सुभद्रा मन्दारिका च ।)

सुभद्रा—सहि मंदारिए, कुर्थ एण्हि सहिअणो । [सखि मन्दारिके, कुत्रेदानीं सखीजनः ।]

मन्दारिका—विहारचापलादो किल परिदो वणं परिभमंतो । [विहारचापलाद् किल परितो वनं परिभ्रमन् ।]

सुभद्रा—तेण हि अण्णोसामो । [तेन हि अन्वेषयावः ।]

मन्दारिका—जं पिअसही भणादि । इदो इदो । [यत्प्रियसखी भणति । इत इतः ।]

(परिक्रामत ।)

विदूषकः—(कर्णं दत्त्वा) भो वअस्स, इदो^१ मंदारतरुसंडस्स परिदो उग्गीववणविहंगसुणिज्जंतमहुरत्तणो णेउरणिणादो उच्चरइ । [भो वयस्य, इतो मन्दारतरुषण्डस्य परित उद्गीववनविहङ्गश्रूयमाणमधुरत्वो^२ नूपुरनिनाद उच्चरति ।]

राजा—तेन हि मन्दारतरुषण्डान्तरिताः पश्यामः ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । [यन्नवानांज्ञापयति ।]

(तथा कुरुत ।)

राजा—(दृष्ट्वा, सविस्मयं सौत्सुक्यं च) अहो निर्माणकौशलं विधातुः ।
(विचिन्त्य)

शृङ्गारमालोक्य रसेषु मुख्यं

तस्योचितं प्रात्रमियं नु सृष्टा ।

1 A केत्थ 2 A इदो इदो । मंदारतरुसंडस्स etc. 3 B उच्चरइ, chāyā in A उच्चरति, in B उच्चवति. 4 A B मधुरत्वम्; मधुरत्तणो should better be rendered by मधुर्यः

अस्या विशिष्टान्त्रु गुणान्विलोक्य

शृङ्गारनामा रस एष सृष्टः ॥ २८ ॥

विदूषकः—अहो ईरिसं पि रूअं इमस्सि लोए संभावीअदि ।
[अहो ईदशमपि रूपमस्सिलोके संभाव्यते ।]

राजा—पुष्णाति च परं लावण्यमस्या वयोऽवस्था । तथा हि
कुमुद्वतीं चन्द्रमसेव दृष्टां
ज्योत्स्नामिवेन्दोरचिरोदितस्य ।
मुग्धत्वमेनां जहतीं क्रमेण
स्पृशत्यसौ संप्रति कापि शोभा ॥ २९ ॥

सुभद्रा—सहि मंदारिए, सच्चं एव सो वालांसोओ अइरेण
कुसुमुग्गमं दंसेइ । [सखि मन्दारिके, सत्यमेव स बालागोकोऽन्विरेण
कुसुमोद्गमं दर्शयति ।]

विदूषकः—कहं एसा एव असोअस्स ताडइत्तआ । [कथम्
एषा एव अशोकस्य ताडयित्री ।]

राजा—अनन्यगामिन्या पदपङ्कथैव ननु कथितम् ।

मन्दारिका—जइ ण मं पत्तिआअसि, सुदो^१ आयमिय दक्खि-
स्ससि । [यदि न मां प्रत्याययसि, श्व आगत्य द्रक्ष्यसि ।]

राजा—दिष्ट्या श्वोऽप्यागन्तव्यमनया ।

सुभद्रा—सहि, जाए उण मालईलआए आआलिअकुसुमुब्भेद-
यरं तुए दिण्णं दोहलयं, जइ एसा वि इमिणा बालासोएण समं
कुसुमिआ भवे, तदो अण्णोण्णं इमाणं उव्वाहविहिं संपादइस्सम्ह ।
[सखि, यस्याः पुनर्मालतीलताया आकालिककुसुमोद्भेदकरं त्वया दत्तं दोहलकं,

^१ I A सुतो. It should be सुओ or सुवो. ^२ A B add अ (=च) before तदो.

यद्येषाऽप्यनेन बालाशौकेन समं कुसुमिता भवेत्, ततोऽन्योन्यमनयो रुद्धाह-
विधिं संपादयिष्यावः ।]

मन्दारिका—जेण सो एव्व तुह उव्वाहविहीए पत्थावणा भवि-
स्सदि । [येन स एव तत्रोद्वाहविधेः प्रस्तावना भविष्यति ।]

विदूषकः—वअस्स, सण्हा तुह दंसणे उवस्सुदी । [वयस्य, श्लक्ष्णा
तत्र दर्शने उपश्रुतिः ।]

राजा—प्रसन्नतर्को भव ।

सुभद्रा—हला, कहिं दाणि सहिअणं अण्णेसामो । [सखि, कुत्र
इदानीं सखीजनमन्वेषयावः ।]

मन्दारिका—एसो खु अग्गदो मंदारतरुसंडो दीसइ । जाव
णं अण्णेसिज्जइ । [एष खलु अग्रतो मन्दारतरुषण्डो दृश्यते । यावदेषो^१
अन्विष्यताम् ।]

सुभद्रा—जं पिअसही भणादि । [यत् प्रियसखी भणति ।]

(परिक्रामतः ।)

राजा—(निर्वर्ण्य) चिरादवाप्तं फलं चक्षुषोः । (सौत्कण्ठमात्मगतम्)

षट्खण्डेश्वरतां विडम्बनसमां पश्यामि सारोज्जितां

तारुण्यं वयसश्च निष्फलतया कारुण्यमेवार्हति ।

वैदग्ध्यं दयितानुवर्तनविधौ वैयर्थ्यं शोच्यं च मे

कन्यारत्नमनर्घ्यमेतदचिराद्वक्षो न चेद्भूषयेत् ॥ ३० ॥

विदूषकः—वअस्स, इह एव्व आअच्छदि । किं ओसरेसो
आहु चिट्ठम्ह । [वयस्य, इहैवागच्छति । किमपसरारवोऽथवा तिष्ठारवः ।]

राजा—प्रत्यासन्ने एवैते । न तावद्दृष्टयोरारवयोरपसरणालविधः ।
तदत्र स्थितिरेव वरम् ।

मन्दारिका—एसो मंदारतरुसंडो । जाव अण्णेसेमो । [एष मन्दारतरुषण्डः । यावदन्विष्यावः ।]

सुभद्रा—सहि, तह । (परिक्रम्य राजानं दृष्ट्वा च ससाध्वसं सौत्सुक्यं चात्मगतम्) अन्मो को एसो । [सखि, तथा । (परिक्रम्य राजानं दृष्ट्वा चचात्मगतम्) अहो क एषः ।]

मन्दारिका—(सविस्मयम्) को एसो असाहारणमणुससुलहेण रूवसोहग्गेण इमं लोअं अलंकरेदि । [क एषोऽसाधारणमनुष्यसुलभेन रूपसौभाग्येन इमं लोकमलंकरोति ।]

राजा—वयस्य, उपसृत्य संभाषणमेवात्रोत्तरम् ।

विदूषकः—जं वअस्सस्स रोअदि । [यद्वयस्यस्य रोचते ।]
(उपसर्पतः ।)

विदूषकः—होदि, चकवट्टिणो पाणवल्लहा होहि । [भवति, चक्रवर्तिनः प्राणवल्लभा भव ।]

राजा—(आत्मगतम्) सुप्रयुक्तेयमाशीः । (प्रकाशम्)

कर्कशे पादपस्कन्धे निहितस्य नितम्बिनि ।

प्रवालसुकुमारस्य कुशलं चरणस्य ते ॥ ३१ ॥

सुभद्रा—(अपवार्यं) हला, किं असोअताडणं वि इमिणा दिट्ठं । [सखि, किम् अशोकताडनमप्यनेन दृष्टम् ।]

मन्दारिका—(अपवार्यं) अलत्तअरसंकिअपअपंतिं अणुसरिअ एदेण आअदेण होद्वं । [अलक्तकरसाङ्कितपदपङ्क्तिमनुसृत्य एतेन आगत्येन भवितव्यम् ।]

राजा—

अनेन तावच्चरणाम्बुजेन वामेन वामोरु तवार्चितस्य ।

युक्ता तरोः काममशोकतैव शोच्या तु सा प्रागपि तस्य रूढा ॥ ३२ ॥

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अस्मो संभाषणे वि कौशलं । (मन्दारिकां प्रति) हला, सहिअणो णं अण्णोसिदव्वो । [अहो संभाषणेऽपि कौशलम् । (मन्दारिकां प्रति) सखि, सखीजनो नन्वन्वेपितव्यः ।]

विदूषकः—अहो अदक्खिणत्तं अत्तहोदीए जं तक्खणादिद्वं अपुव्वं जणं असंभाविअ अत्तणो सहिअणं अण्णोसिदुं गच्छीअदि । [अहो अदक्षिणत्वमन्नभवत्या यत् तक्षणदृष्टमपूर्वं जनमसंभाव्य आत्मनः सखीजनमन्वेष्टुं गम्यते ।]

राजा—सुन्दरि, साप्तपदीनं सख्यं नाम । तत् किमस्मासु न पर्याप्तं सख्यम् । पश्य

अविरतमहं सेवे रम्भोरु विद्यत एव मे
तव चरणयोः श्रान्तौ^१ संवाहनेषु विदग्धता ।
सपदि शिरसा श्लाघ्यामाज्ञां वहामि नियोज्यतां
प्रियसखि ममाप्यार्द्रं सख्यं प्रतीच्छ कृतोऽञ्जलिः ॥ ३३ ॥

(सुभद्रा लज्जां नाटयति ।)

मन्दारिका—(आत्मगतम्) क्वहं अइमेत्तपसत्तं इमस्स संभाषणं । [कथम् अतिमात्रप्रसक्तमस्य संभाषणम् ।]

(नेपथ्ये नूपुरध्वनिः । सर्वे आकर्णयन्ति ।)

मन्दारिका—(ससंभ्रमम्) पिअसहि, एहि एहि । इदो ओसरम्ह । [प्रियसखि, एहि एहि । इतोऽपसरावः ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अहं किं दाणि करेमि । (सोत्कण्ठम्) अविणाम पुणो वि स एस जणो दक्खिज्जइ । [अहं किमिदानीं करोमि । (सोत्कण्ठम्) अपि नास पुनरपि स एष जनो द्रक्ष्यते ।]

1 A drops ननु. 2 A श्रान्तौ, B श्रान्ता. Reading in the text is conjectural. This stanza occurs in विक्रान्तकौरवम् V. 75.

मन्दारिका—इदो इदो पिअसहि । [इत इत्तः प्रियसखि ।]

(निष्क्रान्ते ।)

राजा—(तन्मार्गदत्तदृष्टिः) कथं गतैव सा । (सोत्कण्ठम्) कं नु खलु सा पुनरपि दृश्यते ।

विदूषकः—वअस्स, किं एकपदे उस्सुओ सि । [वयस्य, किमेकपदे उत्सुकोऽसि ।]

राजा—औत्सुक्यमिति यत्किचिदेतत् । तथा हि

स्तनतटसमुत्क्षिप्त्वा मुक्त्वावली परिवर्तिता

सुनिहितमपि स्पृष्टं कर्णोत्पलं प्रहितः करः ।

नमितवदनं सख्या न व्याजमन्तरितं मुहु-

र्मयि च निपतद्दृष्टौ न्यस्ते दृशौ स्तनचूचुके ॥ ३४ ॥

विदूषकः—वअस्स, समासणं तं णेउरसिंजिअं । कदाइ इदोगअं पिअवअस्सं सुणिअ देवी वि आअदा भवे । [वयस्य, समासन्नं तन्नूपुरसिञ्जितम् । कदाचिदितोगतं प्रियवयस्यं श्रुत्वा देव्यप्यागता भवेत् ।]

राजा—युज्यते च ।

(ततः प्रविशति देवी चेटी च ।)

देवी—हंजे रइसेणे, कहिं दाणिं अय्यउत्तो । [चेटी रतियेणे, कुत्रेदानीमार्यपुत्रः ।]

चेटी—भट्टिणि, वेदिवणं गदो त्ति सुदं मए परिअणादो । त्ता इदो एट्टु भट्टिणी । [भट्टिनि, वेदीवनं गत इति श्रुतं मया परिजनात् । तस्मादित एतु भट्टिनी ।]

(परिक्रामत. ।)

चेटी—(पुरो विलोक्य) भट्टिणि, इदो दक्ख, मंदाइणीतोअम्मि विअ हेमंवुअराइं राअदाअलत्थलम्मि लद्धपरभाअं अलत्तअरसंकं पअपंतिं । [भट्टिनि, इतः पश्य, मन्दाकिनीतोय इव हेमाम्बुजराजिं राजता-चलस्थले लब्धपरभागाम् अलक्तकरसाङ्गां पदपङ्क्तिम् ।]

देवी—(दृष्ट्वा सशङ्कम्) हला, इदो एव्व गदो अय्यउत्तो त्ति भणासि । इअं पि अलत्तअरसंका काए वि इत्थिआए पअपंती । ता अलं एत्तिण । किं ति पुणो वि अण्णेसीअदि अय्यउत्तो । एहि णिवत्तम्ह । [सखि, इत एव गत आर्यपुत्र इति भणासि । इयमपि अलक्तकरसाङ्गा कस्या अपि स्त्रियाः पदपङ्क्तिः । तस्माद्दलमेतावता । किमिति पुनरप्यन्वियते आर्यपुत्रः । एहि निवर्तावहे ।]

चेटी—भट्टिणि, णं एस विज्जाहरलोओ । सुलहो हु एत्थ संचंरंतो विज्जाहरिजणो । अलं अत्थाणे माणव्वसणेण । जइ पञ्चक्खदो दक्खिस्सिसि भट्टिणो अवराहं तदा जुत्तं क्रोवेदुं । ता एहि । इमं पअपंतिं अणुसरेमो । जेण अवरद्धो अणवरद्धो वा भट्टा जाणीअदि । [भट्टिनि, नन्वेप विद्याधरलोकः । सुलभः खल्वत्र संचरन् विद्याधरीजन. । अलमस्थाने मानव्यसनेन । यदि प्रत्यक्षतो द्रक्ष्यसि भर्तुरपराधं तदा युक्तं क्रोपितुम् । तस्मादेहि । इमां पदपङ्क्तिमनुसरावः । येन अपराद्धो अनपराद्धो वा भर्ता ज्ञायते ।]

देवी—जह पिअसही भणादि । [यथा प्रियसखी भणति ।]

(परिक्रामत. ।)

विदूषकः—(विलोक्य) वअस्स, एसा खु देवी आअच्छदि । दिट्ठिआ गदा एव्व सा अम्हाणं पाणाइ दाऊण विज्जाहरकण्णआ । [वयस्य, एषा खलु देवी आगच्छति । दिष्ट्या गतैव सा आवयोः प्राणान्दत्त्वा विद्याधरकन्यका ।]

राजा—(दृष्ट्वा) कथमलक्तकरसाङ्गामिमामेव पदपङ्क्तिमनुसरति
देवी । संग्रति हि

शङ्कानिश्चललोचना करतलं विन्यस्य सख्याः करे
लाक्षाङ्कानि पदानि वीक्ष्य सुचिरं सेष्यो गतिं भिन्दती ।
दृष्ट्वा मां च विजिह्वतारकमसावुन्नम्य किञ्चिन्मुखं
नेत्रे तत्क्षणमेव हन्त हरति प्रान्तोपरुद्धाश्रुणी ॥ ३५ ॥

तत्किमत्रोत्तरम् ।

विदूषकः—वअस्स, मा भाहि । अहं ते एत्थ णित्थारइत्तओ ।
[वयस्य, मा विभेहि । अहं तेऽत्र निस्तारयिता ।]

देवी—(राजानं दृष्ट्वा) असंतुष्टे, किं दाणिं पि ण णिवत्तेसि । णं
एसो इदं एव दिट्ठो अय्यउत्तो । [असंतुष्टे, किमिदानीमपि न निवर्तसे ।
नन्वेष इहैव दृष्ट आर्यपुत्रः ।]

चेटी—भट्टिणि, णं एत्तिएण कोविटुं अरिहेसि । [भट्टिनि, नैता-
वता कोपितुमर्हसि ।]

विदूषकः—(उपसृत्य) जेटु अत्तहोदी । [जयतु अत्रभवती ।]

राजा—(उपसृत्य)

स्वयमागमनेन तनुः सुकुमारा किमिति खेदिता सुतनु ।

ननु नाहूतः कस्मादयं जनः परिजनमुखेन ॥ ३६ ॥

देवी—कज्जंतरसत्तरजणो क्कहं आहूअदि । [कार्यान्तरसत्त्वरो जनः
कथमाहूयते]

राजा—अयि मुग्घे

1 Thus A B, the usual form is भाआहि. 2 B णित्थारइत्तओ° chāyā
निर्धारयिता (A B). 3 A इदं. Really we should have इह or इहं. 4 Thus
A B; it should be °सत्तरो जणो.

न युद्धं प्रतियोद्धृणामभावान्मम विद्यते ।

रक्षिताश्च प्रजाः सर्वाः कस्मिन् कार्यान्तरे त्वरा ॥ ३७ ॥

देवी—^१जं सच्चं मुद्धो एस जणो । अय्यउत्त, तुह हिअअं एत्थं सक्खिं होदि । [यत्सत्त्वं मुग्ध एष जनः । आर्यपुत्र, तव हृदयमत्र साक्षि भवति ।]

विदूषकः—अत्तहोदि, सह एव्व वत्ततो^२ ण खु अहं जाणामि । [अत्रभवति, सहैव वर्तमानो न खल्वहं जानामि ।]

देवी—अविणअसइव, अलं ते मत्तरक्खणकोसलं दंसिअ । [अविनयसचिव, अलं ते मन्त्ररक्षणकौशलं दर्शयित्वा ।]

विदूषकः—होदि रइसेणे, किं एदं । [भवति रत्तिसेने, किम् एतत् ।]

(चेटी संज्ञया तर्जयति ।)

देवी—अय्य कञ्चाअण, किं साहु णिव्यत्तिओ मम पिअस्स अहिलसिएण जणेण समाअमो । [आर्य कार्यायन, किं साधु निर्वर्तितो मम प्रियस्य अभिलषितेन जनेन समागमः ।]

विदूषकः—(यज्ञोपवीतं स्पृष्ट्वा) अत्तहोदि, इमिणा मे वम्हसुत्तेण सवामि । ण कावि अण्णा इह दिट्ठा, ण अ संभासिदा । [अत्रभवति, अनेन मे ब्रह्मसूत्रेण शपामि । न काप्यन्येह दृष्टा, न च संभाषिता ।]

राजा—देवि, सत्यमाह कार्यायनः ।

देवी—(हस्तेन निर्दिश्य) इअं चेअ णं पअपंती सूएदि इमस्स सच्चवाइत्तणं । [इयमेव ननु पदपङ्क्तिः सूचयत्यस्य सत्यवादित्वम् ।]

(राजा विदूषकं पश्यति ।)

विदूषकः—(सस्मितम्) वअस्स, जिदं अम्हेहिं । कहं ण एसा

1 One would expect आत्मगतम् before जं सच्च etc., and प्रकाशम् before अय्यउत्त etc. 2 A B सन्नखी, chāyā साक्षीभवति. 3 A वद्धंतो, chāyā वर्धमान, B वत्थतो. 4 A तर्जयते

अत्तहोदीए पअपती । अत्तहोदि, इमं खु पअपंति तुह केरअं
मुणंता अम्हे तुमं इदो मग्गिअ अवेकखंता दाणिं णिअत्त म्ह ।
दिट्ठिआ दिट्ठा अ एत्थ अत्तहोदी । [वयस्य, जितमस्साभिः । कथं नैषा
अत्रभवत्याः पदपङ्क्तिः । अत्रभवति, इमां खलु पदपङ्क्तिं युष्मदीयां जानन्तो
वयं त्वामितोऽन्विष्य अवेक्षमाणा इदानीं निवृत्ताः स्मः । दिष्ट्या दृष्टा चात्र
अत्रभवती ।]

राजा—देवि, यथावृत्तं वदति वयस्यः । (आत्मगतम्) साधु
वयस्य, साधु ।

चेटी—भट्टिणि, जुज्जइ । [¹देवि, युज्यते ।]

देवी—अदिउज्जुए, ण आणासि तुमं परमत्थओ अय्यउत्तं ।
[अत्युज्ज्वि, न जानासि त्वं परमार्थत आर्यपुत्रम् ।]

राजा—

विशङ्कसे मानिनि यद्यमुं जनं कृतव्यलीकं ननु युज्यते भयम् ।
व्यलीकसंकल्पनिरुत्सुके जने करोति शङ्का मनसः परां रुजम् ॥३८॥

देवी—(आत्मगतम्) कहं मए अत्थाणे जूरंतीए धूमाविदं मणो
अय्यउत्तस्स । [कथं मयाऽस्थाने कुध्यन्त्या संतापितं मन आर्यपुत्रस्य ।]

(नेपथ्ये वैतालिकौ)

विजयतां चक्रवर्ती । सुखाय मध्यंदिनसमयो भवतु देवस्य ।

प्रथमः—

अन्तस्तोयं विजयकरिणो लम्भितैः पुष्करैस्ते

पूर्वोपात्तं सलिलमधुना प्रोज्झ्य निर्णिक्कनासाः ।

व्याकोचानां मधुभिरसकृद्वासितं पङ्कजानां

गाङ्गं तोयं तुहिनशिशिरं गाहमानाः पिबन्ति ॥ ३९ ॥

द्वितीयः—

यस्मिन्नेनां जयति पृथिवीमभ्युपेत्याभिपेकं
गङ्गासिन्धू स्वयमकुरुतां पावनैः स्वैः पयोभिः ।
त्वां संप्राप्ताः स्तपयितुमिमां वारमुख्याङ्गनास्त्वा
सज्जस्नानोपकरणशर्ता मज्जनागारभूमिम् ॥ ४० ॥

(सर्वे आकर्णयन्ति ।)

विदूषकः—पउत्ता मज्जणवेला । ता इदो एदु पिअवअस्सो ।
[प्रवृत्ता मज्जणवेला । तस्मादित एतु प्रियवयस्यः ।]

राजा—देवि, इतः । (परिक्रम्य) कथं मध्याह्नः । अद्य हि
मध्याह्नतापादवगाह्य भूयः पयांसि पद्मासववासितानि ।
आपातशैत्यादिव मन्दमन्दं मन्दाकिनीगन्धवहा वहन्ति ॥ ४१ ॥
(निष्क्रान्ता. सर्वे ।)

इति श्रीभट्टारगोविन्दस्वामिसूनुना हस्तिमल्लेन विरचितायां^१
सुभद्रानाटिकायां प्रथमोऽङ्कः ।

द्वितीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—अम्मो तत्तहोदो पिअवअस्सस्स अणिरूविअलोहो-
चाओ अत्थिणो विअ बम्हणस्स अहिणिवेसो । जं दाव अजादविस्संभस्स
अविण्णादणिवासस्स जदिच्छोवणदस्स वि तस्स इत्थिआरणस्स
उक्कंठेदि । सव्वहा असंतुट्ठा खु राआणो । जेण विज्जमाणस्स एव्व

1 Thus A B, better to read इमा(=इमा). 2 Thus A B, better to read त्वाम्. 3 A विरचितं सुभद्रा नाम नाट (टि ?) का प्रथमोऽङ्कः, B विरचित-सुद्रानाटिकायाम्. 4 A B add अथ before द्वितीयोङ्कः.

णिज्जिदसुरसुंदरीसोंदेरस्स अंवरोहकामिणीजणस्स तस्सिं चेअ कण्णआ-
 रदणे अदिमेत्तं उत्तम्मंदि तत्तर्भवं । अंबुदाचरिदा अ सा कण्णआ ।
 जाए साअरादो वि गहिरं, कुलाअलादो वि थिरं सव्वादो ओवाहिअ
 संचालिअं च तत्तहोदो हिअअं । सो उण जदा एव्व अत्तणो धीरा-
 वक्खंदणकरी दिट्ठा सा दुट्ठकण्णआ तदप्पहुदि मदाअत्तरज्जकज्जा-
 लोअणोवाअदाए णिज्जंतणणिव्वत्तिअदेवसिअणिअमो ण दाव धम्मा-
 सपं आरुहइ, ण देइ सेवावसरं राअलोअस्स, ण वंधावेइ कलाको^१-
 सलं, ण पेक्खइ पेक्खणआइ, णाणुमण्णइ विहारविणोदाइ । केवलं
 ज्ञाणाविट्ठो विअ णिरुद्धचित्तो, गहगहिओ विअ विवेअसुण्णहिअओ,
 मुच्छिदो विअ णिच्चलसव्वंगो, अंधो विअ ण किं वि पेक्खइ,
 बहिरो विअ ण किं वि सुणइ, मूओ विअ ण किं वि भासइ, राअ-
 रहस्समंतणं ति किर देवीपवेसं पि णिसेहावेइ । मज्जणवेलं पि तदो^३-
 तदो त्ति गमावेइ । (नि श्वस्य) किं बहुणा भोअणवेलं पि अदिवाहंतो
 सोसावेइ अत्तणो बालवअस्सं एअं^४ कच्चाअणं । सअं पुण रसाअण-
 सेवा^५लद्धसिद्धी विअ अभुंजंतो वि विसुमरेइ भोअणं । इअं च पदि-
 व्वदेव इमं चेअ वम्हणं कंठे गण्हइ वुमुक्खाघरणी । (आत्मानं प्रति)
 वराअ कच्चाअण, ईदं ते राअमित्तदाफलं जदो तुए रहस्सभेदभीदेण
 अइसंधाणकुसलचेडीसआउलं देवीपासं पि भुंजितुं ण गच्छीअदि ।
 (विचिन्त्य) कहिं दाणि राआ भवे । (विलोक्य) एसो खु चीणपट-
 जवणिआवेढिअपेरंतो रअणमंडवो । एसा अ जवणिअव्भंतरवट्ठिणी

1 A omits from ण देइ सेवावसर upto णिरुद्धचित्तो. 2 B कलाकोसलंओ
 (chāyā कलाकौशस्तिकान्). 3 A तदात्तदेत्ति (chāyā in A B ततस्तत इति).
 4 B omits एअ. 5 B omits सेवा. (But chāyā has 'सेवना'). 6 A B इअ
 (chāyā इदम्).

पडीहारी जित्तरिआ । जाव पुच्छेमि । (आकाशे) होदि जित्तरिए,
 कहिं दाणि महाराओ । कहं एसा रअणमंडवं अंगुलीए णिदिसइ ।
 ता तहिं चेअ वअस्सेण होदव्वं । जाव रअणमंडवं उवसप्पेमि ।
 (परिक्रामति) [अहो तत्रभवतः प्रियवयस्यस्य अनिरूपितलाभोपायः अर्थिन
 इव ब्राह्मणस्य अभिनिवेशः । यत्तावद्जातविस्त्रम्भस्य अविज्ञातनिवासस्य यद्-
 च्छोपनतस्यापि तस्य स्त्रीरत्नस्य उत्कण्ठते । सर्वथा असंतुष्टाः खलु राजानः ।
 येन विद्यमानस्यैव निर्जितसुरसुन्दरीसौन्दर्यस्य अवरोधकामिनीजनस्य तस्मिन्नेव
 कन्यकारत्ने अतिमात्रमुत्ताम्यति तत्रभवान् । अद्भुताचरिता च सा कन्यका ।
 यया सागरादपि गभीरं कुलाचलादपि स्थिर सर्वस्माद् व्यावृत्य संचालितं च
 तत्रभवतो हृदयम् । स पुनर्यदैवात्मनो धैर्यावस्कन्दनकरी दृष्टा सा दृष्टकन्यका
 तदाप्रभृति मदायत्तराज्यकार्यालोचनोपायतया निर्यत्रणनिर्वर्तितदैवासिकनियमो
 न तावद्धर्मासनमारोहति, न ददाति सेवावसरं राजलोकस्य, न बन्धयति कला-
 कौशलं, न प्रेक्षते प्रेक्षणकानि, नानुमन्यते विहारविनोदान् । केवलं ध्यानाविष्ट इव
 निरुद्धचित्तो, ग्रहगृहीत इव विवेकग्रन्थहृदयो, मूर्च्छित इव निश्चलसर्वाङ्गो, अन्ध
 इव न किमपि प्रेक्षते, बधिर इव न किमपि शृणोति, मूक इव न किमपि भाषते,
 राजरहस्यमन्त्रणमिति किल देवीप्रवेशमपि निषेधयति । सज्जनवेलामपि ततस्तत
 इति गमयति । (नि श्वस्य) किं बहुना, भोजनवेलामपि अतिवाहयञ्च शोषय-
 त्यात्मनो बालवयस्यमेतं कार्यायनम् । स्वयं पुना रसायनसेवालब्धसिद्धिरिव
 अभुञ्जानोऽपि विस्मरति भोजनम् । इयं च पतिव्रतेव इममेव ब्राह्मणं कण्ठे
 गृह्णाति उभुक्षागृहिणी । (आत्मानं प्रति) वराक कार्यायन, इदं ते राजमित्र-
 ताफलं, यतस्त्वया रहस्यभेदभीतेन अतिसन्धानकुशलचेटीशताकुलं देवीपार्श्वमपि
 भोक्तुं न गम्यते । (विचिन्त्य) कुत्र इदानीं राजा भवेत् । (विलोक्य) एष
 खलु चीनपट्यवनिकावेष्टितपर्यन्तो रत्नमण्डपः । एषा च यवनिकाभ्यन्तरवर्तिनी
 प्रतीहारी जित्तरिका । यावत्पृच्छामि । (आकाशे) भवति जित्तरिके, कुत्रेदानीं
 महाराजः । कथमेवा रत्नमण्डपम् अद्भुत्या निर्दिशति । तस्मात्तत्रैव वयस्येन
 भवितव्यम् । यावद्भ्रमण्डपमुपसर्पामि । (परिक्रामति ।)]

1 Thus A B, the correct rendering would be अपवाह. 2 Mean-
 ing obscure. 3 A °दैवविहारविनोदान्.

(ततः प्रविशति पर्यङ्किकायां निस्सहनिषण्णः सोत्कण्ठो राजा ।)

राजा—हन्त भोः

सौन्दर्यमन्यत्र न दृष्टपूर्वमज्ञातपूर्वाणि विचेष्टितानि ।

तस्याः कथं मां गमयन्ति दूरमप्राप्तपूर्वामपरामवस्थाम् ॥ १ ॥

यतश्च मे

व्युपरतलतान्तररतेर्मधुकृत इव पारिजातमञ्जर्याम् ।

इतरत्र रतिमकुर्वन्नेतस्तस्यां समापतति ॥ २ ॥

कश्चायमसमीचीनः प्रकारः । येन

न कृतः प्रणयो न जन्म-वा विदितं नैव निवासभूरपि ।

अपि^१ गाढमनोरथाकुलो विषमोपक्रम एष मन्मथः ॥ ३ ॥

अथवा न वयमिहैकान्ततोऽपराद्धाः । यतो मदनस्यापि न तत्र पक्ष-
पातितां प्रायः पश्यामि । तथा हि

विभावनीयं विविधैर्विचेष्टितै-

र्न संवरीतुं यतते स्म न स्मरम् ।

न चाशकत्सा निभृतं निगूहितुं

मनस्तु पारिप्लवतामनीयत ॥ ४ ॥

इदं च पुनरिदानीमाक्षिपति चेतः । यदुत

सविभ्रमाकुञ्चितसव्यजानु सा

करेण यान्ती परिवर्तितत्रिका ।

अपाङ्गपर्यस्तविलोचना शनै-

रसञ्जयत्सुस्थितमेव नूपुरम् ॥ ५ ॥

1 Thus A B, it should be अतिगाढ°.

विदूषकः—(दृष्ट्वा) एसो खु पिअवअस्सो किं पि उम्मणायंतो जहिं कहिं पि णिच्चलणिहितदिट्ठी पल्लंकतलं अलंकरेदि । जाव उवसप्पामि । (उपसृत्य) जेटु पिअवअस्सो । [एष खलु प्रियवयस्यः किमप्युन्मनायमानो यत्रकुत्रापि निश्चलनिहितदृष्टिः पर्यङ्कतलमलंकरोति । यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य) जयतु प्रियवयस्यः ।]

राजा—वयस्य, किमिदानीमेवागतोऽसि ।

विदूषकः—अह इं । [अथ किम् ।]

राजा—तेन हीतो निषीद ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । (उपविश्य) भो वअस्स, कहां अण्णचित्तो विअ लक्खिज्जसि । [यद्भवानाज्ञापयति । (उपविश्य) भो वयस्य, कथमन्यचित्त इव लक्ष्यसे ।]

राजा—सखे^१, किमन्यत् ।

दृशौ ममान्यत्र सुदुःस्थिते कृते श्रुती च गानेऽपि पराङ्मुखीकृते ।
मनोऽपि निष्ठां क्वचिदप्यनाप्रुवत् प्रसह्य दूरं प्रियया तथा हृतम् ॥६॥

विदूषकः—वअस्स, पाअसो ताए विज्जाहरकण्णआए लद्ध-
विज्जासिद्धीए होदवं । अण्णहा कहां किर सा सरीरादो सहावदु-
ग्गेज्झं पि आअड्ढिदुं पवदि मणं । [वयस्य, प्रायशस्तया विद्याधरकन्य-
कया लब्धविद्यासिद्ध्या भवितव्यम् । अन्यथा कथं किल सा शरीरात् स्वभाव-
दुर्ग्राह्यमप्याकटुं प्रभवति मनः ।]

राजा—नैतदेवम् । कुतः

संमोहनाय हृदयस्य सखे समन्ता—

दुत्सादनाय सहसैव च धीरतायाः ।

आकर्षणाय च वशीकरणाय चासौ

शक्नोति नेत्रसुखया स्वयमेव कान्त्या ॥ ७ ॥

1 B णिहित्त 2 B omits सखे. 3 A आलडिदु, B आअडिदु.
पव० स० नाट० 10

विदूषकः—वअस्स, भवं पि णाम णिज्जिदसअलमहीवेढो
काए वि इत्थिआए एवं जिदो त्ति अच्चाहिदं । [वयस्य, भवानपि नाम
निर्जितसकलमहीपृष्ठः कयापि स्त्रियैवं जितं इति अत्याहितम् ।]

राजा—नैतावता पर्याप्तम् । कुतः

अव्याजसुन्दरेणैव वपुषा वसुधामिमाम् ।

अशेषामजयत्स्वैरं सा विद्याधरसुन्दरी ॥ ८ ॥

विदूषकः—वअस्स, एकवारदंसणं पि किं से तुह् एवं ति क्हं
एत्तिअमेत्तेण वि संतोसो मअणस्स । [वयस्य, एकवारदर्शनमपि किं
तस्यास्तवैवमिति कथमेतावन्मान्नेणापि संतोषो मदनस्य^३ ।]

राजा—न खलु साध्यसिद्धये भूयोव्यापृतिमाकाङ्क्षति साध-
नस्य प्रकृष्टगुणता । तथा च

तया प्रहर्तुं प्रसभं मनो मे स्मरस्य भूरिक्षणदर्शनं च^४ ।

एकत्र वस्तुन्यसकृत्प्रहारानपेक्षते जातु न वज्रधारा ॥ ९ ॥

(विचिन्त्य) वयस्य, तद्दर्शनरमणीये वेदीवन एवात्मा विनोदयितव्यः ।

विदूषकः—जं वअस्सस्स रोअदि । (उत्थाय प्रकोष्ठं ददाति) [यद्
वयस्यस्य रोचते ।]

(राजा अवलम्ब्योत्तिष्ठति ।)

विदूषकः—इदो इदो पिअवअस्सो । [इत इतः प्रियवयस्यः ।]

(परिक्रामत ।)

विदूषकः—(पुरो निर्दिश्य) वअस्स, एसा खु इदो गंगा, इदो अ
एदं वेदिवणं । [वयस्य, एषा खल्वितो गङ्गा, इतश्चैतद्वेदीवनम् ।]

राजा—(निर्वर्ण्य ।)

1 A B °महीवेष्ट, वेष्ट should be rendered by पीठ. 2 A B निर्जितः.
3 A मदनस्य. 4 Sense obscure.

आवाति गङ्गापवनो विधुन्वन्नितो विनिद्राणि सरोरुहाणि ।

इतश्च मन्दाररजो विकर्षन्नावाति वेदीवनमातरिश्वा ॥ १० ॥

विदूषकः—वअस्स, एसो खु सो मंदारतरुसंडो, जहिं तुम्हाणं परोप्परदंसणं आसि । [वयस्य, एष खलु स मन्दारतरुषण्डो यत्र युवयोः परस्परदर्शनमासीत् ।]

राजा—(सौत्सुक्यं निर्वर्ण्य)

अतर्कितोपस्थितमत्र मां पुरो विलोक्य चित्रस्तमृगीविलोचना ।

अपाहरत् तत्क्षणमर्धमीलिते दृशौ सलज्जं च ससाध्वसं च सा ॥११॥

(अन्यतो विलोक्य निर्वर्ण्य च)

उत्क्षिप्य सत्रपमिहापि कराङ्गुलिभ्यां वामेतरस्तनमुखच्युतमुत्तरीयम् ।

हारावलीमुपरि तस्य निपातयन्ती तत्संगसुस्थितमकल्पयदुत्पलाक्षी ॥ १२

विदूषकः—वअस्स, इमस्स एव्व तुह पिआदंसणसंकेदघरस्स मंदाररुक्खस्स तले फंसाणुमेअमंदारकुसुमकेसरोवहाररमणिजे रअद-सिलाअले उवविसदु भवं । [वयस्य, अस्यैव तव प्रियादर्शनसंकेतगृहस्य मन्दारवृक्षस्य तले स्पर्शानुमेयमन्दारकुसुमकेसरोपहाररमणीये रजतशिलातल उपविशतु भवान् ।]

राजा—यदाह वयस्यः । (उपविश्य) वयस्य, मा स्म त्वमुपविश ।

विदूषकः—किं ति । [किमिति ।]

राजा—प्रियादर्शनोत्कण्ठादुर्ललितं चेतस्तत्प्रतिच्छन्देन विनोद-यिष्यामि । तदिदानीमानीयतां सोपकरणं चित्रफलकम् ।

विदूषकः—जं वअस्सो आणवेदि । (निष्कम्य, प्रविश्योपसृत्य च) एअं सोवअरणं चित्तफलअं । (उपनीयोपविशति ।) [यद्वयस्य आज्ञापयति । (निष्कम्य, प्रविश्योपसृत्य च) एतत्सोपकरणं चित्रफलकम् । (उपनीयोपविशति ।)]

राजा—(आदाय, ध्यात्वा मोहसंस्तम्भमभिनीय)

मुह्यति हृदयमकाण्डे ध्यायते एव प्रियां ममालिखिताम् ।

अध्याते चालेख्ये दुःशकमालेखनं नाम ॥ १३ ॥

तत्किमत्र कर्तव्यम् । भवतु । धैर्यसंस्तंभितात्मा कथंचिदा-
लिखामि । (पुनर्ध्यात्वा चित्रफलकं विलोक्य, सविस्मयम्)

संस्मरणान्तन्मयतां गतेन चित्तेन चित्रफलकमिदम् ।

प्रतिभाति पश्यतो मे तद्रूपमिहालिखितमेव ॥ १४ ॥

तत्किं करोमि । भवतु । अन्तरान्तरा कथंचिदन्तःकरणमाक्षिप्य शनै-
रालिखामि । (आलिख्य सानुरागं निर्दिश्य) वयस्य, पश्य पश्य

इयं सा दीर्घाक्षी परिणतशरच्चन्द्रवदना

नतभ्रूर्बिम्बोष्ठी स्तननमितमध्या कृशतनुः ।

सुनाभी रम्भोरुर्भुजयुगपरिष्वङ्ग्यजघना

परं या मामित्थं व्यथयति च नाश्वासयति च ॥ १५ ॥

विदूषकः—(विलोक्य) अहो दंसणिज्जदा आलेक्खस्स । अहं
पुण समत्थेसि सयं एव्व इहागद त्ति । [अहो दर्शनीयता आलेक्खस्स ।
अहं पुनः समर्थये स्वयमेवेहागतेति ।]

राजा—(स्मृत्वा) कृता च तत्सख्या पुनरागमनप्रस्तावना ।
अपि नाम साँ प्रत्यागच्छेत् ।

(तत. प्रविशति सुभद्रा मन्दारिका च ।)

मन्दारिका—पिअसहि, तुमं दाणिं अक्खमं मोत्तूण गओ सव्वो
वि सहीअणो जलकेलीदोह्लादो मंदाइणीतीरपेरंतं । ता जाव सहीओ
आअमिस्संति ताव इदो एव्व हरिचंदणलआघरण उवविसम्ह ।

1 A B स्थायत एव Reading adopted in the text is conjectural.

2 B सप्रत्यागच्छेत्.

[प्रियसखि, त्वामिदानीमक्षमां मुक्त्वा गतः सर्वोऽपि सखीजनो जलकेली-
दोहदान्मन्दाकिनीतीरपर्यन्तम् । तद्यावत्सख्य आगमिष्यन्ति तावदित एव हरि-
चन्दनलतागृह उपविशावः ।]

सुभद्रा—सहि, तह । [सखि, तथा ।]

(उपविशत ।)

सुभद्रा—हला, किं दाणि सो बालासोओ मउलुब्भेदणिवडि-
अराओ भविस्सदि । [सखि, किमिदानीं स बालाशोको मुकुलोद्भेदनिपतित-
रागो भविष्यति ।]

मन्दारिका—(आत्मगतम्) जाव इमं लज्जाविणिगूह्ज्जंतवम्महं
वंकभासिदेहि ओवाहिअ हिअअं ते णिवेदेमि^१ । (प्रकाशम्) पिअसहि,
सव्वहा तुह दाणि दंसइस्सेदि सो राअं । जेण उव्वाहसंपत्ती अइ-
रादो भविस्सदि । [यावदिमां लज्जाविनिगुह्यमानमन्मथां वक्रभापितैरप-
वाह्य हृदयं ते निवेदयामि । (प्रकाशम्) प्रियसखि, सर्वथा तवेदानीं दर्श-
यिष्यति स रागम् । येन उद्वाहसंपत्तिरचिरान्दविष्यति ।]

सुभद्रा—(साशङ्कमात्मगतम्) अत्थतरगव्भं विअ इमाए वअणं ।
होदु । अजाणंती विअ कहइस्सं । (प्रकाशम्) हला, किं तुह केरआ
वि सा मालईलआ मउलुब्भेअपंडुरिआ भविस्सदि । जदो उव्वाह-
विहीए अविलंवं कहेसि^२ । [अर्थान्तरगर्भमिवास्या वचनम् । भवतु ।
अजानतीव कथयिष्यामि । (प्रकाशम्) सखि, किं युष्मदीयापि सा मालतीलता
मुकुलोद्भेदपाण्डुरिता भविष्यति । यत उद्वाहविधेरविलम्बं कथयसि ।]

मन्दारिका—मम केरआ वि पच्चग्गदंसिअपंडिमरमणिज्जा
अपुव्वसमागमविउणसोहा संफुल्लइ एतस्स कंधे अइरादो लगदि एव्व ।
[अस्मदीयापि प्रत्यग्रदंशितपाण्डिमरमणीया अपूर्वसमागमद्विगुणशोभा संफु-
ल्लति^३ एतस्य स्कन्धेऽचिराल्लगत्येव ।]

^१ Thus A B, obscure, better हिअअ से विणोदेमि । (हृदयमस्या विनोद-
यामि). ^२ A कहेसेति, B कहेहि. ^३ A सघल्लइ, chāyā सघल्लति.

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अहो वक्रभासिदे वेअङ्घी । (प्रकाशम्) हला, केइ दूरे सो बालासोओ । जइ पच्चासण्णो हवे सहीअणं अणपेक्खिअ तं ओसप्पम्ह । [अहो वक्रभाषिते वैदग्ध्यम् । (प्रकाशम्) सखि, कियति दूरे स बालाशोकः । यदि प्रत्यासन्नो भवेत् सखीजनमनपेक्ष्य तमुपसर्पावः ।]

मन्दारिका—इदो पच्चासण्णो एव्व सो तुह लोअणाइ सुह-इस्सदि जाहि तुए गरुओ दंसिदो अणुराओ । [इतः प्रत्यासन्न एव स तव लोचने सुखयिष्यति, यत्र त्वया गुरुदर्शितोऽनुरागः ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अहो पत्थुदणिव्वाहो । (प्रकाशम्) किं एसो एव्व सो मंदारतरुसंडो दीसइ । [अहो प्रस्तुतनिर्वाहः । (प्रकाशम्) किम् एष एव स मन्दारतरुषण्डो दृश्यते ।]

मन्दारिका—(आत्मगतम्) सो त्ति कहंतीए इमाए उब्भिण्णं विअ रहस्सं । जाव अहं पि उब्भेदइस्सं । (प्रकाशम्) सो त्ति को । [स इति कथयन्त्यानयोद्भिन्नमिव रहस्यम् । यावदहमप्युद्भेदयिष्यामि । (प्रकाशम्) स इति कः ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) कहं मए चेअ उब्भिण्णं । होदु । एव्वं । (प्रकाशम्) जहिं सहीजणो मग्गिदो । [कथं मयैव उद्भिन्नम् । भवतु । एवम् । (प्रकाशम्) यत्र सखीजनो मार्गितः ।]

मन्दारिका—दिट्ठो खु सो । [दृष्टः खलु सः ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) किं एत्थ उत्तरं । होदु । एव्वं । (प्रकाशम्) तहिं सो सहीअणो दिट्ठो । [किमत्रोत्तरम् । भवतु । एवम् । (प्रकाशम्) तत्र स सखीजनो दृष्ट ।]

मन्दारिका—ण केवलं सो जणो दिट्ठो संभासिदो अ परिष्कु-डाणुराअं । [न केवलं स जनो दृष्टः संभाषितश्च परिष्कृतानुरागम् ।]

सुभद्रा—(सासूयम्) असंबद्धभासिणि, किं भणसि । [असंबद्ध-
भापिणि, किं भणसि ।]

मन्दारिका—मुद्धे, किं दाणिं मे वाआमेत्तं विणिगूहिअ । अत्तणो
दाव एक्कपदसंजाअमिलाअंतमुणालसोहाइ किसपंडुराइ अंगाइ तह
तह सुणिद्धसव्वंगाई उम्मेसमुत्ताइ पच्छादेहि । [मुग्धे, किमिदानी मे
चाइमात्रं विनिगुह्य । आत्मनस्तावदेकपदसंजातस्लायन्मृणालशोभानि कृशपाण्डु-
राणि अङ्गानि तथा तथा सुस्निग्धसर्वाङ्गाणि उन्मेषमुक्तानि प्रच्छादय ।]

(सुभद्रा सवैलक्ष्यं तूष्णीमास्ते ।)

मन्दारिका—पिअसहि, अलं दाणि कण्णआजणसुलहाए लज्जाए ।
जइ दाव मं तुइत्तो अण्णं मुणेसि तदा खु लज्जिदव्वं । समसुह-
दुक्खे उण सरीरमेत्तभिण्णे सहीअणे भावणिगूहणं देइ खेदं चित्तस्स,
चअणिज्जदं सिणेहस्स । अहव पिअसहि, तुह एव्व असाहारणकण्ण-
आसुलहाए महाभाअदाए समत्थिदं खु मए । जह जहिं दाव इमाए
जाअदि उक्कंठा असाहारणं खु सो पुरिसरअणं अइरादो इमाए पई
भविस्सदि त्ति । ता पिअसहि, उदारचरिअं विस्संभमहुरं णिहिलमही-
वेढरक्खणक्खमं च तं खत्तिअपुंगवं समत्थेहि । ण य सो अविण्णाद-
भावो त्ति चिंतिदव्वं । जदो सिणिद्धविअसंतलोअणेहिं पिअंतेहिं
विअ पेक्खिदेहिं, भावंतरगव्वेहिं पिअगाहिरमहुरेहिं संभासिदेहिं
परिप्फुडं तस्स वम्महपरवसं हिअअं खु । अह अ जह तुमं तदंस-
णादो पहुदि उम्मणाअंती ण दाव रमणिज्जेहिं रमेसि, ण णिसाए वि
णिदासुहं अणुहवेसि, सअणिज्जादो वि सुण्णसुण्णं उट्टेसि, ण कहि
वि मुहुत्तं सुत्थिदा होसि, पुणो पुणो वालासोअउत्तंतच्छलेण उम्मत्ता

I A B अगताइ, chāyā रतगतानि. २ Thus A B, obscure. B chāyā
सुस्निग्धानि वर्णानि.

चेअ तदंसणभूमिं सुमरेसि, अविण्णादपुव्वे अ मणोरहस्स संचार-
 विसमे मअणगोअरे पडिआसि, तह सो वि गाढुक्कंठो ण तुज्झ दंस-
 णभूमि उज्झिअ अण्णदो रमेदि । [प्रियसखि, अलमिदानीं कन्यकाजन-
 सुलभया लज्जया । यदि तावन्मां त्वत्तोऽन्यां मन्यसे तदा खलु लज्जितव्यम् ।
 समसुखदुःखे पुनः शरीरमात्रभिन्ने सखीजने भावनिगूहनं ददाति खेदं चित्तस्य,
 वचनीयतां स्नेहस्य । अथवा प्रियसखि, तवैव असाधारणकन्यकासुलभया महा-
 भागतया समर्थितं खलु मया । यथा यस्मिंस्तावदस्या जायत उत्कण्ठा, असा-
 धारणं खलु स पुरुषरत्नमचिरादस्याः पतिर्भविष्यतीति । तत् प्रियसखि, उदार-
 चरितं विस्रग्भमधुर निखिलमहीपृष्ठरक्षणक्षमं च तं क्षत्रियपुंगवं समर्थय । न
 च सोऽविज्ञातभाव इति चिन्तयितव्यम् । यतः स्निग्धविकसल्लोचनैः पिबद्भि-
 रिव प्रेक्षितैः भावान्तरगमैः प्रियगभीरमधुरैः संभाषितैः परिस्फुटं तस्य मन्मथ-
 परवशं हृदय खलु । अथ च यथा त्वं तद्दर्शनात्प्रभृति उन्मनायमाना न
 तावद्रमणीयै रमसे, न निशायामपि निद्रासुखमनुभवसि, शयनीयादपि शून्य-
 शून्यमुत्तिष्ठसि, न कुत्रापि मुहूर्तं सुस्थिता भवसि, पुनः पुनर्बालाशोकवृत्तान्त-
 च्छलेनोन्मत्तैव तद्दर्शनभूमिं स्मरसि, अविज्ञातपूर्वं च मनोरथस्य संचारविषमे
 मदनगोचरे पतित्तासि, तथा सोऽपि गाढोत्कण्ठो न तव दर्शनभूमिमुज्झित्वा
 अन्यतो रमते ।]

सुभद्रा—(सलज्जं, बाष्पं सस्तभ्य) पिअसहि, किं अदोवरं कह-
 इस्सं । तुमं खु मे सही अ दिट्ठी अ बंधू अ गुरू अ हिअअं च
 जीविअसरणं च । ता कस्स णाम अण्णस्स जणस्स एअं मे अस्स-
 त्थदं कहेमि । पिअसहि, जदं एव्व अहं पआणुसारिणा एत्थ वणे
 चरंतेण तेण जणेण हिअअम्मि दिढं संलिद्धा तदो पहुदि (निश्वस्य
 सलज्जम्) अहव तुमं चेअ जाणासि । [प्रियसखि, किमतःपरं कथयि-
 ष्यामि । त्वं खलु मे सखी च दृष्टिश्च बन्धुश्च गुरुश्च हृदयं च जीवितशरण
 च । तस्मात् कस्य नामान्यस्य जनस्य एतां मेऽस्वस्थतां कथयामि । प्रियसखि,
 यदैवाहं पदानुसारिणाल् बने चरता तेन जनेन हृदये दृढं संश्लिष्टा ततः प्रभृति
 (निःश्वस्य सलज्जम्) अथवा त्वमेव जानासि ।]

मन्दारिका—जाणामि एव्व । [जानाम्येव ।]

सुभद्रा—(सोत्कण्ठं, मन्दारतरुषण्डे दत्तदृष्टिं, आत्मगतम्) एसो खु सो मंदारतरुसंडो । जहि सो लोअणाणंददाइजणो दिट्ठो । [एष खलु स मन्दारतरुषण्डो यत्र स लोचनानन्ददायिजनो दृष्टः ।]

मन्दारिका—(निरुप्यात्मगतम्) कंहं एसा णिद्धाए दिट्ठीए तं चेअ मंदारतरुसंडं णिज्झाअदि । होदु । एव्वं (प्रकाशम्) पिअसहि, ण हि दाव तस्सि चेअ पिअदंसणरमणिज्जे मंदारतरुसंडे तुह अत्ता विणोदिद्वो । [कथमेषा स्निग्धया दृष्ट्या तमेव मन्दारतरुषण्डं निध्यायति । भवतु । एवम् । (प्रकाशम्) प्रियसखि, नहि तावत्तस्मिन्नेव प्रियदर्शनरमणीये मन्दारतरुषण्डे तव आत्मा विनोदयितव्यः ।]

सुभद्रा—जह पिअसहीए रोअदि । [यथा प्रियसख्या रोचते ।]

(उत्थाय परिक्रामतः ।)

मन्दारिका—(कर्णं दत्त्वा) पिअसहि, पुरिसालावो विअ तहिं सुणिज्जइ । [प्रियसखि, पुरुषालाप इव तत्र श्रूयते ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अवि णाम सो भवे । [अपि नाम स भवेत् ।]

मन्दारिका—जाव इमिणा मंदाररुक्खेणंतरिदा पेक्खेमि । (तथा दृष्ट्वा सहर्षम्) सहि, दिट्ठिआ वडुसि । एसो खु तुह हिअअ-वल्लहो । [यावदनेन मन्दारवृक्षेणान्तरिता पश्यामि । (तथा दृष्ट्वा सहर्षम्) सखि, दिष्ट्या वर्धसे । एष खलु तव हृदयवल्लभः ।]

सुभद्रा—(सहर्षं विलोक्य, आत्मगतम्) हिअअ, एण्हि समस्स-सिहि । एसो हु तुह मणोरहभूमी जणो । [हृदय, इदानीं समाश्व-सिहि । एष खलु तव मनोरथभूमिर्जनः ।]

(राजा 'इयं सा दीर्घाक्षी' इति पूर्वोक्तं (२।१५) पठति ।)

मन्दारिका—सहि, दक्ख दाव । सहि, एस खु तुह पडिच्छंदेण अत्ताणं विणोदेदि । [सखि, पश्य तावत् । सखि, एष खलु तव प्रतिच्छन्देनात्मानं विनोदयति ।]

सुभद्रा—कुदो दे णिच्चओ । [कुतस्ते निश्चयः ।]

मन्दारिका—हं अविस्सासो । जो दाव तुहम्मि दंसिदाणुराओ सो उण मुहुत्तअं पि किं सुत्थिदो होदि । जइ उण ण मं पत्तिआ-आसि, उवसप्पिअ दक्ख तुव पडिच्छंदअं । [हन्ताविश्वासः । यस्ता-चत् त्वयि दक्षितानुरागः स पुनर्मुहूर्तमपि किं सुस्थितो भवति । यदि पुनर्न मां प्रत्याययसि, उपसृप्य पश्य तव प्रतिच्छन्दम्]

सुभद्रा—(सासूयम्) दुक्करभासिणि कुदो मं लहूकरेसि । [दुष्करभाषिणि, कुतो मां लघूकरोषि ।]

मन्दारिका—मा दाव असूइअ । एसा खु पलंबपच्छाअसाहा-सअवित्थिण्णा मंदारवणराई । जाव इमाए अंतरिदाओ पिट्ठदो ओसप्पिअ दक्खम्ह । [मा तावदसूययित्वा । एषा खलु प्रलम्बप्रच्छाय-शाखाशतविस्तीर्णा मन्दारवनराजि । यावदनया अन्तरिते पृष्ठत उपसृप्य पश्यावः ।]

सुभद्रा—सहि, जा अहं इह एव्व इमं जणं दक्खंती ठाटुं ण तीरेमि, सा कहं पासं ओसप्पिस्सं । [सखि, या अहमिहैव इमं जन पश्यन्ती स्थातुं न शक्नोमि, सा कथ पार्श्वमुपसर्पिष्यामि ।]

मन्दारिका—तह वि ओलंबिअधीरा कहं पि आअच्छ । [तथा-प्यवलम्बितधैर्या कथमप्यागच्छ ।]

सुभद्रा—पहवदि णिअस्स सहीअणस्स पिअसही । [प्रभवति निजस्य सखीजनस्य प्रियसखी ।]

(उपसृत्य पश्यतः ।)

मन्दारिका—पिअसहि, किं दाणि तुस्ससि । एसा खु तुमं इमस्स ऊसंगे दीससि । [प्रियसखि, किमिदानीं तुप्यसि । एषा खलु त्वमस्योत्सङ्गे दृश्यसे ।]

सुभद्रा—हला, कदाइ कलाकोसलविणोदो भवे । जं खणमेत्तदिट्ठो वि जणो ण एवं आलिहिदुं तीरइ । [सखि, कदाचित् कलाकौशलविनोदो भवेत् । यत् क्षणमात्रदृष्टोऽपि जनो नैवमालिखितुं शक्यते ।]

मन्दारिका—हे असंतोसे । [हे असन्तोषे ।]

राजा—

पश्यतो मे प्रतिच्छन्दं स्वच्छन्दं हरिणीदृशः ।

साक्षात् तत्पार्श्ववर्तीव परं चेतः प्रसीदति ॥ १६ ॥

(मन्दारिका सुभद्रा पश्यति ।)

सुभद्रा—(सलज्ज सहर्षं च मुख नमयित्वा, आत्मगतम्) असंतोस-
सीलहिअअ, किं दाणिं पि ण तुस्ससि । (प्रकाशम्) पिअसहि, मह
पडिच्छंदं पि इमस्स ऊसंगवट्ठिणं पेक्खंती लज्जेमि एत्थ ठादुं ।
[असन्तोषशीलहृदय, किमिदानीमपि न तुप्यसि । (प्रकाशम्) प्रियसखि,
मम प्रतिच्छन्दमप्यस्योत्संगवर्तिनं पश्यन्ती लज्जेऽत्र स्थातुम् ।]

मन्दारिका—अदिलज्जालुए, का एसा अदिट्ठपुव्वा लज्जा ।
[अतिलज्जालुके, का एषा अदृष्टपूर्वा लज्जा ।]

विदूषकः—(निर्वर्ण्य) वअस्स, एसा वेलादी—(इत्यर्थोक्ते) [वयस्य,
एषा वेला इ—(इत्यर्थोक्ते)]

राजा—(ससभ्रमम्) क देवी वैलाती ।

विदूषकः—वअस्स, मा भाआहि । एवं खु अहं वत्तुकामो ।
एसा वेला दीसइ आलेक्खविण्णाणस्सेत्ति । [वयस्य, मा भैपीः । एवं
खलु अहं वत्तुकामः । एषा वेला दृश्यते आलेख्यविज्ञानस्येति ।]

राजा—तेन हि क्षेमेण वर्तामहे ।

सुभद्रा—(सेर्ष्यम्) कहं अण्णाए काए वि इमिणा भाँइद्वं ।
हला, एहि दाव । किं एत्थ ठीअदि । [कथमन्यस्याः कस्या अपि अनेन
भेतव्यम् । सखि, एहि तावत् । किमत्र स्थीयते ।]

मन्दारिका—हला, जस्स हिअअं तुए एव्वं हारिदं सो दाव
अण्णाहिदभावो वि दक्खिण्णं रक्खदि त्ति जाणिहि । जदो ईरिसा
महापुरिसा ण कदाइ वि दक्खिण्णं उज्झंति । [सखि, यस्य हृदयं
त्वयैवं हृतं स तावदन्याहितभावोऽपि दाक्षिण्यं रक्षतीति जानीहि । यत
ईदृशा महापुरुषा न कदाचिदपि दाक्षिण्यमुज्जन्ति ।]

सुभद्रा—अलं ते दुम्मंतेण । सा एव्व आअदुअ तं पेक्खदु ।
[अलं ते दुर्मन्त्रेण । सैवागत्य तं पश्यतु ।]

(परावृत्य गच्छति ।)

मन्दारिका—(उपसृत्य हस्ते गृहीत्वा ।) अदिकोवणे, पच्चक्खदो
इमस्स तुवम्मि गरुअं उक्कंठं दक्खंती कहं कुविदा गच्छसि ।
[अतिकोपने, प्रत्यक्षतोऽस्य त्वयि गुर्वीमुत्कण्ठां पश्यन्ती कथं कुपिता गच्छसि ।]

(बलाञ्जिवर्तयति ।)

(तत प्रविशति देवी चेटी च ।)

चेटी—भट्टिणि, कहिअं मे पिअसहीए जित्तरिआए दाणि खु
महाराओ अय्यकच्चाअणेण सह किं पि मंतअंतो वेदीवणं गदो त्ति ।
[भट्टिनि, कथित मे प्रियसख्या जित्तरिकया इदानीं खलु महाराज आर्यकार्या-
यनेन सह किमपि मन्त्रयमाणो वेदीवनं गत इति ।]

देवी—ण दाव कच्चाअणेण सह अय्यउत्तो अविणआदो अण्णं
मंतेदि । एहि, तदो गदुअ जाणीमो । [न तावत् कार्यायनेन सह
आर्यपुत्रोऽविनयादन्यन्मन्त्रयते । एहि, ततो गत्वा जानीवः ।]

चेटी—जं भट्टिणी आणवेदि । इदो इदो भट्टिणी ।
[यद् भट्टिनी आज्ञापयति । इत इतो भट्टिनी ।]

(परिकामत. ।)

चेटी—पविट्टु म्ह वेदीवणं । एसो खु अग्गदो मंदारतरुसंडो ।
(शाखान्तरेण विलोक्य दृष्ट्वा च) भट्टिणि, सो खु भट्टा अच्यकच्चाअणेण
सह उवविट्टो चिट्टुइ । [प्रविष्टे स्वो वेदीवनम् । एष खलु अग्रतो मन्दार-
तरुषण्डः । (शाखान्तरेण विलोक्य दृष्ट्वा च) भट्टिनि, स खलु भर्ता आर्य-
कार्यायनेन सहोपविष्टस्तिष्ठति ।]

देवी—इमिणा मंदाररुक्खेणंतरिदा पेक्खम्ह । (तथा दृष्ट्वा)
हला, किं एस हत्थे किं पि कादूण णिज्झाअदि । [अनेन मन्दारवृक्षे-
णान्तरिते पश्यावः । (तथा दृष्ट्वा) सखि, किमेष हस्ते किमपि कृत्वा निध्यायति ।]

चेटी—चित्तफलअं विअ [चित्रफलकमिव ।]

देवी—(सशङ्कम्) किं एदं । [किमेतत् ।]

विदूषकः—वअस्स, किं दाणि णिब्बुदं ते हिअअं ।
[वयस्य, किमिदानीं निर्वृतं ते हृदयम् ।]

राजा—मैवम् । कुतः

द्दाति तत्प्रतिच्छन्दः प्रमोदं नेत्रयोः परम् ।

हृदयस्य तु तामेव स्वरतः परमां रुजम् ॥ १७ ॥

मन्दारिका—सहि, सुदं । [सखि, श्रुतम् ।]

देवी—हला, सुदं । ईरिसो खु इमस्स अविणओ । तुमं
पुण जाणंती वि मं विमोहेसि 'ईरिसो तारिसो' त्ति ।
[सखि, श्रुतम् । ईदृशः खल्वस्याविनयः । त्वं पुनर्जानत्यपि मां मोहयसि ।
'ईदृशस्तादृश' इति ।]

1 A कि दाणि बुद ते हिअअ (ohāyā: किमिदानीं नन्दते हृदयम्); B कि दाणि
णंदद्धि हिअअ (ohāyā किमिदानीं नन्दते हृदयम्). Reading adopted in
the text is conjectural.

राजा—सखे, पश्य ।

अस्याः स्तने निपतितः प्रतिभाति तीव्रा-
मन्तव्यैथां पिशुनयन्मम बाष्पविन्दुः ।
दृष्ट्वा दशां सकरुणं मम शोचनीया-
मस्या मुखादिव शुचा गलितोऽश्रुविन्दुः ॥ १८ ॥

मन्दारिका—णिट्टुरे, कहां ण दाणि पि संभावेसिं ।
[निट्टुरे, कथं नेदानीमपि संभावयसि ।]

देवी—ण सक्कं म्हि अदोवरं सोदुं ददुं च । [न शक्तास्मि अतः-
परं श्रोतुं द्रष्टुं च ।]

(चेठ्या सह सरोषमुपसर्पति ।)

(राजा दृष्ट्वा ससंभ्रमं विदूषकस्य हस्ते चित्रफलकं विसृज्योत्तिष्ठति । विदूषकः
ससंभ्रममुत्तरीयेण चित्रफलकं प्रच्छाद्योत्तिष्ठति ।)

सुभद्रा—(दृष्ट्वा सेर्ष्यम्) एसा खु सा जाए इमिणा भाइदव्वं ।
किं दाणिं पि इह ड्डीअदि । [एषा खलु सा यस्या अनेन भेतव्यम् । किमि-
दानीमपि इह स्थीयते ।]

मन्दारिका—(आत्मगतम्) ण किं पि एत्थ भणिदव्वं दक्खामि ।
[न किमप्यत्र भणितव्यं पश्यामि ।]

सुभद्रा—(ससंभ्रमं गच्छति ।) हला, एहि हरिचंदणलआघरअं ।
[सखि, एहि हरिचन्दनलतागृहम् ।]

(उभे परिक्रम्य निष्क्रान्ते ।)

देवी—(सक्रोपम्) अय्यउत्त, किं दाणिं अंतरे उट्टिअदि । [आर्य-
पुत्र, किमिदानीमन्तरे उत्थीयते ।]

राजा—न जाने किमुक्तं भवत्या ।

देवी—ण जाणासि दाणिं तुमं इमस्स जणस्स वअणं । [न जाना-
सीदानीं त्वमस्य जनस्य वचनम् ।]

राजा—अपरिस्फुटभाषिणि, कुतो मां कम्पयसि ।

देवी—अज्ज खु मे भासिअं । अहं चेअ तुह अपरिस्फुटा संवुत्ता ।
[अद्य खलु मे भाषितम् । अहमेव तव अपरिस्फुटा संवृत्ता ।]

राजा—अयि सरले, एष निर्लक्षः संरम्भः ।

स्फुरिताधरपल्लवं मुखं सुमुखि स्विन्नमुदश्रुलोचनम् ।

विपमोच्छ्वसितं रूषा तव स्मरयत्यद्य रतोत्सवश्रमम् ॥ १९ ॥

देवी—अलं दाणिं इमेहिं कवडचाड्ढहिं । (चेटीं प्रति) हला,
इमस्स बड्डअस्स उत्तरीअगदं दंसेहि । [अलमिदानीमेभिः कपटचाडुभिः ।
(चेटीं प्रति) सखि, अस्य बटोरुत्तरीयगतं दर्शय ।]

चेटी—अरे किं एअं । [अरे किमेतत् ।] (गृह्णाति ।)

विदूषकः—अत्तहोदि, एअं खु वाअणाफलअं जहिं मए संज्ञो-
वासणमंतो अहिलिहिअ पटिज्जइ । [अत्रभवति, एतत् खलु वाचनाफलकं
यस्मिन्मया संध्योपासनमन्त्रोऽभिलिख्य पठ्यते ।]

देवी—णं सच्चवादी खु सि । [ननु सत्यवादी खल्वसि ।]

(चेटी बलाद्गृहीत्वा दर्शयति । राजा स्तिमितस्तिष्ठति ।)

देवी—ईरिसो खु इमस्स मंतो । [ईदृशः खल्वस्य मन्त्रः ।]

विदूषकः—(आत्मगतम्) किं एत्थ सरणं । होदु । एवं ।
(प्रकाशम्) अत्तहोदि, मए खु आचमणत्थं गंगातीरं गदेण कहिं पि
अणुवहदे लआगुम्मन्मंतरे एअं सुणिहिदं दिदं । अजाणंतेण मए उव-
णीअ किं एअं ति वअस्सस्स दंसिदं । वअस्सेण उण एसा कावि

देवदा साहस्यं केण वि विज्जाहरेण आलिहिद त्ति भणिअं । संवरणं पुण कदाइ अण्णहा विसंकेज्ज देवि त्ति कदं । [किमत्र शरणम् । भवतु । एवम् । (प्रकाशम्) अत्रभवति, मया खल्वाचमनार्थं गङ्गातीरं गतेन कस्मिन्नप्यनुपहते लतागुल्माभ्यन्तरे एतत्सुनिहितं दृष्टम् । अजानता मयोपनीय किमेतदिति वयस्यस्य दर्शितम् । वयस्येन पुनरेषा काऽपि देवता श्लाघार्थं केनापि विधाधरेणालिखितेति भणितम् । संवरणं पुनः कदाचिदन्यथा विगङ्केत देवीति कृतम् ।]

राजा—देवि, एवमेतत् । (आत्मगतम्) वयस्य, साधु साधु ।

देवी—(अङ्गुल्या चित्रफलकं निर्दिश्य) तेण हि एसो वि ण अय्य-उत्तस्स वाहविंदू । [तेन ह्येषोऽपि नार्यपुत्रस्य वाष्पविन्दुः ।]

विदूषकः—अत्तहोदि, किं ति असच्चं भणिज्जइ । एअं दाव दक्खंतस्स एव्व वअस्सस्स जदिच्छागअपवणविडण्णमंदारपराअदूसिआदो पडिदो एस लोअणादो । [अत्रभवति, किमित्यसत्यं भण्यते । एतत्तावत्पश्यत एव वयस्यस्य यदृच्छागतपवनविकी¹र्णमन्दारपरागदूषितात् पतित एष लोचनात् ।]

राजा—देवि, तथैव तत् । (आत्मगतम्) भोः सखे, साध्वी प्रतिभा ।

देवी—(विदूषकं प्रति) अय्य, जानासि सुसंगदं भासिटुं । (राजानं प्रति) अय्यउत्त, जा तुह चित्तगदा पिआ सा तुए अहिलिहिअ चित्त-गदा दक्खिअदि त्ति ण किं पि तुए एत्थ अदिक्कंतं । मए उण जहत्थं अजाणंतीए अय्यउत्तो चिरं अणुवत्तिदो त्ति लज्जेदि हिअअं । [आर्य, जानासि सुसंगत भाषितुम् । (राजानं प्रति) आर्यपुत्र, या तव चित्त-गता प्रिया सा त्वया अभिलिख्य चित्रगता दृश्यते इति न किमपि त्वया अत्र अतिक्रान्तम् । मया पुनर्यथार्थमजानत्या आर्यपुत्रश्चिरमनुवर्तित इति लज्जते हृदयम् ।]

राजा—

यथा किलावैपि तथा तु नैतदियान् पुनर्देवि ममापराधः ।

यत्ते व्यलीकप्रतिभासयोग्ये कृत्ये ममाभूद् धुना प्रवृत्तिः ॥ २० ॥

देवी—अय्यउत्त, सुदं च दिट्टं च मए सव्वं । चिट्ठ दाणिं सेरं । एसा अहं गच्छेमि । [आर्यपुत्र, श्रुतं च दृष्टं च मया सर्वम् । तिष्ठेदानीं स्वैरम् । एषा अहं गच्छामि ।] (विदूषक निर्दिश्य) हला, एसो खु इमस्स अविणअस्स एकसइवो । जाव एअं उत्तरीएण पिट्ठदो वाहुजुअलं बंधिअ आअड्ढेहि । [सखि, एष खल्वस्याविनयस्य एकसचिवः । यावदेतमुत्तरीयेण पृष्ठतो वाहुयुगल बद्धा आकर्ष ।]

(चेटी तथा बद्धाकर्षति ।)

विदूषकः—(आत्मगतम्) दिट्ठिआ ण गले बद्धो म्हि । [दिष्ट्या न गले बद्धोऽस्मि ।]

देवी—अहव मुंच तं वराअं । राआणुवत्तणं खु एआरिसाणं जुत्तं । [अथवा मुञ्च तं वराकम् । राजानुवर्तनं खल्वेतादृशानां युक्तम् ।]

चेटी—जं भट्टिणी आणवेदि । [यद्भट्टिनी आज्ञापयति ।] (हस्तं मुञ्चति ।)

विदूषकः—(आत्मगतम्) पच्चुज्जीविदो म्हि । [प्रत्युज्जीवितोऽस्मि ।]

(देवी गन्तुमुत्सहते । राजा पटान्तेन^३ गृह्णाति ।)

देवी—(सक्रोपम्) अय्यउत्त, अपरओ खु सो कालो । मुंचेहि मुंचेहि । अदोवरं ण एसा वेलादी । [आर्यपुत्र, अपगतः खलु स कालः । मुञ्च मुञ्च । अतःपर नैषा वैलाती ।]

(हस्तमवधूय चेष्ट्या सह संसंरम्भ निष्क्रान्ता ।)

राजा—कथं कुपितैव गता कोपना ।

1 A आगच्छेमि. 2 A पटान्ते. 3 A अपरओ खु (=अपरः खलु); chāyā however, अपगत' खलु

विदूषकः—वअस्स, दिट्ठिआ जीवंतो एव्व मुक्को म्हि ।
मोचेहि दाव दासीए धूदाए रइसेणाए कअं बंधणं । [वयस्य, दिष्ट्या
जीवन्नेव मुक्तोऽस्मि । मोचय तावद् दास्या दुहित्रा रतिसेनया कृतं बन्धनम् ।]

(राजा मोचयति ।)

विदूषकः—(उत्तरीयं गृहीत्वा) मए खु अत्तणो बंधणत्थं एअं
उत्तरीअं धारिज्जइ । [मया खल्वात्मनो बन्धनार्थमेतदुत्तरीयं धार्यते ।]

राजा—तदेतद्जाकृपाणीय नाम ।

विदूषकः—वअस्स, किं दाणिं करेम्ह । [वयस्य, किमिदानीं कुर्वः ।]

राजा—यावद् गत्वा देवी प्रसादयामः ।

विदूषकः—वअस्म, जंणिमित्तं मए मरणसंकडो अणुहूदो तं
एअं चित्तफलअहदअं कहिं मोइस्सं । [वयस्य, यन्निमित्तं मया मरण-
संकटमनुभूतं तदेतच्चित्रफलकहतकं क्व मोक्षयामि ।]

राजा—प्रियाविरहविनोदित्वान्नैषं परित्यागमर्हति ।

विदूषकः—तेण हि कहिं वि लआगुम्मब्भंतरे णिक्खविअ
आअच्छेमि । [तेन हि कुत्रापि लतागुल्माभ्यन्तरे निक्षिप्यागच्छामि ।]

राजा—तथा कुरु ।

विदूषकः—(परिक्रम्य विलोक्य च) एअं हरिचंदणलआघरअं ।
जाव एत्थ मोएमि । [एतद्धरिचन्दनलतागृहम् । यावदत्र मोक्षयामि ।]
(परिक्रामति ।)

(ततः प्रविशत्युपविष्टा विमनस्का सुभद्रा मन्दारिका च ।)

विदूषकः—(दृष्ट्वा) भो भो वअस्स, एहि एहि । एअं खु तं

1 Thus A B. It should be नैतत्. 2 Thus A B. It should be
मोचयामि or मुञ्चामि.

तुए मग्गिज्जंतं इत्थिआरअणं । [भो भो वयस्य, एहि एहि । एतत्खलु
तत्त्वया मृग्यमाणं खीरत्नम् ।]

राजा—(सहर्षम्) कासौ कासौ । (सत्वरमुपसर्पति ।)

(सुभद्रा मन्दारिका च ससंभ्रममुत्तिष्ठतः ।)

राजा—

मध्यस्ते स्तनयोर्भरेण गुरुणा सार्धं मया ह्रियते
श्रोणीविम्बभरश्च खेदयति मां रम्भोरु पादाम्बुजे ।
यश्चायं न सखीजनात्तव पृथग्गण्योऽस्मि तस्मिन्नसौ
प्रत्युत्थानपरिश्रमः प्रलघुतां सख्यस्य संपादयेत् ॥ २१ ॥

(सुभद्रा सास्रमन्यतो गच्छति ।)

राजा—अयि कातरे,

विनिद्रमन्दाररजोविदूषिता वतंसपुष्पासवबिन्दुचुम्बिताः ।

कपोलपर्यन्तगतास्तवालका हृताञ्जनैरश्रुलवैः किमार्द्रिताः ॥२२॥

विदूषकः—होदि, कुदो खु अत्तहोदीए सबाहं मुहं । [भवति,
कुतः खल्वत्रभवत्याः सबाष्पं मुखम् ।]

मन्दारिका—जदो^१ एव्व तुम्हाणं चित्तफलअदंसणं पि विग्घिदं ।
[यत एव युवयोश्चित्रफलकदर्शनमपि विघ्नितम् ।]

विदूषकः—कहं सव्वं वि इमाहि दिट्ठं । [कथं सर्वमप्याभ्यां दृष्टम् ।]

राजा—मुग्धे, दाक्षिण्यं हि नाम कापि^२ मोक्षितुमर्हति । अर्थं च
अन्यत्र दाक्षिण्यवतोऽपि पुंसः संसक्तमेकत्र समुत्सुकत्वम् ।
कामं हि सत्यप्सरसां सहस्रे विशिष्टमिन्द्रस्य शचीपतित्वम् ॥ २३ ॥

^१ B जदा एव्व; chāyā however यत् एव. ^२ Thus A B, obscure. ^३ B omits भय च.

(सुभद्रा अन्यतो गच्छति ।)

राजा—(मन्दारिकां प्रति) भद्रे, किमिति कोपनां ते प्रियसखीं न प्रसादयसि ।

मन्दारिका—सहि, कर्हिं गदं ते दक्खिण्णं । (राजानं प्रति) भद्रा, सअं गण्हिअ पसादेहि णं । [सखि, कुत्र गतं ते दाक्षिण्यम् । (राजानं प्रति) भर्तः, स्वयं गृहीत्वा प्रसादयैनाम् ।]

(सुभद्रा सेष्यं मन्दारिकां पश्यति ।)

राजा—यथाह भवती । (सुभद्रा हस्तेन गृहीत्वा) प्रिये, प्रसीद प्रसीद ।

(सुभद्रा मोचयितुमिच्छति ।)

राजा—

उन्मूल्य धैर्यसर्वस्वं यया मे चोरितं मनः ।

सेयं दैवान्मया दृष्टा कथमद्य विमुच्यसे ॥ २४ ॥

(नेपथ्ये)

सहि मंदारिए मंदारिए । [सखि मन्दारिके मन्दारिके ।]

मन्दारिका—(ससभ्रमम्) पिअसहि, इदो सिग्घं एहि । सहिअणो खु सदावेइ । [प्रियसखि, इतः ग्रीध्रमेहि । सखीजनः खलु शब्दापयति ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) हुं असहणदा देव्वस्स । [हुम् । असहनता दैवस्य ।]

(राजा साभिलाषं मुञ्चति ।)

मन्दारिका—इदो इदो पिअसहि । [इत इतः प्रियसखि ।]

(निष्क्रान्ता सुभद्रा मन्दारिका च ।)

राजा—(तन्मार्गदत्तदृष्टिः)

गृहीता सा हस्ते कथमपि मया दुर्लभतमा
दृढो मानग्रन्थिश्चरणपतनैर्नो शिथिलितः ।
प्रमृष्टं नेत्रान्तात्र च करतलेनाश्रुसलिलं
गतैवासौ सद्यो मम निमिषतो हंसगमना ॥ २५ ॥

विदूषकः—वअस्स, समासण्णा साअंतणसंझा । एहि गच्छम्ह ।
[वयस्य, समासज्ञा सायंतनसंध्या । एहि गच्छावः ।]

राजा—कथं प्राप्तैव दुर्विनोददुरतिवाहा विभावरी ।

विदूषकः—णं सिविणएसु तं दक्खिस्ससि । [ननु स्वप्नेषु तां
द्रक्ष्यसि ।]

राजा—

स्वप्नेऽपि दृश्येत यदि प्रियासौ क्षणेन तुल्या क्षणदापि याति ।
स्वप्नेऽपि मे संप्रति दुर्लभा चेत् सहस्रयामा भवति त्रियामा ॥२६॥

विदूषकः—इदो इदो । [इत इतः ।]

राजा—(निर्वर्ण्य)

रक्ताशोकप्रवालश्रियमिह तनुते भूरुहाणां दलेषु
व्याकीर्णाम्भोजरेणूत्करमिव कुरुते गाङ्गमम्भश्च रक्तम् ।
सान्द्रः सन्ध्यातपोऽयं प्रतिफलितरुचिः कुङ्कुमक्षोदताम्रः
सद्यः सौवर्णशोभां रचयति पतितो राजतीषु स्थलीषु ॥ २७ ॥

(परिक्रम्य निष्कान्तौ ।)

इति श्रीभट्टारगोविन्दस्वामिसूनुना हस्तिमल्लेन विरचितायां
सुभद्रानाटिकायां द्वितीयोऽङ्कः ।

तृतीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति चेटी ।)

चेटी—आणत्त म्हि भट्टिदारिआए सुभद्दाए । जह 'हंजे मंजरिए, एसो खु दाणि बालासोओ समंतदो विअसंतकुसुमत्थवअ-मंडणसंमाणिअजोव्वणारंभो संवुत्तो । एसा अ णिरंतरुद्धलिअमउल-सअजाअंतसोहा बोलेइ मुद्धभावं मालईलआ । जाव दाणि एदाणं उव्वाहविहिं संपादेमो । ता जाव तुमं मंदाइणिं गट्टुअ पसण्ण-पूदाणि पदाणसलिलाणि अगघकमलाणि अ आणिअ आअच्छ'त्ति । ता जाव मंदाइणि गच्छेमि (परिक्रामति । पृष्ठतोऽवलोक्य) कंहं पिअ-सही तरंगिआ अणुपदं आअच्छेदि । (प्रतिपाल्य -तिष्ठति ।)

[आज्ञप्ताऽस्मि भर्तृदारिकया सुभद्रया । यथा 'सखि मञ्जरिके, एष खल्विदानी बालाशोकः समन्ततो विकसत्कुसुमस्तवकमण्डनसंमानितयौवनारम्भः संवृत्तः । एषा च निरन्तरोद्दलितमुकुलशतजायमानशोभा प्रकाशयति मुग्धमावं मालती-लता । यावदिदानीमेतयोरुद्वाहविधिं संपादयावः । तद्यावत् त्वं मन्दाकिनीं गत्वा प्रसन्नपूतानि प्रदानसलिलान्यर्धकमलानि चानीय आगच्छ' इति । तद्या-वन्मन्दाकिनीं गच्छामि । (परिक्रामति । पृष्ठतोऽवलोक्य) कथ प्रियसखी तर-ङ्गिका अनुपदमागच्छति ।] (प्रतिपाल्य तिष्ठति ।)

(प्रविश्य)

द्वितीया चेटी—हंजे मंजरिए, कीस तुमं चिट्ठसि ।
[सखि मञ्जरिके, कस्मात्त्वं तिष्ठसि ।]

प्रथमा—सहि तरंगिए, कीस तुमं पि अणुपदं आअदा ।
[सखि तरङ्गिके, कस्मात्त्वमप्यनुपदमागता ।]

1 A श्रीः । नमः सिद्धेभ्यः । अथ तृतीयोऽङ्कः । श्रीमत्प्रमेन्दुमुनये नमः । B ओं नमः सिद्धेभ्यः । श्रीमत्प्रमेन्दुमुनये नमः । अथ तृतीयोऽङ्कः । 2 A संवृत्तो, B सवृत्तो. 3 Thus A B. Hemacandra VIII. 4. 162 gives बोले as an आदेश for गम्. Better to render बोलेह by अतिक्रामति 4 A B अनर्धकमलानि.

द्वितीया—हला, अहं पि भट्टिदारिआए आणत्ता । जह सहि तरंगिए, तुमं दाव गदुअ 'सफुल्लो वालासोओ मालईलआ अ । दाणि चेअ तेसि उव्वाहविहि' त्ति विलंविआओ सहीओ भणिअ ईह आणेहि त्ति । [सखि, अहमपि भर्तृदारिकया आज्ञसा । यथा सखि तरङ्गिके, त्वं तावद्गत्वा 'संफुल्लो वालाशोको मालतीलता च । इदानीमेव तयोरुद्वाहविधिः' इति विलम्बिताः सखीभंगित्वा इहानयेति ।]

प्रथमा—सहि, अच्छेरं खु तं जं दाव हिओ दंसिदसामपाडल-मुद्धकोरओ वालासोओ ईसुव्मिण्णहरिदालपंडुरंकुरा अ मालई-लआ दाणि विआसणिव्भरकुसुमविच्छड्डमणोहरा संवुत्ता । [सखि आश्चर्यं खलु तद्, यत् तावद् ह्यो दर्शितश्यामपाटलमुग्धकोरको चालाशोक ईपद्मुद्भिन्नहरितालपाण्डुराङ्कुरा च मालतीलता, इदानीं विकास-निर्भरकुसुमविच्छेदमनोहरौ संवृत्तौ ।]

द्वितीया—सहि, अच्छेरं^१ एअं । जइ तुमं अप्पम्मि विस्साससि किं पि दाणि पुच्छेमि । [सखि, आश्चर्यमेतत् । यदि त्वमात्मनि विश्वसिपि, किमपीदानीं पृच्छामि ।]

प्रथमा—सहि, विस्सद्धं भणाहि । किं ण आणासि तुमं मंजरिअं^४ । [सखि, विध्रुवं भण । किं न जानासि त्वं मंजरिकाम् ।]

द्वितीया—सहि, कुदो खु एत्तिअम्मि हरिसेक्ककारणे वालासोअ-मालईलआणं आआलिअकुसुमुव्भेदकल्लाणे अण्णारिसं विअ दीणदीणं चेदो खामखामं च सरीरं लक्खिज्जइ भट्टिदारिआए । [सखि, कुतः खल्वेतावनि हर्षककारणे चालाशोकमालतीलतयोराकालिककुसुमोद्भेदकल्याणेऽ-न्यादृशमिव वीनदीन चेतः क्षामक्षामं च शरीरं लक्ष्यते भर्तृदारिकायाः ।]

1 A B इद् (= इतः ?) 2 A °कुसुमविच्छिद्रे सवृत्ते; B °विच्छिद्रे मनोहरे सवृत्ते. 3 A B अच्छे-*châyā* अच्छे; obscure. Reading adopted in the text conjectural. 4 A B add अ (च) after मंजरिअ.

प्रथमा—(विचिन्त्य, सशङ्कं परितो विलोक्य) ण आणामि अहं ।
[न जानाम्यहम् ।]

द्वितीया—सहि, किं एअं । वत्तुकामा विअ उवक्कमिअ पुणो ण
भणासि । [सखि, किमेतत् । वत्तुकामेवोपक्रम्य पुनर्न भणसि]

प्रथमा—हला, ण खु अहं तुइत्तो अहिअं जाणामि । तुमं दाव
कहं समत्थेसि । [सखि, न खल्वहं त्वत्तोऽधिकं जानामि । त्वं तावत्कथं
समर्थयसे ।]

द्वितीया—(सस्मितम्) सहि, जाणासि अइसंधादुं जं पुच्छिदं
रहस्सं पडिपुच्छसि । तहवि ण सक्क म्हि तुमं विअ पिअसहीए
अत्तणो भावं णिगूहिदुं । एसा भणामि । [सखि, जानास्यतिसंधातुं यत्पृष्ट
रहस्यं प्रतिपृच्छसि । तथाऽपि न शक्ताऽस्मि त्वमिव प्रियसख्या आत्मनो भावं
निगूहितुम् । एवा भणामि ।]

प्रथमा—अवहिद म्हि । [अवहितास्मि ।]

द्वितीया—हला, जह तुमं समत्थेसि तह एव्व तं ति मह वि
समत्थणा । [सखि, यथा त्वं समर्थयसे तथैव तदिति ममापि समर्थना ।]

प्रथमा—(सस्मितम्) अभिजादं पआसणं संवरणं च तरसि ।
[अभिजातं प्रकाशनं संवरणं च शक्नोषि^१ ।]

द्वितीया—हला, को णु खु सो महाभाओ, कहं च दिट्ठिभावो^२ ।
[सखि, को नु खलु स महाभागः, कथं च दृष्टिभावः ।]

प्रथमा—एत्तिअं पुण जाणामि । वालासोअसुमरणमेत्तम्मि अ
मिलाअंती इमस्स उद्देसस्स कहं तदा पिअसहीए सह मंदारिआए
आवत्तेदि । सहि, विहारणिरपेक्खा अ सहीअणं मोत्तूण इमस्सि

१ A B तरसि (in the chāyā also), we should expect काउ तरसि
= कर्तुं शक्नोषि. २ B दिट्ठो भावो (chāyā ' दृष्टो भावः)

चेअ पएसे तेण तेण ववदेसेण विलंबेइ । [एतावत्पुनर्जानामि । बाला-
शोकस्मरणमात्रे च म्लायन्ती अस्य उद्देशस्य कथां तदा प्रियसख्या सह मन्दा-
रिकया आवर्तयति । सखि, विहारनिरपेक्षा च सखीजनं मुक्त्वास्मिन्नेव प्रदेशे
तेन तेन व्यपदेशेन विलम्बते ।]

द्वितीया—हला, अलं एत्तिएण । गच्छेमि । [सखि, अलमेतावता ।
गच्छामि ।]

प्रथमा—तदो तुमं विअ अहं पि गच्छेमि । [ततस्त्वमिवाहमपि
गच्छामि ।]

द्वितीया—सहि, तह । [सखि, तथा ।] (उभे निष्कान्ते ।)
प्रवेशक ।

(ततः प्रविशत्युपविष्टा सौत्कण्ठा सुभद्रा मन्दारिका च ।)

सुभद्रा—(दीर्घं नि श्वस्य सखेदमात्मगतम्) अइ मूढ हिअअ, तस्स
जणस्स सुमरणं तुह् एकंतसंतावइत्तअं जाणंतो वि कीस तुमं पुणो
वि तं चेअ सुमरेसि । अम्मो चवलाइ लोअणाइ, जस्सि दाव सण्णि-
हिदे संपुण्णं दंसणं पि काढुं ण पहवेह, तं चेअ दाणि दंसिदुं अहि-
लसंताइ कुदो मं आआसेध । हंहो दुब्बिदद्ध हत्थ, जेण गहिदो
तुमं दुम्माणवसणपरवंतो मोएदुकामो आसी तस्स पुणो वि फंस-
सुहं णिल्लज्जो कंहं इच्छसि । अंग वम्मह, अण्णाणुराअपराहीणे वि
जणे मं खलीकरंतो किं ति तुह् सराणं विणोदलक्खीकरोसि । [अयि
मूढ हृदय, तस्य जनस्य स्मरणं तवैकान्तसंतापयितृकं जानदपि कस्मात्त्व पुन-
रपि तमेव स्मरसि । अहो चपले लोचने, यस्मिंस्तावत्संनिहिते संपूर्णं दर्शनमपि
कर्तुं न प्रभवथस्तमेवेदानीं द्रष्टुमभिलषन्ती कुतो मामायासयथः । हंहो दुर्विदग्ध
हस्त, येन गृहीतस्त्वं दुर्मानव्यसनपरवान् मोचयितुकाम आसीस्तस्य पुनरपि
स्पर्शसुखं निर्लज्जः कथमिच्छसि । अंग मन्मथ, अन्याचुरागपराधीनेऽपि जने
मां खलीकुर्वन् किमिति तव शराणां विनोदलक्ष्मीकरोषि ।]

मन्दारिका—पिअसहि, किं चितेसि । [प्रियसखि, किं चिन्तयसि ।]

सुभद्रा—ण किं वि । [न किमपि ।]

मन्दारिका—किं तदो अण्णं । [किं ततोऽन्यत् ।]

सुभद्रा—कुदो । [कुतः ।]

मन्दारिका—जं तुए अविच्छिण्णं चिंतिज्जइ । [यत्त्वयाविच्छिन्नं चिन्त्यते ।]

सुभद्रा—(सलज्जम्) जाणंती एव्व कुदो मं पुच्छेसि ।
[जानत्येव कुतो मां पृच्छसि ।]

मन्दारिका—पण्हो वि तहिं विसए तुह रमइत्तओ त्ति ।
[प्रश्नोऽपि तस्मिन्विषये तव रमयितेति ।]

सुभद्रा—हला, पराहीणे तस्सि जणे समूसुअं कीस मं उवहसेसि ।
[सखि, पराधीने तस्मिन् जने समुत्सुकां कस्मान्मामुपहससि ।]

मन्दारिका—सहि, दक्खिण्णमेत्तदिण्णुत्तरं, तं किं ति पुण ण
पत्तेसि । (सस्मितम्) अहव विरुद्धोवण्णासच्छलेण असाहारणिं
तुवम्मि तस्स बहुमइं उगघाडेंती अत्ताणं सलाहेसि । [सखि, दाक्षिण्य-
मात्रदत्तोत्तरं तं किमिति पुनर्न प्रत्याययसि । (सस्मितम्) अथवा विरुद्धोप-
न्यासच्छलेनासाधारणीं त्वयि तस्य बहुमतिमुद्घाटयन्ती आत्मानं श्लाघयसि ।]

सुभद्रा—(सविलक्षस्मितम्) पिअसहि, एसो अंजली । मा खु
मं उवहसेसि । [प्रियसखि, एषोऽञ्जलिः । मा खलु मामुपहस ।]

मन्दारिका—इअं म्हि तुण्हक्का । [इयमस्मि तूष्णीका ।]

सुभद्रा—(सखेदमात्मगतम्) हंत किणु खु एअस्स मअणरोअस्स
अवसाणं । जेण णिहअपीडिआए भारो मे सरीरं चंपणाअ पडि-

1 A B दाक्षिण्यमात्रमतिदत्तोत्तर etc. 2 Thus A B It should be
प्रत्येवि. 3 Thus A B. It should be श्लाघसे. 4 Thus A B. It should be
उवहसेहि (=उपहस).

भाइ । अहव कुदो मे तारिसा भाअघेआ जदो एदं कल्लाणं परि-
णमिस्सदि । (रोदिति) [हन्त किं नु खल्वेतस्य मदनरोगस्यावसानम् ।
येन निर्दयपीडिताया भारो मे शरीरं मरणाय प्रतिभाति । अथवा कुतो मे
तादृशानि भागधेयानि यत एतत्कल्याणं परिणंस्यति ।]

मन्दारिका—सहि, कुदो दे ओवाअसंका । अहरहं सिज्झंति
णिमित्ताइ । [सखि, कुतस्तेऽपायशङ्का । अहरहः सिध्यन्ति निमित्तानि ।]

सुभद्रा—पिअभासिणीओ खु सहीओ । [प्रियभापिप्यः खलु
सख्यः ।]

मन्दारिका—मा तह चित्तिअ । सव्वहा ण विसंवदंति णिमित्ताइ ।
[मा तथा चिन्तयित्वा । सर्वथा न विसंवदन्ति निमित्तानि ।]

सुभद्रा—होदु । [भवतु] (चिन्तानि सहमास्ते ।)

मन्दारिका—पिअसहि, किं ते मणो लिहइ । [प्रियसखि, किं ते
मनो लेदि ।]

सुभद्रा—हला, सुट्ठु भणिअं । लेक्खं चेअ खु तं । [सखि, सुट्ठु
भणितम् । लेख्यमेव खलु तत् ।]

मन्दारिका—किं अणंगलेहकव्वं । [किमनङ्गलेखकाव्यम् ।]

सुभद्रा—(सलज्जम्) तं विअ । [तदिव ।]

मन्दारिका—सहि, भणाहि भणाहि । [सखि, भण भण ।]

सुभद्रा—जइ ण मं उवहसिरससि, एसा भणिस्सं । [यदि न
मामुपहसिष्यसि, एषा भणिष्यामि ।]

मन्दारिका—ण एअं उवहासट्ठाणं । [नैतदुपहासस्थानम् ।]

सुभद्रा—तेण हि सुणाहि । [तेन हि शृणु ।]

मन्दारिका—अवहिद म्हि । [अवहिताऽस्मि ।]

सुभद्रा—(अनुस्मृत्य) लज्जदि भणिदुं जीह्वा । [लज्जते भणितुं जिह्वा ।]

मन्दारिका—तेण हि अहिलिहिअ दंसेहि । [तेन हि अभिलिख्य दर्शय ।]

सुभद्रा—सहि, तह । [सखि, तथा ।]

मन्दारिका—कुदो दाणिं उवअरणाइ । [कुत इदानीमुपकरणानि ।]

सुभद्रा—हला, एकं असोअपल्लवं उवणेहि । जदो तर्हि णिवडंत-
वाहसलिलोल्लिण्ण इमिणा थणंगाराअहरिचंदणरसेण णहग्गतूलिआ-
धरिण्ण लिहिस्सं । [सखि, एकमशोकपल्लवमुपनय । यतस्तस्मिन् निपतद्वा-
ष्पसलिलाद्रितेनानेन स्तनाङ्गरागहरिचन्दनरसेन नखाग्रतूलिकाधृतेन लेखि-
ष्यामि ।]

मन्दारिका—सहि, सोहणाइ अणंगलेहोवअरणाइ । ता एसा
आणेमि । [सखि, शोभनान्यनङ्गलेखोपकरणानि । तस्मादेषानयामि ।]
(उत्थाय नाट्येन निकृत्योपनयति ।)

(सुभद्रा आदाय तथा विलिखति ।)

मन्दारिका—सहि देहि, वाचइस्सं । [सखि देहि, वाचयिष्यामि ।]

सुभद्रा—बाहेदि मं लज्जा । जाव तुण्हक्का मणेण वाएहि ।
[बाधते मां लज्जा । यावत् तूष्णीका मनसा वाचय ।]

मन्दारिका—तह करिस्सं । (लेखमादाय, निरीक्ष्य, मनसा वाचयित्वा)
सहि, साहुं साहु । गहीरमधुरा वाचोजुत्ती । [तथा करिष्यामि]
(लेखमादाय, निरीक्ष्य, मनसा वाचयित्वा) सखि, साधु साधु । गभीरमधुरा
वाचोयुक्तिः ।]

सुभद्रा—पसंसा वि उवहासो मे पडिभासइ । [प्रशसाऽप्युपहासो
मे प्रतिभासते ।]

मन्दारिका—एसा अहं ण पसंसिस्सं । सो एव्व परं पसंसेट्ठु ।
[एषा अहं न प्रशंसिष्यामि । स एव परं प्रशंसतु ।]

सुभद्रा—(सलज्जम्) किं तेण वि जणेण एदं दक्खिद्वं । [किं
तेनापि जनेन एतद् द्रष्टव्यम् ।]

मन्दारिका—अण्णहा कहं अणंगलेहो भवे । [अन्यथा कथमनङ्ग-
लेखो भवेत् ।]

सुभद्रा—हला, कुदो मं लहूकरोसि । [सखि, कुतो मां लघूकरोषि ।]

मन्दारिका—(लेखं विलोक्य) जह एदाइ अक्खराइ सुत्थिदाइ
भविस्संति तह एअं करअलफंसासहं एत्थ एव्व असोअक्खंघे मुहु-
त्तअं पि समप्पिस्सं । [यथैतान्यक्षराणि सुस्थितानि भविष्यन्ति तथा एतं
करतलस्पर्शासहमत्रैवाशोकस्कन्धे मुहूर्तमपि समर्पयिष्यामि ।] (तथा कृत्वो-
पविशति ।)

सुभद्रा—हला, कदमं खु सो भूमि महाभाओ अलंकरेदि ।
[सखि, कतमां खलु स भूमिं महाभागोऽलकरोति ।]

मन्दारिका—जा वा का वा होट्टु णिवासभूमी । किं तेण ।
तं पुण महाभाअं इह एव्व दक्खिस्ससि । जदो तुह दंसणादो पट्टुदि
एसा तस्स विणोदभूमी । [या वा का वा भवतु निवासभूमिः । किं तेन ।
तं पुनर्महाभागमिहैव द्रक्ष्यसि । यतस्तव दर्शनात् प्रभृत्येषा तस्य विनोदभूमिः ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अवि णाम पिअसहीवअणं समस्सासण-
मेत्तं ण ह्वे । [अपि नाम प्रियसखीवचनं समाश्वासनमात्रं न भवेत् ।]

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च ।)

राजा—

उद्भाव्य भावं क्षणसंनिपातात्प्रखेदरोमाञ्चितवेपथूनाम् ।

सृष्ट्वा करो मे करमायताक्ष्या नाद्यापि रोमाञ्चमसौ जहाति ॥१॥

विदूषकः—इदो इदो पिअवअस्सो । [इत इतः प्रियवयस्यः ।]

(परिक्रामतः ।)

राजा—

तस्याः करं सरोमाञ्चममुञ्चन्नेव तत्क्षणम् ।

संक्रान्त इव रोमाञ्चो मम संस्पृशतः करम् ॥ २ ॥

अथवा न साधु कृतमनेनापि हस्तेन । कुतः

तस्या गृहीत्वापि करं विमुञ्चन्नदक्षिणोयं मम दक्षिणोऽपि ।

वामत्वमङ्गीकुरुते स हस्तो वामे विधौ कः खलु भो न वामः ॥३॥

(पदान्तरे स्तिमितस्तिष्ठति ।)

विदूषकः—(कतिचित्पदानि गत्वा परावृत्त्य) कहं ठिदो वअस्सो ।
(उपसृत्य हस्ते गृहीत्वा) वअस्स, किं एदं । रोमंचिदसव्वंगो दरणिमी-
लंतलोयणो णीसहं चिद्धसि । [कथं स्थितो वयस्यः । (उपसृत्य हस्ते
गृहीत्वा) वयस्य, किमेतत् । रोमाञ्चित्तसर्वाङ्गो दरणिमीललोचनो निस्सहं
तिष्ठसि ।]

राजा—सखे, आक्षिप्तोऽस्मि स्मृत्यन्तरेण । मम हि

संमोहनोऽन्तःकरणस्य विष्वक् स कोऽप्यपूर्वो विषवेग एव ।

स्मृति गतः संप्रति रम्यमूर्च्छासखः प्रियास्पर्शसुखप्रसर्पः ॥ ४ ॥

(विचिन्त्य) भो वयस्य एहि ।

हरिचन्दनलताभवने विधुरं मनो विनोदयितुम् ।

यत्र प्रियया दत्तश्चन्दनरसशीतलः स्पर्शः ॥ ५ ॥

1 Thus A B. It should be स. 2 Faulty metre in the first half of the आर्या stanza.

विदूषकः—तेण हि इदो इदो । [तेन हि इत इतः ।]

(परिक्रामतः ।)

राजा—(निर्वर्ण्य सोद्वेगम्)

वेदीवनं तदेवेदं नेत्रैकान्तविलोभनम् ।

जीर्णारण्यसिवारम्यं दृश्यते प्रियया विना ॥ ६ ॥

विदूषकः—(अग्रतो निर्दिश्य) वअस्स, दक्ख दाव णिरंतरुप्फु-
ल्लस्स ससिरिअदं इमस्स रत्तासोअपाअवस्स । [वयस्य, पश्य ताव-
न्निरन्तरोत्फुल्लस्य सश्रीकतामस्य रक्ताशोकपादपस्य ।]

राजा—(निर्वर्ण्य)

रक्ताशोकस्तवका निरन्तरोच्छ्वसितसुमनसो भान्ति ।

इषुधय इव कुसुमेषोः शरपूर्णाः सज्जिता मधुना ॥ ७ ॥

(निरुप्य) वयस्य स एवायं प्रियाचरणोत्तंसनमहार्हो रक्ताशोकः ।

विदूषकः—(निरुप्य) सो एव्व । [स एव ।]

राजा—वयस्य, प्रायेणात्रागन्तव्यमुद्वाहसंपत्तये प्रियया । एहि
कंचित् कालमिहैवात्मानं विनोदयावः ।

विदूषकः—जं वअस्सो भणादि । (परिक्रम्य शाखान्तरे विलोक्य)
वअस्स, दक्ख दक्ख । एसा खु सा इदो एव्व वट्टइ अत्तहोदी ।
[यद्वयस्यो भणति । (परिक्रम्य शाखान्तरे विलोक्य) वयस्य, पश्य पश्य ।
एषा खलु सा इत एव वर्ततेऽत्रभवती ।]

राजा—(सहर्षम्) यावदनेन तमालपादपेनान्तरितः स्वैरालाप-
मस्याः शृणोमि । (तथा दृष्ट्वा) हन्त किमपि दुरन्तचिन्तया दूयमानया
भवितव्यमनया । अस्या हि

आपाण्डुरा भाति कपोललेखा विनिष्पतद्वाष्पविभिन्नवर्णा ।

अजस्रहस्तार्पणवद्धरागा प्रभातदीनेव शशाङ्कलेखा ॥ ८ ॥

सुभद्रा—(अन्तःसंतापममिनयन्ती मन्दारिकाया अग्रहस्तसुरसि समर्प्य)
सहि, दिढं खु तवइ मे हिअअं । [सखि, दढं खलु तपति मे हृदयम् ।]

मन्दारिका—हुं असिसिरदा फंसस्स । [अहो अशिशिरता
स्पर्शस्य ।]

राजा—

तप्तस्य गाढं हृदयस्य मन्ये वाष्पाम्बुपूरः शिशिरोपचारः ।

अयत्नलभ्यः पुनरायतोऽस्या निःश्वास एव व्यजनानिलञ्च ॥९॥

मन्दारिका—कहं णिरग्गलं णिहणइ एअं वम्महहदओ । [कथं
निरर्गलं निहन्त्येनां मन्मथहतकः ।]

राजा—(नि श्वस्य) हन्त, निर्दयमेनां विध्यति मन्मथः । हंहो
दुर्विदग्धधानुष्क कुसुमधन्वन् अनभिज्ञोऽसि यथालक्ष्यमुपक्रमितुम् ।
तव हि

व्यधायि शस्त्रं कुसुमं, पुरस्सरा वसन्तमन्दानिलचन्द्रचन्द्रिकाः ।

स्त्रियः प्रकृत्या ननु कोमला इति त्वया तु गाढं किमसौ निहन्त्यते ॥१०॥

मन्दारिका—हुं सिसिरोवकरणं वि ण दाणि संगिहिदं । [हन्त
शिशिरोपकरणमपि नेदानीं संनिहितम् ।]

राजा—

स्तनांशुकं वाष्पजलावसिक्तं जलार्द्रवासः स्वयमेव क्लृप्तम् ।

न्यस्तो मुहुर्वक्षसि चाग्रहस्तो धत्ते प्रवालार्पणकृत्यमस्याः ॥११॥

मन्दारिका—कहं पडिक्खणं विवडुंतो ण दाव उवसम्मइ इमाए
संदावो । [कथं प्रतिक्षणं विवर्धमानो न तावदुपशाम्यति अस्याः संतापः ।]

राजा—

नयनसलिलस्नेहैः स्थूलैश्च निःश्रसितानिलै-
र्भृशमशिशिरैर्भूयः सोष्मस्तनद्वयघट्टितैः ।

कुवलयदृशो नूनं संधुक्षितः कुसुमोपमं

हृदयमदयः संतापाग्निर्धुनोति न शाम्यति ॥ १२ ॥

मन्दारिका—(सखेदम्) किं एत्थ करीअदु । [किमत्र क्रियताम् ।]

राजा—अहो अतिरिक्तः परितापः । अद्य हि

अन्तस्तापकाथादुद्वान्तैरिव निरन्तरं बाष्पैः ।

अङ्गे पुनः कृशाङ्ग्याः सन्तपे निपतितैः शुष्कम् ॥ १३ ॥

वयस्य, न युक्तमतःपरमिह स्थातुम् ।

मन्दारिका—(आत्मगतम्) दिढं खु एसा संतप्पेदि । ता एवं
दाव । (प्रकाशम्) पिअसहि, सुणाहि दाव किंचि । [दढं खल्वेषा सन्त-
प्यते । तस्मादेवं तावत् । (प्रकाशम्) प्रियसखि, शृणु तावत् किंचित् ।]

विदूषकः—किं एसा भणिदुं इच्छदि त्ति जाणिअ पुणो उवसप्पम्ह ।
[किमेपा भणितुमिच्छतीति ज्ञात्वा पुनरुपसर्पावः ।]

राजा—तथास्तु ।

सुभद्रा—एसा सुणामि । [एषा शृणोमि ।]

मन्दारिका—जदा एव्व इमस्स बालासोअस्स पिअसहीए दिण्णं
चरणसंतालणदोहलं तदा एव्व तेण हि महाभाएण तुह दिण्णो दंसणू-
सवो । णवरिअ जह जह इमिणा दंसिदो मउलुब्भेदो तह तह तेण वि
दंसिदो अणुराओ । तदो इमिणा एव्व अणुउलेण णिमित्तेण समत्थिदं
मए जदा एव्व इमस्स उव्वाहविही करीअदि तदो वरं ण तस्स समाअमो
विल्लेवेदि त्ति । [यदैवास्य बालाशोकस्य प्रियसख्या दत्तं चरणसंताडनदोहदं

तदैव तेन हि महाभागेन तव दत्तो दर्शनोत्सवः । अनन्तरं च यथा यथाऽमुना दर्शितो सुकुलोद्भेदस्तथा तथा तेनापि दर्शितोऽनुरागः । ततोऽनेनैवानुकूलेन निमित्तेन समर्थित मया, यदैवास्योद्वाहविधिः क्रियते ततः परं न तस्य समागमो विलम्बत इति ।]

सुभद्रा—पिअसहि, जह किर तुए भणिदं तह एव्व इदो पुवं अणुभूदं विअ । परंतु पिअसही जाणादि । [प्रियसखि, यथा किल त्वया भणितं तथैवेतः पूर्वमनुभूतमिव । परंतु प्रियसखी जानाति ।]

मन्दारिका—पिअसहि, जो दाव एत्तिअस्स संवादइत्तओ ण सो परं पि विसंवादइस्सदि विही । (सुभद्राया अश्रूणि प्रमार्जयन्ती) ता पिअसहि, जह एअस्स उव्वाहविही सोहणं एव्व णिव्वत्तिओ भविस्सदि तह तुमं वि पसण्णाचित्ता अमिलणमुही होहि । जेण सो एव्व सुणिव्वत्तिओ तुह उव्वाहसंपत्तिणाडिआए पुव्वरंगविही भविस्सदि । [प्रियसखि, यस्तावदेतावतः संवादयिता न स परमपि विसवादयिष्यति विधिः । (सुभद्राया अश्रूणि प्रमार्जयन्ती ।) तस्मात् प्रियसखि, यथैतस्योद्वाहविधिः शोभनमेव निर्वर्तितो भविष्यति तथा त्वमपि प्रसन्नचित्ता अम्लानमुखी भव । येन स एव सुनिर्वर्तितस्तयोद्वाहसंपत्तिनाटिकायाः पूर्वरङ्गविधिर्भविष्यति ।]

विदूषकः—सुट्टु कअं विलोहणं [सुष्टु कृत विलोभनम् ।]

राजा—स्थाने हि सख्यः कामिनीनां शरणम् ।

सुभद्रा—सहि, तेण हि एसा दाणिं सुत्थिद म्हि । [सखि, तेन हि एषा इदानी सुस्थिताऽस्मि ।]

राजा—वयस्य, एह्युपसर्पावः ।

मन्दारिका—एसा आअदा एव्व पदाणसलिलग्घकुसुमहत्था पिअसही मंजरिआ । [एषा आगतैव प्रदानसलिलार्घकुसुमहस्ता प्रियसखी मञ्जरिका ।]

1 A अणकुंमज्जणमुही (?) (chāyā अम्लानमुखी), B अम्मणमुही (chāyā अम्लानमुखी). Reading in the text is conjectural.

विदूषकः—(विलोक्य) वअस्स, एसां अ परा तुज्झ अणहिण्णा
आअच्छइ । ता जाव एसा अण्णदो गच्छइ ताव इह एव्व ठादव्वं ।
[वयस्य, एषा च परा तवानभिज्ञा आगच्छति । तस्माद्यावदेषा अन्यतो
गच्छति तावदिहैव स्थातव्यम् ।]

राजा—युक्तमाह भवान् ।

(प्रविश्य यथानिर्दिष्टा)

मञ्जरिका—भट्टिदारिए, एदाइ णलिणीपत्तधरिआइ पदाणसलि-
लाइ अग्घकुसुमाइं च । [भर्तृदारिके, एतानि नलिनीपत्रधृतानि प्रदानस-
लिलान्यर्घकुसुमानि च ।]

सुभद्रा—सहि, तेण हि णिव्वत्तेमो दाणि इमाणं उव्वाहविहिं ।
[सखि, तेन हि निर्वर्तयाम इदानीमनयोरुद्धाहविधिम् ।]

चेटी—भट्टिदारिए, काए दिज्जउ पदाणसलिलं । [भर्तृदारिके,
कया दीयतां प्रदानसलिलम् ।]

सुभद्रा—सहि मंदारिए, णं तुह सुदा मालईलआ । ता तुमं
चेअ पदाणसलिलं देहि । [सखि मन्दारिके, ननु तव सुता मालतीलता ।
तस्मात्त्वमेव प्रदानसलिलं देहि ।]

मन्दारिका—तह करिस्सं । (उत्थाय प्रदानसलिलं गृहीत्वा सविलास
स्मितम्) पिअसहि, दक्ख दक्ख । सअं चेअ एसा इमस्स खंढे
ओलग्गा । [तथा करिष्यामि । (उत्थाय प्रदानसलिलं गृहीत्वा सविलास
स्मितम्) प्रियसखि, पश्य पश्य । स्वयमेवैषास्य स्कन्धेऽवलम्बा ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) गाढो उवक्खेओ । [गाढ उपक्षेपः ।
(सस्मित पश्यति ।)

राजा—(निर्वर्ण्य)

अलसस्मितं सुदत्यास्त्रपां प्रमोदं दृढं च परितापम् ।

सूचयति म्लायन्त्या विकसितमिव कुन्दलतिकायाः ॥ १४

मन्दारिका—अहो पत्थिवराअ, एसा मे पिअसही तुज्ज दिण्णा ।
(सल्लिधारा पातयति ।) [अहो पार्थिवराज, एषा मे प्रियसखी तव दत्ता ।]

राजा—अहो अभिजातश्लेषोपन्यासः । एष शिरसा प्रतिगृह्णामि ।

चेटी—सोहणं सोहणं । [शोभनं शोभनम् ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अहो वाआकोसलं । [अहो वाकौशलम् ।]

मन्दारिका—हंहो बालासोअ, जह एसा ण किलम्मइ, जह अ
लअंतरेहि ण भेदं णीअदि तह एअं संभावेहि । [अहो बालाशोक,
यथैषा न क्लाम्यति, यथा च लतान्तरैर्न भेदं नीयते, तथैतां संभावय ।]

चेटी—सुट्ठु भणिअं । [सुष्टु भणितम् ।]

सुभद्रा—सहि, सोहणा अब्भत्थणा । [सखि, शोभनाऽभ्यर्थना ।]

राजा—अभिरूपोऽयमन्यापदेशः ।

मन्दारिका—एसा दाणि जामादुणो अग्घं उवहरेमि । [एषा
इदानीं जामातुरर्घमुपहरामि ।] (उपहरणं नाटयति ।)

राजा—सुसंगतमेतद् वधूवरम् । तथा हि

अशोकः पुष्पितो भाति मालत्या स्मेरपुष्पया ।

व्यतिकीर्णं इवाम्भोदः सान्ध्यो नक्षत्रमालया ॥ १५ ॥

विदूषकः—वअस्स, एसो खु मे अवसरो, जाव उवसप्पामि ।
(उपसृत्य) सोत्थि होदीए । एसो खु दुग्गओ को वि बम्हणो गंगा-
तीरे णिअमं करेमि । अज्ज उण एअस्सिं तुम्हाणं ऊसवे सोत्थिवाअणं
गडिगण्हिदुं आअदो म्हि । [वयस्य, एष खलु मेऽवसरो, यावदुपसर्पामि ।

उपसृत्य) स्वस्ति भवत्यै । एष खलु दुर्गतः कोऽपि ब्राह्मणो गङ्गातीरे नियमं
करोमि । अद्य पुनरेतस्मिन् युष्माकमुत्सवे स्वस्तिवाचनकं प्रतिग्रहीतु-
गागतोऽस्मि ।]

सुभद्रा—(सहर्षं परितो विलोक्य । सविषादमात्मगतम्) कहां एसो असहाओ आअदो । [कथमेषोऽसहाय आगतः ।] (मन्दारिकामीक्षते ।)

मन्दारिका—(अपवार्यं) पिअसहि, तेण वि आअदेण होदव्वं । मंजरिअं पुण दट्ठण ण पविट्ठं ति तक्केमि । [प्रियसखि, तेनाप्यागतेन भवितव्यम् । मञ्जरिकां पुनर्दृष्ट्वा न प्रविष्टमिति तर्कयामि ।]

सुभद्रा—(अपवार्यं) तह होदव्वं । [तथा भवितव्यम् ।]

मन्दारिका मञ्जरिका च—अय्य, किं तुए इच्छीअदि । [आर्य, किं त्वया इष्यते ।]

विदूषकः—किं अण्णं । आअलं भोअणं । [किमन्यत् । आगलं भोजनम् ।]

उभे—(सस्मितम्) अय्य, तह संपादइस्सम्ह । [आर्य, तथा संपादयिष्यामः ।]

विदूषकः—ण विस्ससेमि । करेहि दाव मम हत्थे सलिलप्पदाणं । [न विश्वसिमि । कुरु तावन्मम हस्ते सलिलप्रदानम् ।]

मन्दारिका—तेण हि तह करेमि । (सलिलप्रदानं नाटयति ।) अय्य, पूरइस्सं तुह समीहिदं । [तेन हि तथा करोमि । (सलिलप्रदानं नाटयति) आर्य, पूरयिष्यामि ते समीहितम् ।]

(सर्वे सस्मितं पश्यन्ति ।)

सुभद्रा—सहि मंजरिए, तुमं दाव गदुअ णिव्वुत्तं बालासोअमालईलआणं उव्वाहकल्लाणं ति भणिअ, तरंगिआए सह आअच्छंतीओ सहीओ णिव्वट्ठिअ पुण्णपत्तं आहरसु । [सखि मञ्जरिके, एवं तावद्गत्वा, निर्वृत्तं बालाशोकमालतीलतयोरुद्धाहकल्याणमिति भणित्वा, तरंगिकया सहागच्छन्ती सखीनिर्वर्त्य पूर्णपात्रमाहर ।]

चेटी—तह । [तथा ।] (इति निष्क्रान्ता ।)

(प्रविश्य)

राजा—(मन्दारिकां प्रति) भद्रे,

एषा तव प्रियसखी स्वयमेव दत्ता

यस्मै त्वया ननु स एष परं कृतार्थः ।

अभ्यर्थनं तु तव तत् पुनरुक्तमासी—

दस्यै यदित्थममुनाऽपि च दत्त आत्मा ॥ १६ ॥

(मन्दारिका-सस्मितं सुभद्रामीक्षते ।)

(सुभद्रा सलज्जं मुखं नमयति ।)

राजा—

इयं परिम्लानमृणालकोमला तवाङ्गयष्टिर्भृशमद्य ताम्यति ।

तदेहि लज्जाव्यसनं विमुञ्चती ममावलम्बस्व करं नितम्बिनि ॥१७॥

(हस्ते गृह्णाति ।)

(सुभद्रा सलज्जं मन्दारिकामवलम्बते ।)

मन्दारिका—(सस्मितम्) सो एव दाणि अवलंबेद्वो ।

[स एवेदानीमवलम्बितव्यः ।]

सुभद्रा—(अपवार्यं) सहि, अत्थि वा इमस्स पराहीणस्स जणस्स
एत्तिअं वेलं एत्थ ठादुं पहुत्तणं । [सखि, अस्ति वास्य पराधीनस्य
जनस्यैतावती वेलामत्र स्थातुं प्रभुत्वम् ।]

राजा—(मन्दारिका प्रति) भद्रे, किं ते सखी वदति ।

मन्दारिका—अत्थि वा इमस्स पराहीणस्स जणस्स एत्तिअं वेलं
एत्थ ठादुं पहुत्तणं ति । [अस्ति वास्य पराधीनस्य जनस्यैतावती
वेलामत्र स्थातुं प्रभुत्वमिति ।]

राजा—न खलु गृहीतो वाचिकस्यार्थः ।

विदूषकः—णं देवी-आअमणादो भाइद्ववं । [ननु देव्यागम-
नास्तेतव्यम् ।]

राजा—कथमीर्ष्यालुस्ते प्रियसखी ।

(ततः प्रविशति देवी चेटी च ।)

चेटी—भट्टिणि, जो दाव असाहारणं तुवंमि अणुराअं दंसेइ, सो दे खमं चेअ अरिहेदि भट्टा । अहव सव्वदो णिवडंति पुरिसाणं दिट्ठीओ । विसेसदो उण राआणं । ता तं चेअ इत्थिआए वल्लहत्तणं जा अवरद्धे अ पसादं दंसेइ । ता ण जुत्तं तत्तिण्ण तह कोविट्ठं । अदिकोवणाए वल्लहा वि उव्विज्जंति पुरिसा । सुदं च मए दे कोवादो दिहं विसण्णो भट्टेत्ति । ता एहि, सअं उवसप्पम्ह भट्टिणं । जदो कुविदाए वल्लहाए सअं वि उवसप्पणं चेअ पसादो । [भट्टिणि, यस्तावदसाधारणं त्वय्यनुराग दर्शयति स ते क्षमामेवार्हति भर्ता । अथवा सर्वतो ज्ञेयतन्ति पुरुषाणा दृष्टयः । विशेषतः पुना राज्ञाम् । तस्मात् तदेव स्त्रिया वल्लभत्वं या अपराद्धे च प्रसाद दर्शयति । तस्मान्न युक्तं तावतैव तथा कोपितुम् । अतिकोपनाया वल्लभा अपि उद्विजन्ते पुरुषाः । श्रुतं च मया ते कोपाद् दृढं विषण्णो भर्तेति । तस्मादेहि, स्वयमुपसर्पावो भर्तारम् । यतः कुपिताया वल्लभाया. स्वयमप्युपसर्पणमेव प्रसादः ।]

देवी—परवदी खु अहं पिअसहीए । तह करिज्जउ । [परवती खल्वहं प्रियसख्या । तथा क्रियताम् ।]

चेटी—सुदं मए वेदीवणं गदो भट्टो त्ति । ता इदो इदो भट्टिणी । [श्रुतं मया वेदीवन गतो भर्तेति । तस्मादित इतो भट्टिनी ।]

(परिक्लामतः ।)

चेटी—पविट्ठ म्हे वेदीवणं वि अत्तहोदि । [प्रविष्टे स्वो वेदीवनमपि अत्रभवति ।]

विदूषकः—अहं पि एदं जाणामि । [अहमप्येतज्जानामि ।]

चेटी—(कर्णं दत्त्वा) भट्टिणि, इमस्स एव्व असोअपाअवस्स

I B तत्तीण्ण; chāyā in A B तास्विकेन. तत्तिअ on the analogy of एत्तिअ should be taken to stand for तावत् or तावन्मात्र.

पादे अय्यकच्चाअणो मंतिअदि । ता इह एव्व भट्टिणा वि होदव्वं ।
[भट्टिनि, अस्यैवाशोकपादपस्य पाद आर्यकार्यायनो मन्नयते । तस्मादिहैव
भर्त्रापि भवितव्यम् ।]

देवी—हला, इमिणा वउलपाअवेण अंतरिआओ पेक्खम्ह
(तथा दृष्ट्वा सकोपम् ।) अइभूमिं गओ इमस्स अविणओ । [सखि,
अनेन बकुलपादपेनान्तरिते पश्यावः । (तथा दृष्ट्वा सकोपम् ।) अतिभूमिं
गतोऽस्याविनयः ।]

विदूषकः—णं भणामि । अहं वि एअं जाणामि तुवम्मि चेअ
असाहारणो अत्तहोदो अणुराओ । देवीए उण दक्खिण्णमेत्तं ति ।
[ननु भणामि । अहमप्येतज्जानामि त्वय्येवासाधारणोऽन्नभवतोऽनुरागः ।
देव्यां पुनर्दाक्षिण्यमात्रमिति ।]

चेटी—(सकोपम्) अम्मो दुट्टदा बम्हवंधुणो । [अहो दुष्टता
ब्रह्मबन्धोः ।]

देवी—जाणादि खु सो जहत्थं । [जानाति खलु स यथार्थम् ।]

(चेष्ट्या सह संसंरम्भमुपसर्पति । सर्वे दृष्ट्वा संभ्रान्ताः ।)

(राजा देवी^१ विलोक्य सभयं हस्तं शिथिलयति ।)

विदूषकः—आ कहं अआलसंहारो । [आः कथमकालसंहारः ।]

(सुभद्रा सासूयं हस्तमाक्षिप्यान्यतो गच्छति ।)

मन्दारिका—पिअसहि, इदो गट्टुअ हरिचंदणलआघरणे सही-
अणं पडिवालेम्ह । [प्रियसखि, इतो गत्वा हरिचन्दनलतागृहे सखीजनं
प्रतिपालयावः ।]

(उमे परिक्रम्य हरिचन्दनलतागृहं प्रविश्योपविशतः ।)

देवी—अय्यउत्त, दिट्ठं जं पेक्खिदव्वं । इअं पुण दाणि मह
अव्वत्थणा । मा दाव तुमं असच्चसंवादेहि अं विलोभअंतो मं विणो-

१ A B add सुभद्रा च after देवी. २ A B read अविलोभअतो (ohāyā
अविलोभयन्).

दपत्तं करेहि । [आर्यपुत्र, दृष्टं यद् द्रष्टव्यम् । इयं पुनरिदानी ममाभ्यर्थना ।
मा तावत्त्वमसत्यसंवादैश्च विलोभयन् मां विनोदपात्रं कुरु ।]

राजा—प्रिये विलातराजपुत्रि,

का नाम संप्रति मम प्रतिपत्तिरत्र
प्रत्यक्षमेव तव योऽस्मि कृतापराधः ।
भूयोऽनुभूतमनुपात्तविलोभनं ते
दाक्षिण्यमेव शरणं मम शिष्टमास्ते ॥ १८ ॥

देवी—किं ति विचरीअं भणिज्जइ । एसो खु तुह पिअवअस्सो
जाणाइ मइ दाव तुज्झ दक्खिण्णं ति । [किमिति विचरीतं भण्यते ।
एष खलु तव प्रियवयस्यो जानाति मयि तावत्त्व दाक्षिण्यमिति ।]

(विदूषक सभयं राज्ञः पृष्ठतो भवति ।)

देवी—अय्यउत्त, परमत्थदो तुह हिअअं अजाणंतीए जं जं मए
अदिकंतं तं तं सव्वं दक्खिण्णत्तणेण तुए खंतव्वं । एसो वेलादीए
पच्छिमो पणामो । [आर्यपुत्र, परमार्थतस्तव हृदयमजानत्या यद्यन्मयाऽ
तिक्रान्तं तत् तत् सर्वं दाक्षिण्येन त्वया क्षन्तव्यम् । एष वैलात्याः पश्चिमः
प्रणामः ।]

(प्रणम्य सेष्यं गन्तुमिच्छति ।)

राजा—सुन्दरि, कोऽयं प्रत्युत प्रणामः । (अग्रतो भूत्वा) देवि,
स्प्रष्टुमद्य चरणौ विभेमि ते नूतनाविनयजातसाध्वसः ।

एष केवलमहं तवाग्रतस्ताडयामि शिरसा महीतलम् ॥ १९ ॥

(प्रणमति ।)

देवी—अय्यउत्त, जेण तुए फंसो वि मे परिहरिज्जइ ण दाव
तुमं फंसिदुं खमामि । ता सअं चेअ उट्ठेहि । एसा दाणि अहं

गच्छामि । [आर्यपुत्र, येन त्वया स्पर्शोऽपि मे परिद्वियते, न तावत् त्वां
स्प्रष्टुं क्षमे । तस्मात् स्वयमेवोत्तिष्ठ । एषा इदानीमहं गच्छामि ।]

(चेद्या सह ससरम्भ निष्क्रान्ता ।)

विदूषकः—वअस्स, किं आआसे पणमीअदि । [वयस्य, किमाकाशे
प्रणम्यते ।]

राजा—(उत्थाय) कथमप्रसन्नैव गता ।

विदूषकः—अकिदण्णअ, एसो खु देवीए सुमहंतो पसादो जं
सजीविदा मुक्क म्ह । [अकृतज्ञ, एष खलु देव्याः सुमहान् प्रसादो यत्
सजीवितौ मुक्तौ स्वः ।]

राजा—कथमतिभूमि गतो मन्युर्मानिन्याः । तथा हि

न्यस्यन्त्या गमने पदं मम मुखात् प्रत्याहरन्त्या दृशौ

निःश्वासस्खलिताक्षराणि च वचांस्यन्तर्निगृह्य क्षणम् ।

मूर्ध्ना किञ्चिदिवानतेन निभृतं संदर्शितः सुभ्रुवा

सोत्कर्षा प्रणयस्थितिं प्रकटयन्नीर्ष्याप्रणामक्रमः ॥ २० ॥

(विचिन्त्य) हन्त देवीप्रसादनं प्रति निराश एवास्मि । यत्पुनः प्रणत

एव मयि सा प्रस्थिता तदैवमात्रमवलम्बनम् । कुतः

अतिक्रमं प्रेयसि बद्धकोपा विधाय पूर्वं विहितव्यलीके ।

स्त्रियो हि किञ्चित्परिवृत्तकोपा भवन्ति जातानुशयाः क्रमेण ॥ २१ ॥

(परितो विलोक्य सविषादम्) कथं प्रियतमापि सकोपं तिरोहितैव । तथा हि

स्रस्तस्तनांशुकसमर्पणनिर्व्यपेक्षं

तिर्यग्विलोकननिरुत्सुकजिह्वानेत्रम् ।

भ्रूभङ्गभिन्नमुखविभ्रमया नताङ्ग्या

मन्दस्खलच्चरणमन्थरमत्र यातम् ॥ २२ ॥

(नि श्वस्य) कथमुभयतो व्याहताः स्मः ।

विदूषकः—एदं खु तं आमंतणलालसाए विमुक्तभिक्षापरिभ्रम-
णस्स आमंतणसालस्मि गलहत्थणं । [एतत् खलु तद् आमन्नण-
गलसया विमुक्तभिक्षापरिभ्रमणस्य आमन्नणशालायां गलहस्तनम् ।]

राजा—हन्त, क नु खलु तिरोहिता स्यात् ।

विदूषकः—(विलोक्य) किं एअं असोअक्खंधसमप्पिअं पत्तं
हीसइ । (आदाय विलोक्य च) वअस्स, अक्खराइ विअ कुडिल-
कुडिलाइ दीसंति । [किमेतद् अशोकस्कन्धसमर्पितं पत्र दृश्यते ।
(आदाय विलोक्य च) वयस्य, अक्षराणीव कुटिलकुटिलानि दृश्यन्ते ।]

राजा—तेन हि वाच्यताम् ।

विदूषकः—को जाणइ अक्खराइ । तुमं चेअ वाएहि । [को
जानात्यक्षराणि । त्वमेव वाच्य ।]

राजा—(गृहीत्वा वाचयति ।)

दिट्ठेण जेण सअलं रमणिज्जं मह कअं अरमणिज्जं ।

सो अरमणिज्जविरहो अवि णाम रमेज्ज णअणाइ ॥ २३ ॥

[दृष्टेन येन सकलं रमणीय मम कृतमरमणीयम् ।

सोऽरमणीयविरहोऽपि नाम रमयेत् नयने ॥]

कथं प्रिययैव विलिखितम् ।

विदूषकः—अहो अत्तहोदो मेहावित्तणं जेण खणदंसणादो
पत्तगदाइ अक्खराइ मुखे संकमिदाइ । मह उण सुइरं पेक्खंतस्स जीहा
वि ण परिप्फंदिआ । [अहो अत्रंभवतो मेधावित्तं येन क्षणदर्शनात्पन्नगतान्य-
क्षराणि मुखे संक्रमितानि । मम पुनः सुत्रिरं पश्यतो जिह्वाऽपि न परिस्पन्दिता ।]

(राजा पुन. पुनर्वाचयति ।)

सुभद्रा—(खगतम्) अइ णिल्लज्ज हिअअ, कंहं दाणि पि ण
विवज्जसि । [अथि^१ निर्लज्ज हृदय, कथमिदानीमपि न विपर्यसे ।]

मन्दारिका—(खगतम्) हुं, बलिअं खु विसण्णा पिअसही । को वा एत्थ आसासो । [हन्त, बलवत् खलु विषण्णा प्रियसखी । को वाऽन्नाश्वासः ।]

(प्रविश्य)

मञ्जरिका—भट्टिदारिए, आअच्छइ तरंगिआए सह सव्वो सहीअणो । अहं पुण पिअणिवेअणत्थं अग्गदो तुरिअं आअदा । [भर्तृदारिके, आगच्छति तरङ्गिकया सह सर्वः सखीजनः । अहं पुनः प्रिय-निवेदनार्थमग्रतस्त्वरितमागता ।]

मन्दारिका—हला, किं तं । [सखि, किं तत् ।]

चेटी—एसा खु भट्टिदारिआ महाराअणमिणा चक्कवट्टिणो महाराअभरहस्स पदिज्जदि त्ति । [एषा खलु भर्तृदारिका महाराजनमिना चक्रवर्तिनो महाराजभरतस्य प्रदीयत इति ।]

सुभद्रा—(सविषादमात्मगतम्) हंत किं एदं । [हन्त किमेतत् ।]
(वैचित्त्यं नाटयति ।)

मन्दारिका—(खगतम्) एदं खु विसण्णाए पिअसहीए समस्सा-सणं । [एतत्खलु विषण्णायाः प्रियसख्याः समाश्वासनम् ।]

सुभद्रा—(खगतम्) अइ णिड्डुर हिअअ, दाणि णिस्संकं विवज्जसु । [अयि^१ निष्टुर हृदय, इदानीं निःशङ्कं विपर्यस्व ।]

मन्दारिका—(खगतम्) का वा इह पडिवत्ती । (प्रकाशम्) हला, अहं पुण पुण्णपत्तं धारेमि । तुमं दाव अग्गदो गदुअ इह एव्व सहीअणं आपेहि । जेण सह एव्व उव्वाहसंमाणिअं असोअं मालई-लअं च दक्खिस्सम्ह । [कां वा इह प्रतिपत्तिः । (प्रकाशम्) सखि, अहं पुनः पूर्णपात्रं धारयामि । त्वं तावदग्रतो गत्वा इहैव सखीजनमानय । येन सहैव उद्वाहसंमानितमशोकं मालतीलतां च द्रक्ष्यामः ।]

चेटी—जं पिअसही भणाइ । [यत् प्रियसखी भणति ।] (निष्क्रान्ता ।)

सुभद्रा—(सखेदम्) हला, देहि मे ऊसंगं । अण्णारिसं खु दाणि मे सरीरं । [सखि, देहि म उत्संगम् । अन्यादृशं खल्विदानीं मे शरीरम् ।]

मन्दारिका—तेण हि इह एव सआहि । [तेन हि इहैव शेष्व ।]

(सुभद्रा मन्दारिकाया उत्सगमधिशेते ।)

मन्दारिका—अहवा किं एत्थ समस्सासणं । [अथवा किमत्र समाश्वासनम् ।]

(सुभद्रा पारवश्यमभिनीय मुह्यति ।)

मन्दारिका—(सशङ्क सुभद्राया अगानि स्पृष्ट्वा सशोकम्) हा हा हद् म्हि, कर्हिं मे पिअसही । (ससभ्रमम्) परित्ताअध । [हा हा हताऽस्मि, कुत्र मे प्रियसखी । (ससंभ्रमम्) परित्रायध्वम् ।]

(राजा विदूषकश्च आकर्णयत ।)

राजा—कुतोऽत्र स्त्रीजनाक्रन्दनम् ।

विदूषकः—(सभयम्) अविह अविह । रक्खेहि मं वअस्स, रक्खेहि । [अवत अवत । रक्ष मा वयस्स, रक्ष ।]

(उभौ सत्वरमुपसर्पत ।)

राजा—(दृष्ट्वा सविषादम्) कथमन्यामेव दशां गता प्रियतमा ।

विदूषकः—कहं अवत्थंतरगदा तत्तहोदी । [कथमवस्थान्तरं गता तत्रभवती ।]

मन्दारिका—(दृष्ट्वा) हंत परित्तायहि । [हन्त परित्रायस्व ।]

राजा—(विदूषकस्य हस्ते लेखं दत्त्वा, सुभद्रामुत्सगे समर्प्य) प्रिये, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

विदूषकः—समस्ससिहि अत्तहोदि, समस्ससिहि । [समाश्वसिहि अत्रभवति, समाश्वसिहि ।]

मन्दारिका—सहि, समस्ससिहि समस्ससिहि । [सखि, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।]

(सुभद्रा किञ्चिदाश्वसिति ।)

राजा—(सहर्षम्)

जातश्चकोरदृशि मोहमुपागतायां
तीव्राभिषङ्गबहुलो मम कोऽपि मोहः ।

लब्धं समाश्वसनमद्य समाश्वसत्या—

मस्यां मया च विधुरेण च मन्मथेन ॥ २४ ॥

(सुभद्रा राजानं दृष्ट्वा सलज्जमुत्थाय सेष्यमन्यतो गन्तुमिच्छति ।)

(राजा उत्थाय हस्ते गृह्णाति ।)

सुभद्रा—(सासूयम्) मुक्तो एव हत्यो किं ति पुणो वि घेप्पइ ।
[मुक्त एव हस्तः किमिति पुनरपि गृह्यते ।]

राजा—ननु त्वयैव कोपपरवत्या मोचितः ।

सुभद्रा—अमुंचंती वा अहं कहां चिद्धेमि । [अमुञ्चन्ती वा अहं
कथं तिष्ठामि ।]

विदूषकः—गदं गदं । गंतव्वं दाणि चिंतिज्जड । [गत गतम् ।
गन्तव्यमिदानीं चिन्त्यताम्]

राजा—भद्रे, किं ते सख्या मोहकारणम् ।

मन्दारिका—(सविषादमात्मगतम्) हुं, कहां किर भणिस्सं । [हन्त,
कथं किल भणिष्यामि ।]

(नेपथ्ये)

सुरपरिवृढो वारांपत्या वसन्नपि मागधौ^२

गुणगणकथाऽशक्तो यस्याभवत्स च मागधः ।

जलधिवसनामेनां भुञ्जन्नसौ भरतावनीं

जयति भरतः श्रीमानिक्ष्वाकुवंशशिखामणिः ॥ २५ ॥

(पुनर्नेपथ्ये)

वृषभतनयः पूर्वञ्चक्रायुधश्चरसो मनु-
नेवनिधिपतिः पायात्पृथ्वीं चिरं भरतेश्वरः ।

वृषभशिखरिप्रान्तोत्कीर्णानधीत्य शचीपतेः

सदसि च गुणान्यस्योद्गायन्ति किन्नरयोपितः ॥ २६ ॥

(सर्वे आकर्णयन्ति ।)

विदूषकः—(विलोक्य) वअस्स, पैक्ख पैक्ख । इह वि कण्ड-
प्पवादकंदरमुह्वट्टिणं तुह एव्व दिसाविजयभोआवलि गाअंतं किंणर-
मिहुणं । [वयस्य, पश्य पश्य । इहापि काण्डप्रपातकन्दरमुखवर्ति ननु तवैव
दिशाविजयभोगावली गायत् किन्नरमिथुनम् ।]

(सर्वे पश्यन्ति ।)

सुभद्रा मन्दारिका च—(सहर्षमात्मगतम्) किं एसो एव्व सो ।
[किमेष एव सः ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्)—हिअअ, एण्ह समस्ससिहि ।
[हृदय, इदानीं समाश्रसिहि ।]

मन्दारिका—जिदं अम्हेहिं । क्हं एस एव्व चक्कवट्ठी ।
[जितमस्साभिः । कथमेष एव चक्रवर्ती ।]

(सुभद्रा ससाध्वसमन्यतो गन्तुमिच्छति ।)

विदूषकः—जस्स दाव चउरुदहिपरिअंताए महीए समुइदो
करो दिज्जइ, तस्स क्हं तुए करो ण दिज्जइ । [यस्य तावच्चतुरुदधि-
पर्यन्तया मया समुचितः करो दीयते, तस्य कथं त्वया करो न दीयते ।]

राजा—भद्रे, किमेतत् ।

मन्दारिका—भद्रा, महाराअणमिणा चक्कवट्ठीणो अत्ताणं पदि-
च्छिदं सुणिअ अण्णं चेअ किर चक्कवट्ठीणं मुणंतीए दिठाभिसंगादो

मम ऊसंगे मुच्छिदं पिअसहीए । [भर्तः, महाराजनमिना चक्रवर्तिन
आत्मान प्रदित्सितं श्रुत्वा, अन्यमेव किल चक्रवर्तिनं जानत्या दृढाभिषङ्गा-
न्ममोत्सङ्गे मूर्छितं प्रियसख्या ।]

विदूषकः—ही^१ ही । [ही ही ।]

राजा—(सहर्षम्) किमियमेव विद्याधरराजस्य नमेर्भगिनी मातुल-
तनया सुभद्रा नाम स्त्रीरत्नम् ।

मन्दारिका—अह इं । [अथ किम् ।]

विदूषकः—संघडेइ हु सुसरिसं मिहुणं विही । [संघटयति खलु
सुसदृशं मिथुनं विधिः ।]

राजा—आकाश एवोत्पन्नं रत्नम् ।

मन्दारिका—(विदूषकस्य हस्ते लेखनं दृष्ट्वा) पिअसहि, एसो हु सो
लेहो । [प्रियसखि, एष खलु स लेखः ।]

सुभद्रा—(सलज्जम्) किं सो वि इमिणा दिट्ठो । [किं सोऽप्यनेन
दृष्टः ।]

राजा—सुन्दरि, अयमेव त्वद्विरहविह्वलानामस्माकमियतीं वेलां
विलोभनमभूत् । कुतः

प्रत्यक्षमन्मथार्तिप्रकाशनादपि मृगीदृशः प्रायः ।

रमयत्यनङ्गलेखः समुत्सुकं कामिनश्चेतः ॥ २७ ॥

मन्दारिका—(कर्णं दत्त्वा) कहां पदसहो (पुन कर्णं दत्त्वा) कहां
सहीअणालावो । पिअसहि, संपुण्णा खु अम्हाणं मणोरहा । ता एहि
दाव । पुणो वि दक्खिस्ससि । [कथं पदशब्दः । (पुनः कर्णं दत्त्वा)
कथं सखीजनालापः । प्रियसखि, संपूर्णाः खल्वस्माक मनोरथाः । तस्मादेहि
तावत् । पुनरपि द्रक्ष्यसि ।]

1 A हे हे (chāyā हाँ हा) 2 A °मन्मथार्थि°, B °मन्मथार्थी. Reading
in the text is conjectural. 3 A B रतयति.

(सुभद्रा साभिलाष राजानं पश्यन्ती मन्दारिकया सह निष्क्रान्ता ।)

राजा—(सोत्कण्ठम्)

आमूलोन्नमितस्तनैः प्रविकसन्नेत्रैश्चिरं पूरितै—
रुच्छ्वासैः प्रचुराभिलाषपिशुनैः कच्छात्मजाया मुहुः ।
अर्धसंसितपक्ष्मभिर्गुरुतरैर्मन्दोच्छ्वसन्नीविभि—
र्निःश्वासैश्च दृढाभितापसुलभैः पीतोऽस्मि धूतोऽस्मि च ॥ २८ ॥

किं च बहुना ।

व्यत्यस्तांससमर्पिताननमुरःसंघट्टमग्नस्तनं
गण्डस्पृष्टकपोललेखमवशप्रत्यर्पितालिङ्गनम् ।
दत्तोत्संगनिवेशितालसतनोस्तस्याः समाश्वासन—
व्याजेन प्रथमं मनोरथपदं प्राप्तं समाश्लेषणम् ॥ २९ ॥

चयस्य, येनैव मार्गेण गता कच्छराजदुहिता तत्रैव कांचिद्वेलामा-
त्मानं विनोदयावः । तदेहि तावत् ।

विदूषकः—इदो इदो पिअवअस्सो । [इत इत प्रियवयस्यः ।]

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ ।)

इति श्रीभट्टारगोविन्दस्वामिसूनुना हस्तिमल्लेन विरचितायां
सुभद्रानाटिकायां तृतीयोऽङ्कः ।

चतुर्थोऽङ्कः ।

(तत प्रविशति कञ्चुकी ।)

कञ्चुकी—अये, वार्द्धकं च किंचिदनुशासकमनिसर्गधीराणाम् ।
तथा हि

यदेव मे वैषयिकेषु पूर्वं सुखेषु दुःखाभिमुखेषु सक्तम् ।

तदेव संप्रत्युपजातपश्चात्तापं तपस्यां विचिनोति चेतः ॥ १ ॥

अथवा मनोरथैकविषय एव परपरिचरणपराधीनस्य मादृशो जनस्य
नैराश्यसुखरसास्वादः । सर्वथा धिगेनामेनःप्रणालिकां सेवानिय-
त्रणाम् । कुतः

सदा सेव्याद्धीतिः परपरिभवास्वादलघुता
परिक्लेशो भूयान्धनलवकृतोन्मादजडता ।
अवृत्तिवृत्तेष्वप्यनवसरलाभाद्विमुखता

विहन्येवं सेवा तदियमिह चामुत्र च सुखम् ॥ २ ॥

(विभाव्य) ममासौ प्रकृत्यरमणीयाऽपि सेव्यगुणोत्कर्षात्त्र जातु पुरु-
षार्थव्यपायः । यदेप चक्रपाणिः

श्रोता पुराणपुरुपाद्बहुशः श्रुतीनां वर्णाश्रमस्थितिषु तत्प्रथमोपदेशा ।
साक्षाच्चराचरगुरोर्वृषभस्य सूतुरन्त्यो मनुश्चरमदेहधरः स्वयं च ॥३॥
(विचिन्त्य) नन्वाज्ञप्तोऽस्मि महाराजचक्रवर्तिना । आनीयतामयोध्य-
इति । यावत्सेनापतेरयोध्यस्य भवनं गच्छामि । (परिक्रामन्) अहो
चक्रवर्तिनश्चमूपतेः प्रभविष्णुता ।

येन दिग्जैत्रयात्रायां जित्वा खण्डचतुष्टयम् ।

जितखण्डद्वयश्चक्री षट्खण्डविजयी कृतः ॥ ४ ॥

(पुरो विलोक्य) अये प्रविष्ट एव सेनापतिः । य एष

बद्धप्रणामाञ्जलिना समन्तात्सामन्तचक्रेण समं समेत्य ।

आयाति दूरादनुगम्यमानो जैत्रं प्रभोश्चक्रमिव द्वितीयम् ॥ ५ ॥
यावदागतं सेनापतिं महाराजाय निवेद्य स्वमेव नियोगमशून्यं
करोमि । (इति निष्क्रान्तः ।)

शुद्धविष्कम्भः ।

(तत प्रविशति सेनापतिः ।)

सेनापतिः—अहो न्यकृतपरचक्रश्चक्रवर्तिनः पराक्रमः । यतोऽ-
स्माभिरपि

वहद्विराज्ञां शिरसा महीयसीं महीयसस्तस्य महीभृतां प्रभोः ।

प्रविश्य कात्स्न्यादपरैर्दुरासदं सुदुर्जयं खण्डचतुष्टयं जितम् ॥ ६ ॥

अथवा कः पुनरलमेतावति भारते वर्षे चक्रवर्तिनः परचक्राभिमानि-
तामुद्वोढुम् । यद्वा मर्त्येषु नास्ति जेतव्यपक्ष इत्यपर्याप्तिर्वहुमानस्य ।
कुतः

प्रथमः कुलभूभृतां हिमाद्रिर्लवणोदः प्रथमः पयोनिधीनाम् ।

द्वयमेव हि दिग्जयप्रयाणे गतस्य क्षणलक्ष्यतां शरस्य ॥ ७ ॥

अद्य पुनर्विद्याधराणां दर्शनदानमेव देवस्यावशिष्टम् । प्रेषितश्च
मया तदर्थमेव विजयार्थं प्रति विद्याधरदूतमुख्यस्ताक्षर्यदत्तः ।
यावदिदानीं महाराजस्य प्रत्यनन्तरीभवामि । (परिक्रम्य विलोक्य च)
इदं प्रतीहारस्थानम् । कोऽत्र भोः । (कर्णं दत्त्वा) (आकाशे) किं
ब्रवीषि । एषोऽस्मि कञ्चुकी पुरुषदत्त इति । आर्य, निवेद्यतामस्म-
दागमनं देवाय । किं ब्रवीषि । निवेदितं पूर्वमेव रत्नवलभिवर्तिने
महाराजाय । प्रवेशयितव्य इति च देवादेश इति । तेन रत्नवलभि-
मनुसरामि (परिक्रामति ।)

(तत प्रविशति राजा ।)

राजा—(मदनावस्थामभिनीय) कथमविच्छिन्नसन्तानः सदैवायं
मन्मथव्यथावेगः । तथा हि

तस्या वियोगे च समागमे च समं मनो मे मदनो धुनोति ।

एकत्र सांनिध्यमपेक्षमाणमन्यत्र विभ्यत्सहसा वियोगात् ॥ ८ ॥

विशेषतः पुनरधुना

स्तनांशुकं विश्लथमीषदंसात्तया ग्रहीतुं किल दत्तदृष्ट्या ।

दूतीव यान्त्या प्रहिता तदा मां प्रलोभयन्त्येवमपाङ्गदृष्टिः ॥ ९ ॥

अतश्च पुनराभ्रेडितमाकलयकम् ।

अविज्ञायैव दृष्टायां तस्यामुत्थापितः पुरा ।

स्मरो मातुलपुत्रीति विज्ञातायां विशेषतः ॥ १० ॥

इदं च पुनरस्य चापलं, यदसौ

मह्यं प्रदास्यति नमिर्भगिनीं सुभद्रा-

मित्यन्तरङ्कुरितनिर्वृति चेत एतत् ।

कुर्वन् मनोरथगंतक्षुभितं निकामं

कामो मुहूर्तमपि न क्षमते विलम्बम् ॥ ११ ॥

(विचिन्त्य) देव्यास्तु पुनः परावस्थां गतो मन्युरिति चैकतश्चेतोऽनु-
तप्यते । कुतः

आदौ युक्तोत्तरवितरणाद्यत्कृतं त्यक्तशङ्कं

कोपारम्भात्किमपि क्लुषं यच्च पश्चादकारि ।

चेतस्तस्यास्तदनु च कृतं तत्तथा बद्धरोषं

प्रत्यापत्तौ गणयति यथा नाभ्युपायान्मतिर्नः ॥ १२ ॥

सेनापतिः—(पुरो विलोक्य) अये देवः । य एष

तिरस्कृतप्रौढविरोचनेन विलोचनानां च सुखप्रदेन ।

विभाति तेजःप्रसरेण साक्षात्पितुः पुरोरंश इवावतीर्णः ॥ १३ ॥

यावदुसर्पामि । (उपसृत्य) विजयतां देवः ।

राजा—उपविश्यताम् ।

सेनापतिः—यथाज्ञापयति देवः । (उपविशति ।)

राजा—आये, जितमुत्तरार्धम् । कुत इदानीं दक्षिणार्धगमनं
प्रति विलम्बयते ।

1 A B अनिज्ञायैव. 2 A B निज्ञातायाम्. 3 B °रत्°. Could it be °रथ°?

सेनापतिः—देव, किमुच्यते जितमिति । पश्य

अश्रुतप्रतिपक्षं तज्जितं नाम कथं भवेत् ।

उत्तरार्धपरिभ्रान्तं मर्यादेतीह केवलम् ॥ १४ ॥

अद्य तु विद्याधराणां दर्शनदानमेव प्रतिपाल्यते ।

राजा—कस्तत्र विलम्बः ।

सेनापतिः—प्रेषित एव तत्र ताक्षर्यदत्तः ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेउ महाराओ । विज्जाहरलोआदो तक्खदत्तो आअदो ।

[जयतु महाराजः । विद्याधरलोकात् ताक्षर्यदत्त आगतः ।]

राजा—जित्वरिके, सत्वरं प्रवेशय ।

प्रतीहारी—जं महाराओ आणवेदि । [यन्महाराज आज्ञापयति ।]

(निष्क्रम्य ताक्षर्यदत्तेन सह प्रविश्योपसर्पति ।)

ताक्षर्यदत्तः—जयतु देवः ।

सेनापतिः—कथय किं तत्र वृत्तम् ।

ताक्षर्यदत्तः—इतस्तावद्दहं विजयार्धमुत्प्लुत्य महाराजनमेरास्थान-
भुवमवगाह्य सेनापतेरादेशमुच्चैरवोचम् । यथा

यस्मै कृताञ्जलिरदाद्विजयार्ध एव

सेनानिनादचलितः स्वयमभ्युपेत्य ।

एकातपत्रमवते भरतं समस्तं

सिंहासनं चमरजद्वयमातपत्रम् ॥ १५ ॥

येन च

गाम्भीर्येणैव जलधिः स्थैर्येणैव हिमाचलः ।

जितावेव शरेणापि पुनरुक्तमुभौ जितौ ॥ १६ ॥

तस्यायोध्य इति प्रतीतमहिमा सेनापतिष्वग्रणी-
 र्जेता खण्डचतुष्टयस्य विजयी वाहुः प्रभोर्दक्षिणः ।
 दण्डेनैव गुहाकवाटपुटयोर्विद्याधराणां गिरे-
 र्भेत्ता दर्शयितुं दिशामधिपति त्वामाह्वयद्गम्यताम् ॥ १७ ॥

इति ।

राजा—ततस्ततः ।

ताक्षर्यदत्तः—देव, मदाह्वानानन्तरमेव यथापिनद्धाभरणपारितो-
 षिकप्रदानेन संभाव्य मामास्थानपीठान्ममैव हस्तमवलम्ब्य देवदर्शन-
 कुतूहली सहर्षमुत्थितो महाराजनमिः ।

सेनापतिः—जानाति नमिर्देवस्य पराक्रमवत्ताम् ।

राजा—ततस्ततः ।

ताक्षर्यदत्तः—ततश्च तं स्त्रीरत्नप्राभृतकं पुरस्कृत्य गन्तुमुच्चलितः ।

राजा— (सहर्षमात्मगतम्) अयि भोः

तृप्तिविश्वासदूराय लघुने हृदयाय नः ।

प्रियागमनवृत्तान्तं पुनः पुनरुदीरय ॥ १८ ॥

(प्रकाशम्) ततः ।

ताक्षर्यदत्तः—ततश्च

तं तत्क्षणेन परिवृत्य परेऽपि सर्वे

विद्याधराधिपतिमन्वयुरन्वयज्ञाः ।

विद्याधराः सरभसं च सकौतुकं च

सप्रश्रयं च सभयं च सविस्मयं च ॥ १९ ॥

सेनापतिः—ततः ।

ताक्ष्यदत्तः—ततश्च

श्रेणिद्वयादुच्चलिते वलेऽस्मिन्विद्याधराणां विजयार्थशैलः ।

द्रष्टुं भयेन स्वयमद्य देयमुद्धीय गच्छन्निव लक्षितोऽभूत् ॥ २० ॥

सेनापतिः—ततस्ततः ।

ताक्ष्यदत्तः—ततश्च

व्याप्य व्योमतलं विरोचनकरान्व्याहृत्य विश्वा दिशो

व्यारुध्य क्षणदामकाण्डजनितां कृत्वा क्षमावर्तिनाम् ।

क्षुण्णैरेव शरत्पयोधरलवैरुत्थाप्य सेनारजः

प्रस्थातुं सकलं प्रवृत्तमचिराद्विद्याधराणां बलम् ॥ २१ ॥

सेनापतिः—ततस्ततः ।

ताक्ष्यदत्तः—ततश्चाहमागच्छन्तं विद्याधरलोकमावेदयितुमग्रत
एवाहिण्डितः ।

राजा—साधु । दीयतामस्मै दूताध्यक्षाधिकारः ।

सेनापतिः—यथाज्ञापयति देवः ।

ताक्ष्यदत्तः—(प्रणम्य) अनुगृहीतोऽस्मि ।

राजा—जित्वरिके, दीयतामस्मै सुवर्णभार इति कोशाध्यक्षं
ब्रूहि ।

प्रतीहारी—जं महाराओ आणवेदि । [यन्महाराज आज्ञापयति ।]

ताक्ष्यदत्तः—(जानुभ्या स्थित्वा) अनुगृहीतोऽस्मि मूलदासः ।

(उभौ निष्क्रान्तौ ।)

राजा—(आत्मगतम्)

प्रत्यागतां प्रियतमामाकर्ण्य परां धृतिं प्रपन्नाऽपि ।

देवीप्रमादज्ञं प्रति मतिः प्रकामं परिभ्रमति ॥ २२ ॥

कथं वयस्योऽपि देवीकोपात्परं नष्टः । मन्ये देवीकोपात् कापि पलायितो वराकः ।

(प्रविश्य हृष्टः)

विदूषकः—जेदु जेदु पिअवअस्सो । [जयतु जयतु प्रियवयस्यः ।]

राजा—सखे, उपविश ।

विदूषकः—जं वअस्सो आणवेदि । [यद्वयस्य आज्ञापयति ।]

(उपविशति ।)

राजा—सखे, किमपि हर्षोत्फुल्लमिव ते मुखम् ।

विदूषकः—सुणादु सोत्तसुहं वअस्सो । [शृणोतु श्रोत्रसुखं वयस्यः ।]

राजा—अवहितोऽस्मि ।

विदूषकः—अहं खु देवीकोवादो वअस्सस्स पासं ओसप्पिटुं भाअंतो एत्तिअं वेलं दिवा कोसिओ विअ कहिं पि तिरोहिअ एक्काई ठिदो । दाणि पुण विवित्तासणदो राइं जादभओ चोरअंतो विअ चोरओ भीदभीदं आअच्छंतो सव्वं वि चलिदं देवि त्ति संक्रमाणो दिट्ठो जदिच्छोवणदाए सअं विअ देवीए रइसेणाए । तं च दट्ठूण सज्झसादो पदं पि चालेदुं असकंतं अप्पम्मि भएण घेप्पंतं हत्थे गण्हिअ मं च मा भाआहि त्ति आसासिअ विअसिअमुही सा भणिदुं उवकंता । जह । अय्य, सुणाहि दाव । अज्ज खु विज्जाहरा-हिवइणो महाराअणमिणो पासदो आअदेण हंसदत्तणामहेअकंचुइणा विण्णत्ता भट्टिणी देवी । अहं खु तुह जिट्ठभादुणो जुवराअचक्खसे-णस्स देवीए तुह वि विवित्तेण मित्तएण महाराअणमिणा तुह सआसं पैसिओ कंचुई हंसदत्तो णाम । आदिसइ अ महाराअ-णमी । जाणादि वच्छा वअस्सस्स चक्खसेणस्स मह अ चिरवद्धं

असाहारणिं मेत्तिं । इदो तादस्स अ महाराअविलादस्स वअस्स-
चक्कसेणे ममम्मि अ णिव्विसेसो पुत्तसिणेहो । ता तुमं च सुभद्दा अ
दोणिण मे कणीअसीओ भगिणिआओ । सुभद्दा पुण चक्कवट्टिणो
महिस्सी भविस्सदि त्ति णं सिद्धादेसा भणंति । दाणि च सेणावइणा
अओज्जेण तं चेअ संबंधं संपादेदुं अम्हे आहूदा । मह उण जहिं
वेलादी वट्टइ णाहिघरअं चेअ तं वच्छाए सुभद्दाए त्ति णिञ्चितं
हिअअं ति । इत्थं च मं पुरदो पेसिअ आअच्छइ सअं पि भट्टि-
दारिअं सुभदं अग्गदो कट्टुअ महाराअणमि त्ति । तं च सोऊण किं
बहुणा विमुक्कणाहिघरआए भइणिअं सुभदं पाविअ एअं च मे दाणि
णाहिघरअं संवुत्तं, ता तुमं चेअ अग्गदो गट्टुअ इह एव्व भइणिअं
मे आणेहि त्ति भट्टिणीए भणिदं । तदो सो वि तहेत्ति गट्टुअ सप-
रिअणाए सह तत्तहोदीए सुभद्दाए पुण आअदो । तदो अ भट्टिणीए
वेलादीए तत्तहोदीए अ सुभद्दाए अण्णोण्णदंसणादो कहं एसा एव्व
सेत्ति संजादवेलक्खाहिं कहं कहं पि कदं परोप्पराळिगणं । तदो ताए
सह एक्कासणोवविट्ठाए भट्टिणीए भइणीलाहेण तूसंतीए तं वेळं खणं
विअ अदिकमिअ अत्तहोदीए सुभद्दाए पिअसही मंदारिआ कहिआ ।
सहि, तुम्हेहिं वंचिअ लघूकदा वाअं पि दाणि दाअं लज्जेमि । अय्यउत्तो
उण मं भइणिआकारणादो दंसिदादिकमं इमं किं मुणइ त्ति । तदा
मंदारिआए कहिअं, ण खु एत्थ अविण्णादपरमत्था देवी अवरज्जइ ।
ण अ अम्हे । सच्छंदविहाइणा विहिणा एव्व अवरद्धं ति । एअं पुण
तुम्हाणं हरिसेक्ककारणं उत्तंतं णिवेदिदुं तुमं अण्णेसंती उवत्थिद
म्हि । ता देहि पारितोसिअं ति । मए पुण हरिसणिब्भरेण अंगु-
लिदो दब्भगंठिअं मोचिअ उवहसंतीए ताए पारितोसिअं दाऊण

हरिसभरादो उण मए अमाअंतेण पिअवअस्सो उवसप्पिओ ।
 [अहं खलु देवीकोपाद्वयस्यस्य पार्श्वमुपसर्पितुं विभ्यदेतावती वेलां दिवा
 कौशिक इव कुत्रापि तिरोधायैकाकी स्थितः । इदानीं पुनर्विविक्तासनाद्वाण्यां
 जातभयश्चोरयन्निव चोरो भीतभीतमागच्छन् सर्वमपि चलित देवीति शङ्कमानो
 दृष्टो यदृच्छोपनतया स्वयमिव देव्या रतिसेनया । तां च दृष्ट्वा साध्वसात्पदमपि
 चालयितुमशक्नुवन्तमात्मनि भयेन गृह्यमाणं हस्ते गृहीत्वा मां च मा विभेहीति
 आश्वास्य विकसितमुखी सा भणितुमुपक्रान्ता । यथा । आर्यं शृणु तावत् । अद्य
 खलु विद्याधराधिपतेर्महाराजनमेः पार्श्वदागतेन हसदत्तनामधेयकञ्चुकिना
 विज्ञप्ता भट्टिनी देवी । अहं खलु तव ज्येष्ठभ्रातुर्युवराजचक्रसेनस्य देव्या
 तवापि विविक्तेन मित्रेण महाराजनमिना तव सकाश प्रेषितः कञ्चुकी हंसदत्तो
 नाम । आदिशति च महाराजनमिः । जानाति वत्सा वयस्यस्य चक्रसेनस्य मम
 च चिरबद्धामसाधारणी मैत्रीम् । इतस्तातस्य च महाराजविलातस्य वयस्य-
 चक्रसेने मयि च निर्विगेषः पुत्रस्नेहः । तस्मात् त्वं च सुभद्रा च द्वे मे कनीयस्यौ
 भगिन्यौ । सुभद्रा पुनश्चक्रवर्तिनो महिषी भविष्यतीति ननु सिद्धादेशा
 भणन्ति । इदानीं च सेनापतिनाऽयोध्येन तमेव संबन्धं संपादयितुं वयमा-
 हूताः । मम पुनर्यत्र वैलाती वर्तते नाभिगृहमेव तद्वत्सायाः सुभद्राया इति
 निश्चिन्तं हृदयमिति । इत्थं च मां पुरतः प्रेष्य, आगच्छति स्वयमपि भर्तृदारिकां
 सुभद्रामग्रतः कृत्वा महाराजनमिरिति । तच्च श्रुत्वा किं बहुना विमुक्तनाभि-
 गृहाया भगिनी सुभद्रां प्राप्य, एतच्च म इदानीं नाभिगृहं संवृत्तं, तस्मात्
 त्वमेवाग्रतो गत्वा इहैव भगिनीं म आनयेति भट्टिन्या भणितम् । ततः सोऽपि
 तथेति गत्वा सपरिजनया सह तत्रभवत्या सुभद्रया पुनरागतः । ततश्च भट्टिन्या
 वैलात्या तत्रभवत्या च सुभद्रयाऽन्योन्यदर्शनात्कथमेषैव सेति संजातवैल-
 क्ष्याभ्यां कथं कथमपि कृतं परस्परेण लिङ्गनम् । ततस्तया सहैकासनोपविष्टया
 भट्टिन्या भगिनीलाभेन तुष्यन्त्या तां वेलां क्षणमिवातिक्रम्यान्नभवत्याः
 सुभद्रायाः प्रियसखी मन्दारिका कथिता । सखि, युवाभ्यां वञ्चित्वा लघूकृता
 वाचमपीदानीं दातुं लज्जे । आर्यपुत्रः पुनर्मां भगिनीकारणाद्दर्शितातिक्रमामिमां
 किं जानातीति । तदा मन्दारिकया कथितम्, न खल्वत्राविज्ञातपरमार्था देवी
 अपराध्यति । न चावाम् । स्वच्छन्दविधायिना विधिनैवापराद्धमिति । एतं पुन-

युवयोर्हर्षैककारणं वृत्तान्तं निवेदयितुं त्वामेवान्विष्यन्ती उपस्थिताऽस्मि ।
तस्माद्देहि पारितोषिकमिति । मया पुनर्हर्षनिर्भरेणाद्भुत्या दर्भग्रन्थि मोचयित्वा
उपहसन्त्यै तस्यै पारितोषिकं दत्त्वा हर्षभरात् पुनर्मया अमाता प्रियवयस्य
उपसर्पितः ।]

राजा—(सहर्षम्) प्रियं प्रियं नः ।

श्रुत्वा सुभद्रां स्वगृहं प्रविष्टां विलातपुत्रीमपि सुप्रसन्नाम् ।

न मांति दुष्प्रापमवाप्य योगं देहे ममास्मिन्नयमद्य हर्षः ॥ २३ ॥

सेनापतिः—कथं दृष्टपूर्वमेव देवेन स्त्रीरत्नम् । अहो वयमपि
विधिना पुनरुक्तप्रयत्नाः । अथवा यत्नान्तरनिरपेक्षैव महाभागानां
समीहितसिद्धिः । तथा हि

स्वैरं फलानि वितरत्प्रविहाय दैवं

यत्नान्तरं किमिति तत्र गवेषणीयम् ।

आक्रान्तविश्वपरचक्रममुष्य चक्रं

येन प्रविष्टमभवत्स्वयमस्त्रशालाम् ॥ २४ ॥

राजा—अस्मिन्नेव देव्याः प्रसादसमये वयमपि प्रियं विदध्मः ।
तत्क्रियतामस्य मध्यमस्योत्तरखण्डस्य पतिर्महाराजविलातः, पश्चिमस्य
युवराजचक्रसेनः ।^१

सेनापतिः—यथाज्ञापयति देवः । कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—जयतु महाराजः । एषोऽस्मि कञ्चुकी पुरुषदत्तः ।

सेनापतिः—^२भोः पुरुषदत्त, मध्यमस्योत्तरखण्डस्य पतिः कृतो
देवेन महाराजविलातः, पश्चिमस्य युवराजचक्रसेन इत्याक्षपट-
लिकेभ्यः कथयित्वा लेखहस्तान् दूतान् प्रस्थापय ।

^१ B adds: इत्याक्षपटलिकेभ्यः कथयित्वा लेखहस्तान् दूतान् प्रस्थापय. ^२ B drops the whole of this speech of the सेनापति.

कञ्चुकी—एष गच्छामि । (इति निष्क्रान्त ।)

विदूषकः—सर्वं सज्जं । महाराअणमिस्स आअमणं दाणि
णिव्वहणे पडिवाल्लिज्जइ । [सर्वं सज्जम् । महाराजनमेरागमनमिदानीं निर्व-
हणे प्रतिपाल्यते ।]

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेदु महाराओ । विज्जाहरमहत्तरेहि सहिदो देव-
दंसणं इच्छदि महाराअणमी । [जयतु महाराजः । विद्याधरमहत्तरैः सहितो
देवदर्शनमिच्छति महाराजनमिः ।]

राजा—अविलम्बितं प्रवेशय ।

प्रतीहारी—जं महाराओ आणवेदि । [यन्महाराज आज्ञापयति]

(निष्क्रान्ता ।)

सेनापतिः—(विलोक्य) देव, पश्य पश्य ।

विनमिप्रमुखैर्विश्वैर्विद्याधरमहत्तरैः ।

अभ्युपैति समं दूरं नमिर्नमितमस्तकः ॥ २५ ॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो नमिः प्रतीहारी च ।)

प्रतीहारी—इदो इदो महाराओ । [इत इतो महाराजः ।]

(परिक्रामत ।)

नमिः—अहो लोकोत्तरः प्रभावश्चक्रपाणेः । तथा हि

ज्वलत्यस्य प्रतापान्निः सर्वत्रैव विशुद्धलः ।

आवर्जिता महीपृष्ठे येन विद्याधरा अपि ॥ २६ ॥

अथवा कियानमुष्य क्षुद्रविद्याधरजयः ।

येनैक एव विशिखश्चतसृष्वपि दिक्षु दिग्जये मुक्तः ।

एकत्र तुषाराद्रावितरत्र तु यादसां पत्यौ ॥ २७ ॥

प्रतीहारी—(पुरो निर्दिश्य) महाराज, पेक्ख पेक्ख । एसो चक्कवट्ठी । [महाराज, पश्य पश्य । एष चक्रवर्ती ।]

नमिः—(दृष्ट्वा) कथमसौ भगवतः स्वयंभुवो लब्धात्मलाभो यशस्वतीनन्दनः सुगृहीतनामा महाराजभरतः ।

यस्यानुजो भगवतो गणनायकोऽभूत्
सुभ्रातरश्च शतमात्मसमानवीर्याः ।

आज्ञा सुरैरपि शिरोभिरुपासनीया
कीर्तिः प्रसर्पति गुणाभिरतां त्रिलोकीम् ॥ २८ ॥

आकीर्णा च पुनरवस्थामिदानीमनुभवामि । कुतः

आ बाल्यात्सहवर्धनात्सुहृदिति प्रेम्णा सुतः स्वामिनो
लोकानामिति गौरवान्मम पितुः स्वस्त्रीय इत्यादरात् ।

जामातेति च संमदादचरमश्चक्रीति चान्तर्भया-
चेतो नैकरसाकुलं भवति मे संप्रत्यमुं पश्यतः ॥ २९ ॥

(उपसृत्य) विजयतां भरतेश्वरः । (प्रणमति ।)

राजा—(हस्ते गृहीत्वा) सखे, इतो निषीद ।

(नमिरुपविशति ।)

सेनापतिः—जित्वरिके, स्वमेव नियोगमशून्यं कुरु ।

प्रतीहारी—अय्य, तह । [आर्य, तथा ।] (निष्क्रान्ता ।)

राजा—अपि कुशलं विद्याधरलोकस्य ।

नमिः—अद्य नः कुशलं संवृत्तं देवदर्शनात् । (अञ्जलिं बद्ध्वा)

एष पुनरतिचारमात्मनः स्वयंमालोचयामि ।

यदैव वृत्तं विजयार्द्धदर्शनं तदैव देवं न वयं यदागताः ।

प्रमादजातं प्रणयादतिक्रमं क्षमाधनः क्षन्तुममुं ममार्हसि ॥ ३० ॥

अथवा न भवानत्र ममात्रासहेतुः । कुतः

अनाहूताः स्वयं द्रष्टुं पट्टखण्डायाः पति भुवः ।

निर्विशेषाः पदातिभ्यः के नाम क्षुद्रका वयम् ॥ ३१ ॥

सेनापतिः—देव, साधु विज्ञप्तं महाराजनमिना ।

नमिः—अन्यच्च, ज्ञायत एव देवेन भगवत एव स्वयंभुवः पर्युपासात् तत्प्रसादचोदितेन फणिपतिना मह्यमिदं वितीर्णं विजयार्ध-दक्षिणश्रेणीपतित्वं, विनमये च तदुत्तरश्रेणीपतित्वम् । तत्प्रागेवायं युष्मदीयो विद्याधरलोकः । वयं तु केवलमत्राधिकृताः ।

सेनापतिः—देव, यथावृत्तं विज्ञप्तं महाराजनमिना भवतु । पितुरेव प्रसादादनेन लब्धं विद्याधरपतित्वम् । अतः प्रथममेव युष्मदीयेऽस्मिन्नपरमापद्यमानमनवद्यं पश्यामः ।

नमिः—देव, किमत्र बहुना ।

पितुः प्रसादं तव भोगकाङ्क्षिणि प्रभुः परिज्ञाय फणाभृतां मयि । न्यदत्त विद्याधरराज्यवैभवं तदद्य रक्षा त्वयि तस्य तिष्ठति ॥ ३२ ॥

विदूषकः—वअस्स, जुत्तं खु विण्णत्तं महाराअणमिणा । [वयस्य, युक्तं खलु विज्ञप्तं महाराजनमिना ।]

सेनापतिः—विद्याधरपते, नात्र भवत्प्रार्थनमपेक्षणीयम् । यतोऽखण्डस्यैव षट्खण्डस्यैव जगतः प्रागेव देवायत्तौ योगक्षेमौ ।

नमिः—एवमेतत् । तथापि परिजनसुलभं चापलं मां मुखरयति । अथवा कुतो मितभाषिता लघुचेतसाम् ।

राजा—अलमत्र बहु जल्पितेन ।

1 Thus A B. It should be मम त्रासहेतु. 2 Both A B अवद्यम्.
3 A B तिष्ठते. 4 A बहुजल्पनेन.

नमिः—आस्तामेतत् । इयं पुनरद्य नः प्रार्थना । अस्ति खलु मे कनीयसी भगिनी सुभद्रा नाम कन्यका । तामद्य देवाय प्रदाय नवीकृतप्राक्तनसंबन्धः स्पृहयामि पुनरात्मानं श्लाघ्यतां नेतुम् ।

सेनापतिः—श्लाघ्य एवैष संबन्धः । परं तु देवः प्रमाणम् ।

विदूषकः—सुसरिसो एसो संबन्धो । [सुसदृश एष संबन्धः ।]

राजा—(आत्मगतम्) वयमेवात्र प्रार्थयितारः । (प्रकाशम्)

तथास्तु ।

नमिः—कृतार्थाः स्मः । इयमेव च शोभना प्रदानवेला । तद् आर्य कार्यायन, इदानीमेव गत्वाऽऽत्मनो ज्येष्ठभगिन्या वत्साया वैलात्याः पार्श्वे वर्तमानां वत्सां सुभद्रामिहानय ।

विदूषकः—(उत्थाय) जं महाराओ आणवेदि । [यन्महाराज आज्ञापयति] (निष्क्रान्त ।)

राजा—(आत्मगतम्) दिष्ट्या चिरान्निर्वापितो ममान्तःसंतापः । संप्रति हि

आ दर्शनादस्थिरदर्शनायाः समागमैस्तत्क्षणदृष्टनष्टैः

विवर्धिताः स्वैरममी स्मरेण मनोरथाः सिद्धिपदं व्रजन्ति ॥ ३३ ॥

(तत प्रविशति सुभद्रामन्दारिकाभ्या सहिता ययोचितपरिवारा देवी विदूषकश्च ।)

देवी—(सुभद्राया आभरणानि सज्जन्ती) पिअसहि मंदारिए, भणाहि दाव किं सुसंगदं इमाए अलंकरणं । मह पुण सिणेहपरवसाए ण साहु पेक्खइ बाहपुण्णा दिट्ठी । [प्रियसखि मन्दारिके, भण तावत् किं सुसंगतमस्या अलंकरणम् । मम पुनः स्नेहपरवशाया न साधु पश्यति बाष्प-पूर्णा दृष्टिः ।]

मन्दारिका—किं एत्थ भणिद्वं, जत्थ सअं चेअ देवी अलंकरेदि । [किमत्र भणितव्य, यत्र स्वयमेव देव्यलंकरोति ।]

देवी—सहि, मा तह भणिअ । एवं पुण भणिज्जउ । सयं चेअ मे भइणिआए सोहेत्ति । [सखि, मा तथा भणित्वा । एवं पुनर्भण्यताम् । स्वयमेव मे भगिन्याः शोभेति ।]

विदूषकः—किं एत्थ विवादेण । उभयं पि कारणं होदु । [किमत्र विवादेन । उभयमपि कारणं भवतु ।]

मन्दारिका—अय्य, सुद्धु भणिअं । [आर्य, सुष्टु भणितम् ।]

देवी—दिढं खु मे उत्तम्मइ मणं । तादो अंवा अ ण एत्थ संणिहिदं त्ति । [दढं खलु म उताम्यति मनः । तातोऽम्बा च नात्र संनिहिताविति ।]

मन्दारिका—सव्वं पि सुविहिदं देवीए संणिहिदाए । [सर्वमपि सुविहितं देव्या संनिहितया ।]

विदूषकः—इदं पि अपरं तुह अ हरिसकारणं । अज्ज खु चक्कवट्टिणा उत्तरस्स मज्झिमखंडस्स एकाहिवई कओ महाराअविलादो, पच्छिमस्स अ जुवराअचक्कसेणो । [इदमप्यपरं तव च हर्षकारणम् । अद्य खलु चक्रवर्तिना उत्तरस्य मध्यमखण्डस्यैकाधिपतिः कृतो महाराज-विलातः । पश्चिमस्य च युवराजचक्रसेनः ।]

मन्दारिका—¹जेदु जेदु चक्कवट्टी । एआरिसं चेअ अम्हाणं पुण्णं पिअं करेदु । [जयतु जयतु चक्रवर्ती । एतादृशमेवास्माकं पुण्यं प्रियं करोतु ।]

देवी—(सहर्षम्) पिअं पिअं मे । अहं पुण अय्यउत्तस्स भइणिअं मे दाऊण पिअं करिस्सं । [प्रियं प्रियं मे । अहं पुनरार्यपुत्रस्य भगिनीं मे दत्त्वा प्रियं करिष्यामि ।]

विदूषकः—जुत्तं खु पिअं करंतस्स सअं पि पिअं कादुं । [युक्तं खलु प्रियं कुर्वतः स्वयमपि प्रियं कर्तुम् ।]

मन्दारिका—अय्य, एव्वं । [आर्य, एवम् ।]

1 A B add आकाशे as stage-direction before जेदु जेदु.

विदूषकः—पञ्चासण्णा पदाणवेला । ता एदु एदु अत्तहोदी ।
[प्रत्यासन्ना प्रदानवेला । तस्मादेतु एतु अत्रभवती ।]

देवी—तेण हि गच्छेमो । (सुभद्रा हस्तेन गृहीत्वा) इदो एदु
भङ्गिआ । [तेन हि गच्छावः । (सुभद्रा हस्तेन गृहीत्वा) इत एतु
भगिनी ।]

विदूषकः—(पुरो निर्दिश्य) एसो खु महाराअणसी पडिवालेइ ।
जाव उवसप्पम्ह । [एष खलु महाराजनमिः प्रतिपालयति । यावदुपसर्पामः ।]

सुभद्रा—(विलोक्य, राजानं दृष्ट्वा, सलज्ज मुखं नमयन्ती आत्मगतम्)
कहं अय्यउत्तो । [कथमार्यपुत्रः ।]

राजा—(दृष्ट्वा आत्मगतम्) अयमपरो मे समाश्वासो यदनया
सलज्जमुन्नम्य मुखारविन्दं यदृच्छया मां प्रति चोदिताभ्याम् ।
विनिद्रनीलोत्पलसोदराभ्यां विलोचनाभ्यामहमस्मि पीतः ॥ ३४ ॥

(सुभद्रा लज्जां नाटयन्ती तिष्ठति ।)

देवी—अदिलज्जालुए, मई चेअ अंतरिदा इदो एहि । [अति-
लज्जालुके, ममैवान्तरिता इत एहि ।]

(सुभद्रा तथा करोति ।)

विदूषकः—(उपसृत्य) जेटु पिअवअस्सो । [जयतु प्रियवयसः ।]

देवी—(उपसृत्य) जेटु अय्यउत्तो । (नमिसुपसृत्य) अय्य, वंदासि ।
[जयतु आर्यपुत्रः । (नमिसुपसृत्य) आर्यं, वन्दे ।]

नमिः—वत्से, कल्याणिनी भव । इतस्तावद्भगिनीं तवानय ।

देवी—अय्य, तह । [आर्यं, तथा ।] (तथा करोति ।)

नमिः—भृङ्गारस्तावत् ।

विदूषकः—एसो संणिहिदो रअणमिंगारओ । [एष संनिहितो
रत्नभृङ्गारकः ।] (उपनयति ।)

नमिः—(गृहीत्वा)

प्रदीयते मया तुभ्यं सारो विद्याधरौकसः ।

त्रिजगत्सारभूताय सुभद्रा भद्रशासनम् ॥ ३५ ॥

(राज्ञो हस्ते सलिलधारां पातयति ।)

मन्दारिका—सोहणं सोहणं । [शोभनं शोभनम् ।]

देवी—(सुभद्रां हस्ते गृहीत्वा, सस्मितम्) अय्यउत्त, एसा मे भइ-
णिआ पडिगणिहज्जा । [आर्यपुत्र, एषा मे भगिनी प्रतिगृह्यताम् ।]

राजा—(सस्मितम्) यदाज्ञापयति देवी । (सुभद्रां हस्ते गृह्णाति ।)

देवी—(सुभद्रामुद्दिश्य सस्नेहं बाष्पं विधारयन्ती) अय्यउत्त, विज्जाहर-
लोओ इमाए णाहिघरअं, तुम्हे उण अओज्जाउरिआ ता जह ण
एसा णाहिघरअं सुमरिअ खिज्जइ तह एअं अप्पमत्तो संभावेहि ।
[आर्यपुत्र, विद्याधरलोकोऽस्या नाभिगृहं, यूयं पुनरयोध्यापुरिकाः, तस्माद्यथा
नैषा नाभिगृहं स्मृत्वा खिद्यति तथैतामग्रमन्तः संभावय ।]

राजा—देवि, किमेतदपि तव प्रार्थनीयम् ।

सेनापतिः—सैषा स्नेहोद्रेकसुलभा कातरता ।

(आकाशे पुष्पवृष्टिः क्रियते ।)

सर्वे—आश्चर्यमाश्चर्यम् ।

नमिः—देव, भवतोऽस्मिन्परिणयनोत्सवे कुर्वन्त्यमी कुसुमवृष्टिं
विद्याधराः ।

(सर्वे ऊर्ध्वं पश्यन्ति ।)

नमिः—देव, किं ते भूयः प्रियमुपहर्तव्यम् ।

राजा—

अपश्चिमं रत्नमियं तवानुजा

वयस्य लब्धा मम मातुलात्मजा ।

कनीयसीं प्राप्य च निर्वृता प्रिया

त्वयोपहार्यं किमतः परं प्रियम् ॥ ३६ ॥

तथाऽप्येतदस्तु ।

पृथ्वी सुखानि भजतादकुतोभयैषा
भूयात्सतामकृतको गुणपक्षपातः ।
पात्रे धनानि धनिनो विसृजन्तु नित्यं
भद्रं चिराय भवताज्जिनशासनाय ॥ ३७ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति श्रीभट्टारगोविन्दस्वामिनः सूनुना श्रीकुमारसत्य-
वाक्यदेवरवल्लभोदयभूषणानामार्थमिश्राणामनुजेन,
कवेर्वर्धमानस्याग्रजेन महाकविना हस्तिमल्लेन
विरचितायां सुभद्रानामनाटिकायां
चतुर्थोऽङ्कः ।

॥ समाप्ता चेर्यं सुभद्रा नाम नाटिका ॥



I A B read the following stanza after this हस्तिमल्लस्य गोविन्द-
नन्दत्तस्य महीयसः । सृक्तिरत्नाकरस्यैषा सुभद्रा नाम नाटिका ॥ A reads after
this :-कृतिरिय भट्टहस्तिमल्लस्य । नम सिद्धेभ्यः । श्रीशान्तिनाथाय नमः । सर्वज्ञो
जगदेकनाथभगवान् कैवल्यबोधोदयः । प्रत्यक्षाद्यविरुद्धतत्त्ववचनं कन्दर्पदर्पापहः ॥ लोका-
लोकविभु परार्थचरितः स्याच्छब्दसवर्धकः । पायाच्छत्रपुरेश्वरः स्थिरतर वश्वन्दनाथः
सदा ॥ १ ॥ भो भो भाट्ट जहाहि मानमतुल रत्नत्रयालकृति । स्याद्वादार्यावकौमुदीसह-
चरो मारप्रमोदापहः ॥ भव्यौघाचितपादपद्मयुगल सद्भर्मसंवर्धको । वाभाति प्रबलः
प्रमेन्दुमुनिपः श्रीजैनयोगी भुवि ॥ २ ॥ श्रीमान् सर्वकलाविदो भुवि सदा सद्भव्यसस्यो-
द्भवः । शास्त्रार्थो गुणवार्धिवर्धनविधुः सद्भर्मचिन्तामणिः ॥ रागद्वेषविवर्जित शुभतर
जैनेन्द्रमुद्राङ्कितो । भाति श्रीमुनिराट्ट प्रमेन्दुसुगुरुर्मध्याह्नकल्पद्रुमः ॥ ३ ॥ समाप्तोय
ग्रन्थः । शुभ भूयात् । B सम्यक्त्वस्य परीक्षार्थं मुक्त मत्तमतङ्गजम् । यः सरण्यापुरे
जित्वा हस्तिमल्लेति कीर्तितः ॥ १ ॥ कविकुलगुरुणा तेन हि रचितेय नाटिका सुभद्राख्या ।
लिखिता सुसाधरम्या बुधजनपदसेविना शशिना ॥ २ ॥ समाप्तशाय ग्रन्थ । वैशाख-
शुक्ला प्रतिपत् वीरस० २४५८.

INDEX OF STANZAS

(in the Four Plays of Hastimalla)

Abbreviations : AP = Añjanāpavanamjaya, SU=Subhadrā Nātikā, MK Maithīlikalyāṇa; VK = Vikrāntakaurava. The Roman figure indicates the Act and the Arabic one indicates the number of the Stanza.

अंसोपान्त	MK	I. 15	अधिष्ठानं	AP	II. 21
अंकुरान्	SU	I. 24	अधीतैषा	VK	I. 2
अंगकैरमृत	VK	V. 35	अधुना धनुः	MK	V. 35
अगाकर्णय	MK	III. 27	अध्यस्तशौर्यो	VK	IV. 9
अंगानि काशि	VK	V. 60	अनतिगलित	VK	II. 1
अंगुष्ठमुद्रा	VK	III. 57	अननुभूत	AP	V. 23
अगेषु प्रति	MK	III. 38	अनन्यतुल्यो	MK	V. 26
अंगेष्वनग	MK	II. 3	अनर्घ्यरूपा	MK	V. 12
अच्छिन्नपंक्ति	MK	IV. 15	अनवाप्तफलो	MK	II. 8b
अतर्कितोप	SU	II. 11	अनादृत्य श्रुत्वा	MK	I. 4
अतिक्रमं	SU	III. 21	अनास्थापर्यस्त	VK	IV. 7
अत्याजित	VK	VI. 4	अनाहूता.	SU	IV. 31
अत्र सत्रप	VK	V. 65	अनुपमगुण	VK	VI. 2
अत्राकारण	MK	III. 24	अनुभवितुं	SU	I. 2
अत्रान्तरे	AP	V. 2	अनेन ताव	SU	I. 32
अत्रालं बहु	MK	III. 39	अनेन सार्धं	VK	III. 50
अत्रैव पत्नी	AP	VI. 30	अन्तर्निपीत	VK	V. 32
अथ स च	AP	VII. 10	अन्तस्तापववाथा	SU	III. 13
अथ सपदि	VK	I. 21	अन्तस्तोर्यं	SU	I. 39
अद्यापि गृह्णाति	AP	I. 19	अन्यं कंचन	VK	IV. 2
अद्यापि शीत	AP	VI. 28	अन्यत्र दाक्षिण्य	SU	II. 23
अधितिष्ठता	AP	V. 9	अन्योन्यमन्यून	MK	V. 9

अन्योन्यस्य	VK	VI 26	अलसस्मितं	SU	III. 14
अन्योन्याघात	VK	IV. 63	अवधीरित	MK	II. 21
अपरिहृत	MK	II. 8	अवनिपति	VK	VI. 33
अपाश्रिमं	SU	IV. 36	अवल्लभभुजंग	MK	V. 13
अपागव्यासंग	VK	I. 39	अवश्यं मर्तव्यं	VK	IV. 50
अपि किल	AP	VI. 43	अवि जश्श	AP	IV. 6
अपि नाम	AP	I. 8	अविज्ञायैव	SU	IV. 10
अभिषिच्य	VK	III. 71	अविरतमहं	VK	V. 75
अभ्यग्रपुष्यत्	MK	III. 19	अविरतमहं	SU	I. 33
अभ्युक्ष्यन्ते	VK	III. 3	अविस्त्रंभ	VK	III. 5
अभ्येतो निधि	SU	I. 4	अवेहि वि	VK	IV. 66
अमुना यमुना	VK	III. 69	अवेहि सैन्यं	VK	IV. 65
अमुष्मिनराज	VK	IV. 10	अव्याजसुन्दर	AP	I. 16
अमृततरंगिणी	VK	V. 67	अव्याजसुन्दरे	SU	II. 8
अभोरुहोदर	VK	I. 18	अशरण्यमिद	AP	V. 27
अयं खलु	MK	III. 17	अशोक पुष्पितो	SU	III. 15
अयं च किञ्चित्	VK	V. 83	अश्रान्तकान्त	VK	III. 11
अयमद्य विना	AP	I. 11	अश्रुतप्रति	SU	IV. 14
अयमयमिह	VK	IV. 99	अष्टचन्द्र	VK	IV. 90
अयमराल	VK	V. 47	असावंस	VK	VI. 31
अयमिह सह	VK	II. 35	असिमषिक्क	VK	IV. 17
अयमिह सु	VK	IV. 42	असिमषिमु	VK	I. 1
अयि केतकि	AP	VI. 42	असुलभफल	MK	II. 4
अर्ककीर्तिरसा	VK	IV. 85	असौ कुरु	VK	IV. 58
अर्ककीर्त्यवर	VK	IV. 62	असौ दग्धो	MK	II. 5
अलं तुलयितुं	AP	VI. 45	असौ वहन्	VK	V. 63
अलकामधि	VK	III. 46	असौ विरीष.	VK	II. 13
अलमलं परि	MK	III. 41	अमौ सद्य.	AP	II. 14
अलमलमति	AP	III. 18	अस्थानामि	VK	V. 9

अस्पष्टैरव	AP	II. 5	आमोदलोलुप	VK	VI. 16
अस्माद्दृशो	MK	I. 12	आरोप्य मौर्वी	MK	V. 32
अस्माभि शिशि	MK	III. 16	आरोप्याग्र	MK	V. 39
अस्मिन्नभू	SU	I. 15	आर्हन्तीम	SU	I. 1
अस्य हि	AP	III. 9	आलिगनाय	AP	II. 15
अस्या काम	VK	II. 29	आलिगन्यवलां	VK	V. 20
अस्या स्तने	SU	II. 18	आवाति गंगा	SU	II. 10
अस्या मदन	MK	V. 25	आश्लिष्यैव	MK	V. 20
आकाशं मूर्त्य	VK	VI. 52	आसणसलिस	MK	III. 2
आगच्छति वपु	AP	IV. 16	आसवैरनिल	VK	V. 68
आगुल्फदीर्घ	VK	III. 28	आसादिता	SU	I. 5
आगुल्फलंवा	MK	V. 3	आस्तामप्रति	VK	IV. 8
आग्राणव्यव	VK	I. 26	आहूय शाठ्यात्	VK	IV. 4
आज्ञाक्षराण्येव	VK	III. 63	इत. किञ्चित्	AP	VI. 39
आत्मन्येकम	AP	VII. 7	इतश्चेतश्चैवं	AP	VI. 6
आत्मा वै पुत्र	VK	VI. 39	इतश्चोली	VK	V. 39
आ दर्शनाद	SU	IV. 33	इतस्तावत्सर्वा	MK	I. 16
आदाय दाम	VK	V. 27	इतस्त्वया	AP	I. 18
आदौ यस्य	AP	I. 1	इतो धुन्वन्नेलां	AP	III. 8
आदौ युक्तो	SU	IV. 12	इत्थीहिं पुलिसे	MK	III. 5
आनाभिलंवि	VK	VI. 22	इदं तावच्चिन्त्यं	AP	IV. 17
आपाण्डुरा	SU	III. 8	इदं दर	MK	II. 31
आपातालतलात्	AP	II. 22	इदानीमंगानि	AP	VI. 48
आपादयन्तो	MK	I. 13	इदानीमप्यस्ति	VK	IV. 91
आबद्धचंडा	VK	III. 17	इमानि विद्या	AP	VI. 50
आ बाल्यात्	SU	IV. 29	इयं च रात्रौ	VK	V. 84
आमिजात्य	AP	V. 19	इयं चेत्	VK	I. 22
आमुक्तकंकण	VK	VI. 45	इयं तनूजा	VK	IV. 18
आमूलोन्नमित	SU	III. 28	इयं नु तंता	VK	V. 61

VI. 13	इयं परिम्लान	VK	V. 74	उन्मार्जितेऽपि	VK	III. 19
V. 32	इयं परिम्लान	SU	III 17	उन्मीलन्नवमा	MK	II. 37
V. 39	इयं मया	VK	VI. 47	उन्मीलन्नवमा	VK	I. 36
I. 1	इयं व्रीडा	MK	I 20	उन्मील्य नेत्रे	MK	II. 29
II. 13	इयं सा दीर्घा	SU	II 15	उन्मूल्य धैर्यं	SU	II. 24
V. 10	इयं सा लाव	VK	II. 25	उपनमति	MK	I. 7
II. 19	इयं हि सा	VK	III 35	उपवनसरसी	AP	II. 2
V. 20	इषूणामन्योन्यं	VK	IV. 41	उर्वी पालयितुं	MK	V. 46
III 2	इह अ सुह	VK	II 14a	उल्लाशंते	AP	IV. 8
V. 68	इह हि प्र	AP	I 12	ऊरुद्वयो	AP	VI. 27
I. 3	उच्छ्रयसो	VK	V. 29	ऊष्मनिष्पादने	MK	II. 24
IV. 8	उत्कण्ठयन्ति	MK	II. 12	ऋजुषु तरुषु	VK	I. 11
IV. 1	उत्कण्ठाना वीजं	MK	I 21	एकत्र विधा	VK	III. 38
VI. 39	उत्कण्ठाना वीजं	VK	V. 73	एकपद एव	AP	IV. 19
VI. 6	उत्कण्ठितं	MK	II 1	एकान्तबल	MK	V 4
V. 34	उत्कीर्णशख	VK	III. 25	एको जय	VK	IV 29
I. 16	उत्क्षिप्य सत्रप	SU	II. 12	एको विधि	AP	VII 1
I. 18	उत्तंभितध्वज	VK	III 4	एतत्तावत्	AP	VI 56
III. 8	उत्थानैर्मम	AP	II. 6	एतद्देहा	VK	I. 3
III. 5	उत्पुष्यन्नलका	VK	IV. 72	एतन्मातङ्ग	AP	VI. 54
IV. 17	उत्सारणा	MK	V. 21	एता नूतन	MK	II 20
II. 31	उदिते वि	AP	III. 6	एलालतानद्ध	SU	I. 9
VI. 48	उद्दामपंच	AP	VI. 2	एशो शामी	AP	IV. 4
IV. 91	उद्भूता पट	MK	V. 17	एष खलु	AP	VI. 31
VI. 51	उद्भाव्य भावं	SU	III. 1	एष विद्युत्	AP	I. 15
V. 84	उद्भिन्नकौतुक	VK	III. 30	एष श्यामा	AP	VI. 19
I. 22	उद्भेदोन्मुख	MK	II. 17	एष हि स	AP	VI. 21
IV. 18	उन्नमति विधोः	AP	III. 3	एषा तव	SU	III. 16
V. 61	उन्नमति	SU	I. 10	एसो अयो	VK	III. 37

ओदंसिध	AP	V. 22	किमपकृत	VK	V. 54
कक्षात्कक्षं	MK	V. 41	किमप्यन्तश्चितां	AP	IV. 5
कच्छान्केऽप्यधि	VK	I. 8	किमस्ति ते	VK	III. 43
कथं पनस	VK	V. 71	किमु शिशि	AP	III. 16
कथं स कामी	VK	III. 21	किसलयतल्प	MK	III. 15
कथमपि परि	MK	IV. 14	किसलयलीला	MK	III. 30
कथमपि रणं	VK	IV. 92	कुतोऽपि	VK	IV. 16
कथमिव	VK	IV. 13	कुमार प्रीता.	AP	V. 3
कथय कथय	AP	VI. 24	कुमुद्वर्ती	SU	I. 29
कदम्बपुष्प	AP	VI. 13	कुरनरपति	VK	IV. 102
कदा पटकृटी	VK	I. 15	कुर्यां यद्युप	VK	V. 38
करस्पर्शो	VK	VI. 23	कुलाचलानां	SU	I. 12
कराभ्यासु	VK	V. 30	कुल्यायामुप	VK	I. 10
करिकरपरि	VK	III. 74	कुसुमचषको	MK	II. 11
करोन्मुक्तै	AP	V. 18	कुसुमवृष्टि	MK	IV. 11
कर्कशे पादप	SU	I. 31	कृतव्यलीके	MK	IV. 12
कलषयति	MK	II. 19	कृतापराध.	MK	II. 32
कवीन्द्रोऽयं	VK	I. 6	कृत्यान्तर	MK	II. 6
कश्चित्प्राप्य	MK	V. 31	कृत्वा दक्षिण	VK	III. 33
कष्टं भोः कष्ट	AP	VI. 11	केचिद्बद्ध	MK	V. 7
कस्येदं सशरं	AP	VI. 52	केलिरोहण	KV	V. 64
का नाम संप्रति	SU	III. 18	केवलं लोक.	VK	V. 62
कार्येषु तावत्	AP	V. 14	कोदण्डं किल	MK	II. 13
किं कि दुःशि	MK	II. 25	कोऽयं भो.	AP	VI. 53
कि चन्द्रातप	MK	III. 8	कौक्षेयकान्	VK	III. 26
कि धावत्येष	AP	V. 13	कौरव्यहेति	VK	IV. 103
किं मामित्थमु	MK	III. 37	क्रीणाति	MK	III. 13
किं वीणागुण	MK	I. 2	कचिज्जंबू	VK	II. 21
किमकृत	VK	I. 20	कामनो	AP	V. 26

INDEX OF STANZAS

९७

V. 54
IV. 5
III 43
III. 16
III. 15
III. 30
IV. 16
V. 3
I. 29
V. 102
V. 38
I. 12
I. 10
II. 11
IV 11
IV. 12
II. 32
II 6
III 33
V 7
V. 64
V. 62
II 13
VI. 53
III 26
V. 103
III. 13
II. 21
V. 26

क विषयेषु	MK	II. 26	गृहीता सा	SU	II. 25
कासौ महेन्द्र	AP	VI. 4	घनौघं शैलेयं	VK	IV. 80
क्षणमिह	VK	II. 33	घलया	AP	V. 20
क्षणाद्धैर्यं	VK	I. 17	चकोरैर्जयो	VK	V. 82
क्षणेन मूर्च्छा	VK	IV. 69	चक्रव्यूह	VK	IV. 36
क्षत्राकुरेण	VK	VI 35	चकीकृतं	VK	VI 8
क्षपानाथ	VK	V 81	चक्रेण निष्प्रति	VK	III. 54
क्षपितजल	MK	III. 44	चंचुदष्ट	VK	V. 66
क्षरद्वारा	VK	VI. 19	चतुर्न्यायी	VK	VI 53
क्षरन्मदाम्भ	AP	V. 16	चन्द्रिकातप	AP	III. 11
क्षुंच्याघूर्णीय	VK	IV. 43	चन्द्रोपलाना	MK	IV. 9
क्षोणीभृतो	SU	I 6	चमूविमर्द	VK	IV. 31
क्षोणीमा	VK	III. 58	चरति युधि	VK	IV. 45
खड्गेन	VK	IV. 56	चरत्यमुष्मिन्	VK	IV. 67
ख्यात परा	VK	IV 14	चर्चैव कुकुम	SU	I 21
ख्यात. पूर्व	VK	IV 32	चलकिसलयह	AP	VI. 9
ख्यात सख्य	VK	IV 44	चलकिसल्याग्र	AP	I. 6
गंगातरंगेण	VK	II. 10	चित्ते धरेइ	VK	II 9
गंङ्गशिख	AP	IV 13	चित्रं न स्फुट	MK	III 25
गतिर्लाला	VK	III 20	चिरतर	AP	VI. 23
गर्जन्नुच्चै	AP	VI 14	चिरस्य कालस्य	MK	IV. 13
गात्रे चन्दन	VK	I. 25	चिरेण विस्मा	VK	VI. 49
गामीर्यस्याभसा	VK	VI 34	चुवन्तोऽधर	VK	II. 2
गांभीर्येणैव	SU	IV. 16	चुवन्वायु.	SU	I. 16
गिरमविशदा	AP	IV. 2	चूर्णश्रूता	VK	II. 15
गुणव्यपा	MK	V. 30	च्योतन्मधु	VK	V. 59
गुणा. एवा	VK	III. -1	छिनत्ति ख	VK	IV. 53
गुह्यामुख	AP	VI. 7	जगति कृतिनी	MK	V. 48
गृहीतमां	VK	VI. 43	जगदतितरा	MK	V. 47

HASTIMALLA AND HIS PLAYS

जन्तु खु पढमं	MK	III. 9	तन्वी विश्वथ	AP	III. 17
जनयत्यनेक	VK	IV. 71	तपन्ममागानि	VK	V. 51
जनस्याक्षणां	VK	IV. 70	तपसि मम	VK	V. 52
जयश्रियो	VK	VI. 3	तप्तव्योमा	MK	IV. 1
जयावाप्त्यु	VK	IV. 25	तप्तस्य गाढं	SU	III. 9
जरठरवि	VK	II. 27	तम समस्तं	VK	V. 45
जलदपटलं	VK	IV. 81	तया प्रहर्तुं	SU	II. 9
जा आरुहइ	MK	I. 26	तरंगप्रेखोल	VK	II. 23
जातश्वक्रोर	SU	III. 24	तरंगैराघ्नानं	VK	IV. 82
जातामप्सरसां	AP	VI. 26	तल्पस्थितेय	VK	III. 12
जित्वा कौरव	VK	IV. 33	तव खलु	AP	VI. 10
ज्योत्स्नाभसि	AP	III. 15	तस्य पृथ्वी	VK	III. 68
ज्योत्स्नावगाह	VK	V. 58	तस्याः करं	SU	III. 2
ज्योत्स्नेयं	AP	III. 13	तस्या गृहीत्वा	SU	III. 3
ज्वलतानेन	MK	III. 8a	तस्यायोध्य	SU	IV. 17
ज्वलत्यस्य	SU	IV. 26	तस्या वियोगे	SU	IV. 8
णवकिसल	AP	V. 21	तस्यैप तनयो	VK	III. 60
णहमंडविभा	VK	V. 43	तां वज्रपाता	AP	VII. 12
णिसहणि	VK	V. 42	तात सेवैक	VK	IV. 94
तं तत्क्षणेन	SU	IV. 19	तामिह एष	MK	IV. 6
ततश्चाद्	VK	IV. 47	तामिह दक्षिण	MK	III. 12
तत्कालप्रति	VK	II. 3	ताबूलवीटी	VK	III. 8
तत्त्वेनानव	AP	V. 5	तिमिरनिकर	VK	V. 85
तत्पूर्वकं मे	VK	V. 24	तिरस्कृत	SU	IV. 13
तत्प्रार्थयामि	VK	V. 19	तिर्यक् पश्यति	VK	I. 12
तद्विबाधर	MK	V. 11	तुच्छच्छायः	VK	I. 13
तदा प्रियांया	AP	I. 7	तुलयति	VK	V. 53
तन्द्रालसानि	VK	III. 29	तूणीरिणः	VK	III. 23
तन्मया मम	MK	II. 7	तृणायेदं	VK	III. 59

तृप्तिर्विश्वास	SU	IV. 18	दूरादंबर	MK	V. 23
तैस्तैर्मनो	VK	I 35	दूरादहं	VK	V. 23
तैस्तैश्च समुदा	VK	VI. 1	दूरादाहं	VK	II. 4
त्यजत मधु	MK	II. 16	दृशौ ममा	SU	II. 6
त्यज्यते सपदि	VK	VI. 30	दृगौ हर्षो	AP	VII. 4
त्रपा क्रोधो	VK	V. 37	दृश्यते क्व	VK	IV. 68
त्रिमार्गगा	SU	I. 13	दृष्टैव सीता	MK	II 36
त्वं कल्याणिन्	MK	III. 33	देहाहिअ	MK	III. 4
त्वं काशिराजस्य	VK	IV. 22	द्वविणस्या	VK	III. 9
त्वत्सकल्पै	AP	VI. 57	द्वित्रा घटी	VK	V 72
त्वद्दर्शनोत्सव	AP	VI. 37	द्विरेफमि	MK	III. 45
त्वमसि शिशिर	VK	V. 80	द्वैधीभावं	VK	IV. 24
त्वया वाधव	MK	V. 49	धन्विप्रवी	MK	V. 24
त्वय्यासक्त	AP	VII 15	धारानिर्भिन्न	AP	II 23
त्वय्येप नः	VK	V. 15	धारेमि मन्द	AP	VI. 35
दंष्ट्राचन्द्र	AP	VII. 8	धिग् ग्रन्थि	AP	VI. 33
दसणमेतं	MK	III 40	धूमै श्यामल	VK	IV. 73
दंसणसमूसुओ	MK	I. 20a	न कृत प्रणयो	SU	II. 3
दत्ता तुभ्यमसौ	AP	VII. 14	न जातु जामा	VK	V. 6
दत्त्वा किमिच्छक	VK	VI. 7	न तथा दयिता	MK	II. 8a
ददाति तत्प्रति	SU	II. 17	न दृष्ट विम्बो	VK	III. 7
दर्शयन्ती	VK	III. 39	न द्वेष्टि मेघे	VK	V. 12
दशान्तरमहं	AP	VI. 49	न नागैर्नाप्य	VK	V. 16
दिङ्गागा दृढ	MK	V. 37	न बहुप्रेय	VK	III. 10
दिष्टेण जेण	SU	III. 23	नभश्चर	MK	V. 14
दिव्याना भय	MK	V. 36	नभसोऽयं	VK	IV. 76
दीव्यञ्छलाका	VK	III. 51	न भ्रष्ट कर्ण	VK	VI. 28
दु सहोप	VK	V. 50	नमतु शर	VK	IV. 88
दूरस्थमेतन्मि	MK	I. 8	नमयति धनु	MK	V. 40

HASTIMALLA AND HIS PLAYS

रभयति यद्	MK	V. 33	निर्यत्कुरंग	VK	IV. 78
रयनेयुगं	MK	II. 30	निर्वर्णितः	VK	I. 28
नयनसलिल	SU	III. 12	निर्हारी विज	AP	II. 16
न युद्धं प्रति	SU	I 37	निवर्त्य वक्त्रा	VK	V. 34
नवतोय	AP	VI. 1	नि.शेषानद्य	MK	IV. 4
नवमलयज	VK	VI. 38	निश्चितधवल	VK	IV. 40
न वाग्भिः	VK	V 78	निशीथिन्यां	VK	III. 65
न सोऽयं	MK	IV. 3	निष्कासयत्ये	VK	III. 15
न हारयष्टौ	VK	V. 25	निष्ठापद्रुत	VK	V. 56
नातिदूरे	AP	VI 12	निष्पन्दस्तिमित	VK	I 19
नाथोऽयं	AP	I 13	निष्पिष्टद्वि	VK	IV. 105
नायं तोय	VK	IV. 93	नीरन्ध्र कर्ण	AP	II 9
नासाग्राहित	MK	I. 3	नीवीमुच्छ्व	MK	I. 29
नास्ते विभिन्न	VK	III 70	नेच्छाधौरि	MK	V. 16
नाहं सुलोचना	VK	IV. 23	नेत्रद्वयं	VK	III. 32
निखिलखचर	AP	I. 14	नेत्राभ्यां सह	MK	I. 25
नितम्बिनी	AP	VI. 16	नेत्रे तस्या	AP	II. 8
निद्रायै प्रयते	MK	III. 29	नैवाधरेण	VK	II. 32
निपीतो नेत्रा	VK	II. 14	न्यस्यन्त्या	SU	III 20
निबिडमभि	VK	IV. 60	पञ्चोपचार	MK	III. 6
निरगलं	AP	V. 24	पञ्चमेसु अद्	VK	V. 3
निरवद्यं	AP	IV. 1	पक्ष्माग्रग्रथि	VK	V. 33
निरुन्धाना	VK	II. 26	पञ्चोपचार	VK	VI 9
निर्गन्तुं प्रथमो	VK	II. 5	पठन्ति सूक्तानि	VK	VI. 40
निर्दिश्य किञ्चित्	VK	III 62	परस्परप्रेम	AP	VI. 46
निर्दोषा भणिति	VK	III. 16	परा जयमसौ	VK	IV. 101
निर्निमेषसिमा	MK	V. 34	परितवद्	MK	III 18
निर्भिन्नद्वि	AP	II. 19	परिभ्रष्टः	VK	I 12a
निर्मुञ्चन्	VK	III. 77	परिमितपरि	AP	I. 4

INDEX OF STANZAS

३०१

पर्जन्यं प्रति	MK	V. 43	प्रतिफलन	VK	V. 49
पर्यन्तपर्यस्त	SU	I. 7	प्रत्यक्षम	SU	III. 27
पश्य कोदण्ड	VK	IV. 98	प्रत्यंगोद्वि	MK	I. 14
पश्यतो मे	SU	II. 16	प्रत्यवस्था	AP	VI. 58
पश्य प्रयान्ती	VK	VI. 14	प्रत्यागता	SU	IV. 22
पाटलीजरठ	VK	V. 70	प्रत्यागमे	AP	III. 10
पार्श्ववर्ति	AP	V 11	प्रत्यालिंगन	VK	VI. 25
पावंति लङ्मि	MK	III. 3	प्रत्यासीदति	VK	VI. 46
पिता वा माता	VK	III. 36	प्रथम कुल	SU	IV. 7
पितु प्रसादं	SU	IV. 32	प्रदीयते मया	SU	IV. 35
पितुस्तु संकेत	VK	IV. 5	प्रभातरम्या	AP	VII. 5
पुत्रेष्वनिर्वा	AP	II. 20	प्रभावमहतो	AP	VII. 6
पुरस्सरण .	VK	IV. 12	प्रमदरभसा	VK	V. 1
पुष्पान्ति का	VK	VI. 55	प्रयुंजानो	VK	IV. 20
पुष्पैरद्य	AP	II 13	प्रलवलंबूप	VK	VI. 10
पुष्पचूत	VK	I. 7	प्रवृत्तो ज्या	AP	I. 5
पूर्वं तावद्	AP	VI. 22	प्रवृद्धमद्	AP	VI. 8
पृच्छामि त्वां	AP	VI 20	प्रसर्पन्ती	MK	IV. 2
पृथ्वी सुखानि	SU	IV. 37	प्रसह्य विद्या	AP	V. 25
पौरैरिमानि	AP	I. 3	प्रहतो यो	VK	IV. 49
प्रगुणरण	VK	IV. 106	प्राशुप्रतीकाः	VK	III. 24
प्रचलवलय	VK	I 30	प्रागानयोरु	VK	II. 12
प्रच्छायरम्या	MK	IV. 7	प्राणसमा	AP	VI. 36
प्रच्छायशीतल	VK	I 14	प्राप्तस्यैवं	AP	VI. 55
प्रणम्रविद्या	VK	III 42	प्रारभामि	MK	I. 18
प्रणयादपि	MK	II 34	प्रावृद् प्रवर्त	VK	IV. 75
प्रततमखि	MK	III. 7	प्रासादोदर	VK	II. 36
प्रतिनव	AP	IV. 3	प्रियसख	MK	II. 18
प्रतिपालयति	MK	V: 24a	प्रियाया स	AP	V. 28

HASTIMALLA AND HIS PLAYS

प्रियाविशेषा	VK	V. 55	मंजिरशिक्षित	VK	VI. 29
प्रौढांगना	MK	III. 10	मदकलसारस	VK	II. 11
प्रौढांगना	VK	III. 6	मदद्विपाना	VK	IV. 104
फणिनामधिपेन	VK	III. 41	मदमन्थर	AP	VI. 40
वकुलतरव	VK	V. 69	मदांबुवर्षी	AP	V. 15
वद्धप्रणामां	SU	IV. 5	मधुरसपृषत	MK	II. 15
वद्धं भवान्	VK	V. 7	मध्यप्रतिष्ठा	MK	V. 5
वाढमिहास्ति	VK	VI. 7a	मध्यस्ते स्तनयो	SU	II. 21
वाढं तेऽद्य	VK	IV. 6	मध्याह्नता	SU	I. 41
वालार्कमिव	AP	VII. 11	मध्येध्वान्तं	AP	III. 2
व्रवीति तस्या	SU	I. 26	मनसिजं	MK	IV. 5
भक्तिं समस्त	VK	V. 13	मनु प्राजा	VK	VI. 54
भद्रं भद्र	AP	VI. 51	मनोरथ	AP	V. 12
भद्रं त्वं नव	AP	V. 29	मनोरथशता	VK	I. 38
भवत भवत	MK	IV. 17	मनोरथैस्तत्	VK	V. 22
भवति ललनां	AP	II. 10	मंतेण व	AP	IV. 7
भवसि भवसि	VK	II. 34	मंदमंद	VK	III. 47
भुजाविमौ	VK	IV. 52	मंदाकिनी	SU	I. 18
भूपाला पाल	AP	VII. 16	मम प्रियां	AP	VI. 18
भूयांसः क्षिति	VK	IV. 1	मम प्रिया	AP	VI. 32
भूयाद्भूतेषु	VK	VI. 57	मम सस	AP	VI. 44
भूयिष्ठमग्नि	VK	IV. 51	मयि प्रवासेन	AP	VI. 15
भूयो यष्टि	AP	VII. 3	मरकत	AP	II. 3
भो भोः कौरव	VK	III. 75	मर्मसु हता	VK	IV. 64
भो भो दुश्चरित	AP	IV. 18	मलयपवन	MK	II. 10
भो भोः प्रौढ	MK	V. 6	महामोह	VK	IV. 54
भ्रूलेखे लहरी	AP	VI. 41	महिलं अपुच्व	MK	III. 11
मग्नेन निर्याण	VK	IV. 55	महीखंडं	VK	V. 17
मंजीरकणित	AP	II. 12	महीपतेः	VK	III. 64

मह्यं प्रदा	SU	IV. 11	यथार्ककी	VK	V. 10
मा मैवं	MK	III 34	यदेव मे	SU	IV. 1
मुक्ताजनं	AP	VI 47	यदैव वृत्तं	SU	IV. 30
मुक्ताहारो	MK	III. 9a	यद्यपि गमि	MK	III. 42
मुह्यति ह	SU	II 13	यद्युष्माक	VK	V. 11
मुहुर्वृत्ता	VK	III 18	यस्मिन्नेनां	SU	I. 40
मुहुश्चन्द्र	AP	III. 5	यस्मै कृता	VK	III. 52
मूकाशोक	MK	III 31	यस्मै कृता	SU	IV. 15
मूर्च्छस्य	AP	V 10	यस्य स्मृत्या	MK	V 28
मूर्तित्रयो	VK	VI 50	यस्य स्याद्वा	MK	V. 8
मूर्ध्नः स्फोट	VK	IV. 46	यस्य स्वयं	VK	VI. 51
मूले वाल	VK	III 14	यस्याग्रतः	VK	III. 49
मृणालाल	AP	III 20	यस्यानुजो	SU	IV. 28
मृदंगा वा	MK	I 17	यस्यास्त्वं शुक	AP	VI 38
मृदुतर	MK	I 24	याता मम	MK	II 27
मेघप्रभस्यैव	VK	IV. 74	यातो वासर	MK	II. 35
मेघमुखैरुप	SU	I. 11	यावन्नैष	VK	VI 44
मेघेश्वरमेव	VK	III 29a	युक्तयं गुणि	VK	IV. 3
म्लेच्छाना समरे	VK	IV. 83	युगारमे	VK	III. 72
य प्रस्तोता	MK	I 1	ये दुर्विभावा	AP	V. 17
य एवावि	MK	II 9	येन दिग्जै	SU	IV. 4
यच्चैकीकरणं	VK	II 24	येन व्यलीकै	VK	II. 30
यच्चन्द्रिका	VK	V. 41	येनैक एव	VK	III 53
यत्र यत्र	MK	III. 23	येनैक एव	SU	IV. 27
यत्र याता	AP	V 30	येनैव सा	VK	II. 13
यत्रैते स्फु	VK	II 28	येऽग्नी रथं	VK	IV. 89
यतस्ततः	VK	III. 13	ये स्प्रष्टुं	MK	V. 42
यत्स्वेदाम्बु	MK	III 32	यैरन्योन्य	AP	V. 4
यथा किला	SU	II. 20	यो मात्सर	AP	V. 23a

HASTIMALLA AND HIS PLAYS

रक्ताशोकप्र	SU	II. 27	वपुर्दूरे	MK	V. 18
रक्ताशोकस्त	SU	III. 7	वयासि वेप	VK	V. 2
रञ्जय कुसुमैः	MK	II. 22	वर्षन्त. प्रवि	VK	II. 19
रचयत	AP	II. 1	वसन्तमाला	AP	VII. 9
रचयति जरा	MK	V. 2	वसुधारा	VK	VI. 48
रजनिपुरभि	VK	V. 48	वहइ चिहुर	VK	II. 8
रत्याडंबर	VK	IV. 79	वहङ्गिराज्ञां	SU	IV. 6
रभसकृत	VK	V. 44	वहन्नंगस्य	SU	I. 8
रमयति	VK	II. 17	वामेनाप्रप	MK	I. 19
रवि प्रासादा	AP	II. 7	वारखीहस्त	VK	III. 40
रसति समर	VK	IV. 27	वासतिएहि	MK	I. 5
राजर्षिरस्ति	VK	III. 67	वासयन्ति	VK	II. 20
रिपुशर	VK	IV. 48	विकसित	VK	VI. 12
रूपेण कान्त्या	VK	III. 73	विकस्वरस्मेर	VK	VI. 27
रूप्यद्रवो	VK	V. 57	विचलितमणि	MK	I. 28
रे रे कौरव	VK	IV. 96	विदधति नृप	VK	IV. 28
लक्ष्मीविलास	VK	VI. 21	विनमितरिपु	VK	III. 45
लघु विध	VK	II. 7	विनमिप्रमुखै	SU	IV. 25
लज्जाशृंख	VK	I. 27	विनिद्रमन्दार	SU	II. 22
लब्धं किल	VK	V. 77	विनीतो वाल्येऽपि	VK	IV. 15
ललद्वंटा	VK	IV. 95	विभज्य गरुड	VK	IV. 38
ललिता सह	AP	VI. 34	विभज्य मकर	VK	IV. 37
वक्त्रं ते प्रति	MK	III. 35	विभातविश्ले	MK	IV. 16
वक्ष प्रस्थात्	VK	III. 76	विभावनीर्यं	SU	II. 4
वचः किचिद्ध	VK	VI. 24	विमतमथन	VK	IV. 59
वचो यद्यपि	MK	II. 33	विमिश्रयन्	SU	I. 17
वणिजो जित्व	VK	III. 2	विमोचयन्त्या	VK	III. 44
वतंसयन्तीं	SU	I. 23	विरचय कङ्कार	AP	III. 12
वदन्ति राज्ञा	AP	II. 17	विरतस्त्वयि	MK	III. 36

IK V. 18	विरहानल	AP VI. 29	गासितु का	VK IV 86
K V. 2	विलोक्य नीला	VK VI 15	शिखडिवर्हा	VK III 27
K II. 19	विशकसे मानिनि	SU I 38	शिथिला मिथिला	MK V. 19
P VII. 9	विशा प्रभो.	VK IV. 34	शिरसा प्रार्थ	SU I 22
K VI. 48	विशुष्यत.	VK II 6	शीत. कपोला	MK IV 8
K II 8	विसृत्य लहरी	VK II. 22	शीतापात्रिख	VK I. 9
J IV 6	विसम्भस्य	VK I. 33	शीताशुवदनां	MK II 28
J I. 8	विहरति चक्र	MK I. 5a	शीताशोरवि	VK I. 24
K I. 19	विहाय विरह	AP VI. 3	शीताशोरिव	VK IV 84
III. 40	वृषभतनय	SU III. 26	शुणुथ शुणुथ	AP IV. 12
K I. 5	वेदीवनं	SU III. 6	शुंडा शुला	AP IV. 15
K II. 20	वेलोपान्त	AP V. 7	शुभग्रहा	VK VI 41
K VI. 12	वैदेही सकृ	MK I 11	शुहं पिबंतए	AP IV. 9
K VI 27	वैयाल्यं सहजं	VK IV 30	शृंगारमालोक्य	SU I. 28
K I. 28	वैराय कल्पते	AP V. 6	शृंगारवीर	VK I. 4
K IV. 28	वैषम्यदोष	MK V. 1	शृंगारस्य	VK I. 23
K III. 45	व्यत्यस्तास	SU III. 29	शैत्येन वा.	VK I 29
U IV. 25	व्यधायि शङ्खं	SU III. 10	शैलेन्द्रप्रति	MK V. 15
U II. 22	व्यापारिता	VK III 66	शोच्यस्य बाढं	VK V. 5
VK IV 15	व्याप्य व्योमतलं	SU IV. 21	शोच्या दशा	AP VI. 17
VK IV. 38	व्यामिश्रान्	VK VI. 32	श्रुतं यद्वा	MK I. 9
VK IV. 37	व्यपरत	SU II. 2	श्रुतं श्रवणयो	MK V. 39
MK IV. 16	व्यापगा	SU I. 20	श्रुत्वा जगद्	MK V. 45
SU II. 4	जनिश्चल	SU I 35	श्रुत्वा सुभ	SU IV 23
VK IV. 39	म दधानो	VK V. 14	श्रुत्वैव त्वा	MK I. 27
SU I. 17	मुच्चलंते	AP IV. 14	श्रूयते तदिदं	AP II. 11
VK III. 44	रदुत्सुको	MK IV. 11a	श्रेणिद्वयाद्	SU IV 20
AP III. 12	रसधान	MK II. 14	श्रोणीबिंबो	SU I. 25
MK III. 39	गिलश णिहि	AP IV. 10	श्रोता पुराण	SU IV 3

HASTIMALLA AND HIS PLAYS

श्रीर्तु मां समु	MK	V 50	समीचीना	AP	I. 2
श्रीर्षा भूमेः	MK	V. 44	समुच्चरत्	VK	VI 42
श्लाघा विभ्रम	MK	III. 20	समुच्छ्वसतकै	VK	V. 76
श्लाघ्यावर्ता.	VK	VI. 5	समुच्छ्वसन्मे	VK	III 56
श्व एव नः	VK	V. 79	समुत्पतत्	VK	III 48
षट्खंडेश्वर	SU	I 30	सपादिता	AP	V. 8
सकलं पैतृकं	AP	II 18	संप्रति शुचि	AP	VI. 25
सकलमखिल	VK	VI. 37	संप्रति सुदति	AP	VI. 5
सकल्पशत	VK	I. 34	संबन्धमीदृश	VK	VI. 56
संकल्पैस्तु	MK	III. 28	संमोहनाय	SU	II. 7
सख्या कपोल	VK	VI. 18	संमोहनो	SU	III. 4
सख्या कि	MK	III. 43	स यत्राभूद्	VK	IV. 35
सख्यास्तावद्	MK	III. 26	सरंभात्	AP	VII. 2
संग्रामेषु	AP	III 7	सरसकुसुम	VK	VI 11
सजलजलद	VK	V. 46	सरसि जल	AP	I. 20
सजास्ते सम	MK	V. 38	सरस्वत्या	VK	I. 5
सत्त्वं विदुष	VK	I. 32	सर्वत्राप्य	AP	V. 1
सत्थो चंदण	VK	V. 4	सलज्जमु	SU	IV. 34
सदा सेव्याद्	SU	IV. 2	संवित्प्र	VK	VI 58
सद्यश्चैवि	AP	III 14	सविभ्रमा	SU	II. 5
सन्तापाना	MK	I 10	सव्याजमर्थ	MK	II. 12
संधातुमेक	VK	IV 97	सस्मरणात्	SU	II. 64
सपदि शिशिर	AP	III. 4	साक्षादसि	VK	IV. 4
सप्तच्छदा	VK	IV. 61	सायं मज्जन	VK	I. 9
सप्ताहं सप्त	VK	IV. 11	सालंकार	MK	I. 2
समन्तादंगं	MK	II. 23	सुकुमारभाव	SU	I.
समन्मथा	MK	IV. 10	सुकुमारविलास	AP	I.
समसिद्	VK	III 31	सुकेतु प्र	VK	IV. 39
समायाता	MK	V. 27	सुत कुरो	VK	IV. 2

सुतोऽयमाद्यो	VK	V. 8	सस्तस्तनां	SU	III. 22
सुनिर्मल	VK	VI. 17	सस्तोत्तरीय	VK	VI. 13
सुरकर	VK	IV 100	स्वच्छान्तरा	MK	III. 22
सुरतश्रमां	VK	III. 61	स्वपतिस्वयं	VK	V. 31
सुरपरिवृढो	SU	III. 25	स्वप्नेऽपि दृश्येत	SU	II. 26
सुरमिकुसुम	AP	II. 4	स्वप्नेषु विप्र	AP	III. 19
सुरस्रवन्ती	SU	I. 14	स्वयंवरव्य	VK	IV. 19
सेनानेकप	AP	III. 1	स्वयंवरे	VK	V. 18
सैषा सप्रति	MK	III. 14	स्वयं सौन्दर्य	MK	I. 22
सो भङ्गा	MK	I. 6	स्वयमचरिष्ठ	VK	III. 34
सोऽयं रामः	MK	V. 10	स्वयमागमनेन	SU	I 36
सोऽयमस्मत्	AP	VII. 13	स्विद्यदंगुलि	VK	V. 28
सौदामिन्य	VK	IV. 77	स्वेदजल	AP	I 17
सौन्दर्यमन्यत्र	SU	II. 1	स्वैरं फलानि	SU	IV. 24
सौराष्ट्रस्यैव	VK	IV. 57	स्वैरमद्य	VK	V. 21
स्खलन्मरीचि	VK	IV. 87	हताः कौत्स	VK	VI. 20
स्तनतटसमु	VK	II. 31	हरिकरि	VK	V. 40
स्तनतटसमु	SU	I 34	हरिचन्दन	SU	III. 5
स्तनाशुकं बाष्प	SU	III 11	हरितकलम	VK	I. 16
स्तनाशुकं विश्व	SU	IV 9	हिडंति कल	MK	III. 1
स्थगितजठर	VK	III 22	हिमवानिव	MK	V. 22
स्निग्धैर्वालित	VK	I. 31	हिमाचलाभो	VK	III. 55
स्पृशति मयि	MK	III 21	हिरण्यगर्भ	SU	I. 19
स्पृष्टोऽसि	SU	I 27	हृदयंगमा	VK	VI. 6
स्फुरिताधर	SU	II. 19	हृदयामद्या	VK	II. 16
स्प्रष्टुमद्य	SU	III. 19	हे लोचने	VK	V. 36
स्मितेनान्तर्ग	AP	I. 10	हैयंगवीन	VK	VI. 36
स्रजमुपरि	VK	V. 26	होदि विद्भं	AP	IV. 11

HASTIMALLA AND HIS PLAYS

Alphabetical Index of Stanzas occurring in the Pras'astis
in the Four plays of Hastimalla. Pr=Pras'asti

भनेकान्त	VK	Pr	11	यद्वाङ्मयं	VK	Pr	7
भवदुतट	VK	Pr	3	यस्य वाक्सुधया	VK	Pr	9
उद्यद्भूषण	VK	Pr	13	यस्य वाचा	VK	Pr	6
एतन्नाटक	MK	Pr	2	शलाका पुरुषा	VK	Pr	8
कृतिरिय	MK	Pr	1	शिष्यां तदीयौ	VK	Pr	4
गोविन्दभट्ट	VK	Pr	10	श्रीमद्वीपं	VK	Pr	14
तत्त्वार्थसूत्र	VK	Pr	2	श्रीमूलसंघ	VK	Pr	1
तदन्वये	VK	Pr	5	श्रीवत्सगोत्र	VK	I	40
दाक्षिणात्या	VK	Pr	12				

